VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
द्वितीय वर्ष
(डिप्लोमा कोर्स)
सेमेस्टर-III

राजनीतिशास्त्र

भारत में राजनीतिक प्रक्रिया

SYLLABUS

UNIT-I

Democracy in India : Trajectory, Foundations, Dimensions, Challenges.

UNIT-II

Party System : Political Parties, Pressure Groups.

UNIT-III

Rural and Urban Local Government : History, Structure, Functions, Challenges.

UNIT-IV

Elections : Machinery, Voting Behavior, Electoral Process, Issues and Reforms. The Politics of Secession and Accommodation.

UNIT-V

Communalsim , Secularism, Regionalism, Autonomy Arrangements.

UNIT-VI

Social Justice and Affirmative Action : Policies and Practices.

UNIT-VII

Challenges of Nation Building : Ethnicity, Language, Caste, Fundamentalism.

UNIT-VIII

State Politics : Nature, Patterns, Leadership.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : भारत में लोकतन्त्र ...3
UNIT-II : दल प्रणाली ...17
UNIT-III : ग्रामीण और नगरीय स्थानीय सरकार ...34
UNIT-IV : निर्वाचन ...67
UNIT-V : साम्प्रदायिक, धर्मनिरपेक्षता, क्षेत्रवाद एवं स्वायत्तता व्यवस्था ...90
UNIT-VI : सामाजिक न्याय एवं सकारात्मक कार्रवाई ...105
UNIT-VII : राष्ट्र निर्माण की चुनौतियाँ ...123
UNIT-VIII : राज्य राजनीति ...140
मॉडल पेपर ...168

UNIT-I

भारत में लोकतन्त्र

Democracy in India

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लोकतंत्र का क्या अर्थ है?

What is the meaning of democracy?

उत्तर लोकतंत्र एक प्रकार की शासन व्यवस्था है, जिसमें सभी व्यक्ति को समान अधिकार होता है। देश में यह शासन प्रणाली लोगों को सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करती है।

प्र.2. भारत में लोकतंत्र की स्थापना कब हुई थी?

When was established the democracy in India?

उत्तर 1947 की स्वतंत्रता के बाद दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र को इसके राष्ट्रवादी के आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व के तहत बनाया गया था।

प्र.3. दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश कौन-सा है?

Which is the largest democratic country in the world?

उत्तर दुनिया में भारत को सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश माना जाता है। 26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ था। इसे विश्व का सबसे लम्बा लिखित संविधान मानते हैं। भारत को इसलिए दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र माना जाता है, क्योंकि यहाँ 29 भाषाएँ और लगभग 1650 बोलियाँ बोली जाती हैं।

प्र.4. भारत में किस प्रकार का लोकतंत्र है?

Which type of democracy in India?

उत्तर भारत सरकार के संसदीय स्वरूप के साथ एक संप्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है जो एकात्मक विशेषताओं के साथ संरचना में संघीय है।

प्र.5. अप्रत्यक्ष लोकतंत्र का क्या अर्थ है?

What is the meaning of in direct democracy?

उत्तर प्रतिनिधिक लोकतंत्र (Representative democracy) वह लोकतन्त्र है जिसके पदाधिकारी जनता के किसी समूह द्वारा चुने जाते हैं। यह प्रणाली, 'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' (direct democracy) के विपरीत है और इसीलिए इसे अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र (indirect democracy) और प्रतिनिधिक सरकार (representative government) भी कहते हैं।

प्र.6. भारत में प्रत्यक्ष लोकतंत्र का उदाहरण दीजिए।

Give an example of direct democracy in India?

उत्तर ग्राम सभा का गठन ग्राम पंचायत के 18 वर्ष से अधिक उम्र के वयस्क व्यक्तियों को मिलाकर किया जाता है। ग्राम सभा की बैठक में संबंधित ग्राम सभा के सभी निवासी भाग लेते हैं। अत: यह प्रत्यक्ष लोकतंत्र का उदाहरण है।

प्र.7. प्रत्यक्ष लोकतंत्र का क्या अर्थ है?

What is the meaning of direct democracy?

उत्तर प्रत्यक्ष लोकतंत्र या सीधा लोकतंत्र में सभी नागरिक सारे महत्त्वपूर्ण नीतिगत फैसलों पर मतदान करते हैं। इसे प्रत्यक्ष कहा जाता है क्योंकि सैद्धांतिक रूप से इसमें कोई प्रतिनिधि या मध्यस्थ नहीं होता। सभी प्रत्यक्ष लोकतंत्र छोटे समुदाय या नगर-राष्ट्रों में हैं। इसे सीधा कहा जाता है क्योंकि ये लोकतंत्र का साधारण/सरल रूप है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. उत्तरदायी शासन को परिभाषित कीजिए।

उत्तर उत्तरदायी शासन ऐसा शासन होता है जो अपने शासन सम्बन्धी कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। इस कसौटी पर प्रजातन्त्र खरा उतरता है, क्योंकि प्रजातन्त्र शासन में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

प्र.9. विश्व में लोकतन्त्र के वर्तमान स्वरूप को स्थापित करने वाली किन्हीं चार क्रांतियों के नाम लिखिए।
Write the names of any four revolutions, that establish the modern form of democracy in the world.

उत्तर विश्व में लोकतंत्र के वर्तमान रूप को स्थिर करने में चार क्रांतियों से विशेष सहायता मिली है। वे क्रांतियाँ थीं—(1) 1688 की इग्लैंड की गौरवपूर्ण या रक्तहीन क्रांति, (2) 1776 की अमरीकी क्रांति, (3) 1789 की फ्रेंच राजक्रांति और (4) 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लोकतंत्र के अर्थ एवं परिभाषाओं का वर्णन करते हुए इसे स्पष्ट रूप से समझाइए।
Describe the meaning and definitions of democracy and also explain it clearly.

उत्तर

लोकतंत्र का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Democracy)

लोकतंत्र में राज्य की सत्ता एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों के हाथों में नहीं, प्रत्युत् जनसाधारण के हाथों में केंद्रित मानी जाती है। इस प्रकार, **हेरीडोट्स** ने लोकतंत्र की परिभाषा उस शासन के रूप में की है जिसमें राज्य की सर्वोच्च शक्ति संपूर्ण समाज के हाथों में रहती है। **डायसी** के अनुसार, "'लोकतंत्र वह शासन-पद्धति है, जिसमें शासन करने वाला समुदाय संपूर्ण जनसंख्या का एक बड़ा भाग होता है।'' **सीली** के मत से, "'लोकतंत्र वह शासन-पद्धति है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भाग होता है।'' **लार्ड ब्राइस** ने लोकतंत्र की परिभाषा करते हुए कहा है कि "यह वह शासन-प्रणाली है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भाग होता है।'' **लार्ड ब्राइस** ने लोकतंत्र की परिभाषा करते हुए कहा है कि, "यह वह शासन-प्रणाली है जिसमें शासन-शक्ति पर किसी एक व्यक्ति अथवा वर्ग का अधिकार नहीं होता, अपितु समाज के सभी सदस्यों का उस पर समान अधिकार होता है।'' इस प्रकार लोकतंत्र वह शासन-प्रणाली है जिसमें संपूर्ण जनता का ही परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रीति से कुछ-न-कुछ भाग रहता है इसी आशय को दृष्टि में रखते हुए **लिंकन** ने लोकतंत्र की परिभाषा 'जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन' शब्दों में की है।

लोकतंत्र का राजनीतिक पक्ष—लोकतंत्र की उक्त परिभाषाओं से उसके केवल एक ही पहलू पर प्रकाश पड़ता है और वह पहलू है राजनीतिक संगठन अथवा शासन के रूप में लोकतंत्र। लोकतंत्र के राजनीतिक पहलू में राजनीतिक समानता के आदर्श को स्वीकार किया जाता है और राजनीतिक शक्ति पर किसी एक वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं माना जाता है। इसमें शासन का संचालन बहुमत के सिद्धांत के अनुसार होता है और केवल वे विधियाँ ही लागू की जाती हैं जिन्हें बहुसंख्यक जनता का समर्थन प्राप्त रहता है।

लोकतंत्र का सामाजिक आदर्श—परंतु लोकतंत्र केवल एक शासन-प्रणाली ही नहीं हैं वह एक सामाजिक आदर्श भी है। एक सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतंत्र सब मनुष्यों और स्त्रियों की समानता का प्रतिपादन करता है। जिस समाज का संगठन लोकतंत्रात्मक है, उसमें न तो कोई सुविधासंपन्न वर्ग-विशेष ही हो सकता है और न जाति, धर्म, वर्ण, वंश, धन और लिंग आदि के आधार पर व्यक्ति, व्यक्ति के बीच भेदभाव की दीवारें खड़ी की जाती है। फलत: हम ऐसे किसी समाज को, जिसमें कि छुआछूत हो, स्त्रियों को घर की चारदीवारी में कैद रखा जाए, अर्थात् सब लोगों को अपने विकास के लिए समान अवसर न मिल सके, लोकतंत्रात्मक समाज नहीं कह सकते। लोकतंत्र के लिए दैनिक व्यवहार में कतिपय सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की आवश्यकता हुआ करती है। जब तक समाज में इन मूल्यों का विकास नहीं होता, वह लोकतंत्र के आदर्श से कोसों दूर रहता है।

लोकतंत्र एक मानसिक दृष्टिकोण के रूप में—एक राजनीतिक आदर्श और सामाजिक संगठन होने के साथ-साथ लोकतंत्र एक नैतिक आदर्श एवं मानसिक दृष्टिकोण भी है। लोकतंत्र इस बात को स्वीकार करता है कि औसतन प्रत्येक ईमानदार नागरिक में यह योग्यता होती है कि वह शासन कार्यों में भाग ले सके। शासन का आधार यह विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति में अपना शासन आप करने की और औसत नागरिक में समाज के हित की दृष्टि से शासन करने वाले शासकों को चुनने की योग्यता रहती है। लोकतंत्र जन-साधारण की महिमा और गरिमा पर भरोसा रखता है वह मान-व्यक्तित्व का मान के रूप में आदर करने की माँग करता है।

TOUCH 'n' PASS

दार्शनिक **काँट** के इस कथन में इस आदर्श का सार आ जाता है, इस प्रकार काम करो कि मानवता के साथ प्रत्येक मामले में, चाहे तुम्हारे व्यक्तित्व की बात हो या दूसरे के व्यक्तित्व की, इस प्रकार व्यवहार हो कि वह एक साध्य है, एक ध्येय है उसे साधन मानकर कभी व्यवहार मत करो। **बेंथम** के निम्नलिखित सूत्र में भी यही विचार निहित है 'प्रत्येक व्यक्ति को एक गिनना चाहिए और किसी को एक से अधिक नहीं गिनना चाहिए।'

लोकतंत्र का आर्थिक आधार—लोकतंत्र के उक्त पहलुओं के साथ हमें उसका आर्थिक पक्ष भी नहीं भूलना चाहिए। लोकतंत्र के आर्थिक पक्ष का अभिप्राय यह है कि सार्वभौम मताधिकार के प्रचलन से ही लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो जाती। लोकतंत्र की वास्तविक स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि समाज में आर्थिक शक्ति का ऐसा समतायुक्त वितरण हो जिससे प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुखी व समृद्ध हो सके और वह आत्म-विकास के लिए पर्याप्त अवसर पा सके।

लोकतंत्र जीवन का एक समग्र दर्शन है—उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि लोकतंत्र जीवन का एक समग्र दर्शन है और हम उसे थोड़े से शब्दों की परिभाषाओं द्वारा व्यक्त नहीं कर सकते। लोकतंत्र की व्यापक परिधि में मानव-जीवन के सभी पहलू आ जाते हैं। अपनी इसी व्यापकता के कारण 'लोकतंत्र इतना अधिक प्रचलित शब्द हो गया है और वह कभी-कभी इतने भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है कि सामान्य पाठक मत-विभ्रम में पड़ जाता है।'

लोकतंत्र की आधारभूत धारणाएँ—ऐसी स्थिति में हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम लोकतंत्र की कुछ आधारभूत धारणाओं को समझ लें। लोकतंत्र की प्रमुख आधारभूत धारणाएँ पाँच हैं। 1. स्वतंत्रता, 2. समानता, 3. भ्रातृता, 4. व्यक्ति की महत्ता, और 5. सहिष्णुता अपने मनोनुकूल जीवन-निर्वाह की छूट होनी चाहिए। लेकिन स्वतंत्रता का अभिप्राय उच्छृंखलता कदापि नहीं है। एक व्यक्ति स्वतंत्रता का उपभोग उसी सीमा तक कर सकता है जिस सीमा तक कि वह समाज के अन्य सदस्यों की स्वतंत्रता में कोई अवरोध पैदा नहीं करता। समानता का अभिप्राय यह है कि धर्म, जाति, लिंग, जन्म या वंश आदि के आधार पर समाज के विभिन्न सदस्यों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए और सभी नागरिकों को आत्म-विकास के समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए।

प्र.2. लोकतंत्र के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
Explain the types of democracy.

उत्तर

लोकतंत्र के भेद
(Types of Democracy)

लोकतंत्र के दो भेद हैं—1. प्रत्यक्ष या विशुद्ध, और 2. परोक्ष या प्रतिनिधिक लोकतंत्र।

प्रत्यक्ष लोकतंत्र में समस्त नागरिक स्वयं ही राज्य-कार्यों में भाग लेते हैं और वे अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों पर निर्भर नहीं रहते।

1. **प्रत्यक्ष या सहभागी लोकतंत्र**—प्रत्यक्ष लोकतंत्र में निर्वाचित विधान-सभाएँ नहीं होती जहाँ जन-प्रतिनिधि शासन की नीति का निर्धारण या विविध विधियों का निर्माण करते हों। इस प्रकार की व्यवस्था के अंतर्गत राज्य के समस्त नागरिक एक स्थान पर एकत्रित होकर शासन संबंधी समस्त कार्यों को निबटाते हैं और सार्वजनिक पदाधिकारियों को चुनते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि यह वह शासन-व्यवस्था है "जिसमें राज्य की इच्छा का निर्माण या अभिव्यक्ति प्रत्यक्षत:, प्रमुखत: अथवा तुरंत ही एक जनसभा में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा नहीं अपितु स्वयं जनता द्वारा होता है।"

   प्राचीन यूनान के नगर-राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतंत्र की प्रणाली के अनुसार शासन होता था। एथेन्स में यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। यूनान के नगर-राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतंत्र की सफलता के कुछ स्पष्ट कारण थे। क्षेत्रफल की दृष्टि से ये राज्य बहुत छोटे-छोटे थे। इनकी जनसंख्या भी बहुत थोड़ी थी। यूनान के नगर-राज्यों में मुख्य विशेषता यह थी कि सारा शारीरिक श्रम दासों को करना पड़ता था और नागरिकों के पास राजनीतिक कार्यों में भाग लेने के लिए पर्याप्त अवकाश रहता था। आजकल प्रत्यक्ष लोकतंत्र केवल स्विट्जरलैंड के कुछ कैण्टनों और अमेरिका के कुछ छोटे नगरों में ही प्रचलित है। इसका कारण यह है कि आधुनिक राष्ट्रीय राज्य क्षेत्रफल और जनसंख्या दोनों की दृष्टि से बहुत बड़े हैं और उनमें प्रत्यक्ष लोकतंत्र के अनुसार शासन चलाना असंभव है।

2. **परोक्ष या प्रतिनिधि लोकतंत्र**—आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों में प्रत्यक्ष अथवा शुद्ध लोकतंत्र की अव्यावहारिकता के कारण परोक्ष अथवा प्रतिनिधिक लोकतंत्र के अनुसार शासन होता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत जनता समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है और ये प्रतिनिधि विधानसभाओं में जनता की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस

TOUCH 'n PASS

प्रकार विधियों का निर्माण और शासन का संचालन प्रत्यक्षत: जनता द्वारा नहीं प्रत्युत् परोक्षत: जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होता है। प्रतिनिधिक लोकतंत्र इस विचार पर आधारित है कि "जनता के सभी सदस्य राजधानी में स्वयं उपस्थित नहीं हो सकते किंतु वे अपने प्रतिनिधियों द्वारा उपस्थित माने जाते हैं।" **जॉन स्टुअर्ट मिल** के शब्दों में, "प्रतिनिधिक लोकतंत्र वह शासन है जिसमें, संपूर्ण जनता या फिर उसका बहुसंख्यक भाग शासन-सत्ता का अपने नियत काल पर निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा प्रयोग करता है।"

यद्यपि आजकल प्रत्यक्ष लोकतंत्र प्राय: बिलकुल समाप्त हो गया है और लोकतंत्र का अभिप्राय ही परोक्ष या प्रतिनिधिक लोकतंत्र माना जाता है, फिर भी इसे संतोषजनक स्वीकार करने में कई विद्वानों को आपत्ति है। इसका कारण यह है कि चुनाव के समय अपने मतदान के अतिरिक्त जनता शासन-प्रबंध में कोई सीधा भाग नहीं लेती। **रूसो** जो प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का पक्षपाती था, कहा करता था कि, "अंग्रेज तो केवल चुनाव के समय ही स्वतंत्र होते हैं।" परोक्ष लोकतंत्र की त्रुटियों को दूर करने के लिए जनमतसंग्रह और प्रत्यावर्तन आदि उपायों का प्रयोग किया जाता है। इन उपायों द्वारा कतिपय मामलों पर जनता प्रत्यक्षत: अपने मत की अभिव्यक्ति करती रहती है और उसका चुनावों के पश्चात् भी अपने प्रतिनिधियों पर नियंत्रण बना रहता है। जनमत-संग्रह का आशय यह है कि कुछ विधियों पर विशेषकर संविधान से संबंध रखने वाली विधियों पर जनता की सम्मति अवश्य ली जानी चाहिए। उपक्रम का अभिप्राय यह है कि यदि जनता कुछ नई विधियाँ बनवाना चाहे और मतदाताओं की एक निश्चित जनसंख्या से हस्ताक्षर करवा कर अपना आवेदन-पत्र विधान-सभा के पास भेज दे, तो विधान-सभा उस विधि को अवश्य बना देगी। प्रत्यावर्तन का तात्पर्य यह है कि "यदि कोई प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों की इच्छाओं के विपरीत आचरण करता है, तो जनता को उसे वापिस बुला लेने या हटा देने का अधिकार होता है। व्यक्ति को शेष समाज की इच्छानुसार जीवन-यापन करने के लिए बाध्य करता है, तो इसमें उसकी ही हानि है।"

प्र.3. लोकतंत्र की आधारभूत धारणाओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए तथा इसकी आलोचना कीजिए।

Explain in brief the basic concepts or foundations of democracy and criticize it.

उत्तर

लोकतंत्र की आधारभूत धारणाएँ
(Basic Concepts of Democracy)

लोकतंत्र की प्रमुख आधारभूत धारणाएँ पाँच हैं—1. स्वतंत्रता, 2. समानता, 3. भ्रातृत्वता, 4. व्यक्ति की महत्ता और 5. सहिष्णुता।

स्वतंत्रता का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने मन के अनुसार जीवन-निर्वाह की छूट है, तथापि स्वतंत्रता उच्छृंखला नहीं है।

समानता का अभिप्राय यह है कि धर्म, जाति, वंश, आदि के आधार पर समाज के विभिन्न सदस्यों के बीच कोई भेद नहीं किया जाना चाहिए।

भ्रातृत्वता से आशय यह है कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सौहार्द रहना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसका अभिप्राय है प्रेमपूर्ण सह-अस्तित्व।

व्यक्ति की महत्ता का अर्थ यह है कि व्यक्ति किसी साध्य की पूर्ति के लिए साधन नहीं है बल्कि वह अपने आपमें साध्य है इस कसौटी के कारण लोकतंत्रवादी राज्य सर्वाधिकारवादी राज्यों से भिन्न होता है।

सहिष्णुता का अभिप्राय यह है कि लोकतंत्र में हर व्यक्ति को अपनी राय रखने का अधिकार है।

लोकतंत्र की आलोचना—जनसाधारण का लोकतंत्र निर्वाचनों के दौरान उम्मीदवारों को मत देने तक सीमित रहता है प्रतिनिधि एक बार निर्वाचित होने पर मतदाताओं को भूल जाते हैं। मतदाताओं का उनके ऊपर कोई नियंत्रण नहीं रहता।

लोकतंत्र अयोग्य और अनुत्तरदायी जनता का शासन है शासन एक कला है और कुछ चुने हुए व्यक्ति ही शासन-कला में पारंगत हो सकते हैं। **प्लेटो, सर हेनरी मेन, फैजेट** और **लेकी** जैसे चिंतकों ने यही विचार व्यक्त किया है। लोकतंत्र में उलकबंदी को प्रोत्साहन मिलता है इसमें जनता के हितों की अपेक्षा दल-विशेष के हितों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। लोकतंत्र की एक बड़ी त्रुटि यह है कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विद्वेष बढता है, सत्ता का वास्तविक स्रोत आर्थिक शक्ति के नियंताओं के हाथों में रहता है, लोकतंत्र एक मुखौटा बन जाता है जिसके द्वारा पूँजीपति वर्ग अपना असली चेहरा छिपाए रखता है। लोकतंत्र अत्यंत महँगा शासन है निर्वाचन बड़े महँगे होते हैं। लोकतंत्र में विरोधी दल एक-दूसरे के ऊपर कीचड़ उछालते रहते हैं। खलनायक राजनीति को अपना पेशा बना लेते हैं और जनता को पथभ्रष्ट करते हैं। लोकतंत्र बहुमत का शासन है और इक्यावन प्रतिशत जनता 49 प्रतिशत जनता को पीडित कर सकती है अपने सारे दोषों के बावजूद लोकतंत्र अन्य सभी शासन-प्रणालियों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी मानी गई है।

प्र.4. लोकतंत्र के दोषों का उल्लेख कीजिए।
Explain the demerits of democracy.

उत्तर

प्रजातन्त्र (लोकतन्त्र) के दोष
(Demerits of Democracy)

प्रजातन्त्र (लोकतन्त्र) के विरोधी इस शासन के निम्नलिखित दोष मानते हैं—

1. **अयोग्यता का शासन**—टेलीरैण्ड (Tellyrand), लुडोविसी (Ludovici), (Carlyle) तथा लेकी (Lecky) आदि विचारकों ने प्रजातन्त्र को अयोग्य व्यक्तियों का शासन कहा है। इन विचारकों का मत है कि शासन सत्ता सर्वमान्य व्यक्तियों के हाथों में सौंप देना अयोग्य व्यक्तियों के शासन को स्थापित करना है। यूनानी विचारक **प्लेटो** ने भी प्रजातन्त्र को 'अज्ञानियों का शासन' कहा है। **अरस्तू** का भी मत है कि शासन की क्षमता कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में ही होती है।
2. **एक व्यक्ति एक मत का सिद्धान्त गलत**—आलोचकों के अनुसार प्रजातन्त्र में एक व्यक्ति एक मत का सिद्धान्त गलत है। यह गुण के स्थान पर संख्या पर अधिक बल देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक विद्वान् और एक मूर्ख का मूल्य बराबर हो जाता है।
3. **उग्र दलबन्दी**—प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र शासन में अनेक दल निर्वाचन में भाग लेते हैं। उनमें से पूर्ण बहुमत वाला दल शासन का संचालन करता है तथा अन्य दल विरोधी पक्ष के रूप में कार्य करते हैं। प्रत्येक दल में इतनी उग्र दलीय भावना उत्पन्न हो जाती है कि दल के हित के समक्ष राष्ट्र तथा जनता का हित उपेक्षित हो जाता है। ये दल निर्वाचन में बहुमत प्राप्त करने के लिए अनैतिक साधनों का सहारा लेते हैं, जिससे गलत जनमत तैयार होता है और वास्तविक प्रजातान्त्रिक शासन की व्यवस्था असम्भव हो जाती है।
4. **व्ययशील शासन**—प्रजातन्त्र शासन अन्य शासन प्रणालियों की तुलना में अधिक व्ययशील है। इसमें प्रतिनिधियों के निर्वाचन तथा विधायकों व मन्त्रियों के वेतन, भत्ते आदि में राष्ट्र की अधिक धनराशि व्यय हो जाती है। इस शासन में सार्वजनिक नीतियों के निर्धारण तथा कानूनों के निर्माण में जटिल संसदीय परम्पराओं के पालन के कारण अधिक समय लगता है।
5. **अस्थायी शासन**—लोकतन्त्र में समय-समय पर हुए निर्वाचनों में राजनीतिक दलों के बहुमत बदलते रहते हैं। अत: सरकारें अस्थायी होती हैं। एक सरकार के बदलने पर प्राय: उसकी सारी नीतियाँ बदल जाती हैं और पुन: नये रूप से नई नीतियाँ तैयार होती हैं। इस प्रकार लोकतन्त्र में शासन अस्थायी होता है, जिससे समाज का अहित होता है।
6. **बहुमत दल का अधिनायकत्व**—प्रजातन्त्र में बहुमत दल का शासन होता है। "अपने बहुमत के बल पर शासकीय दल अनेक जनहित विरोधी तथा जन-आकांक्षाओं के विपरीत भी कार्य करता है।" इस प्रकार प्रजातन्त्र में बहुमत दल का अधिनायकत्व स्थापित हो जाता है।
7. **संकट के समय अनुपयुक्त**—आपात स्थिति का दृढ़ता के साथ सामना करने के लिए एकता तथा शीघ्र निर्णय की आवश्यकता होती है। प्रजातन्त्र में संसदीय परम्पराओं के अनुसार निर्णय लेने में अधिक समय लगता है। अनेक विषयों पर विचार वैमनस्य भी रहता है। अत: संकट के समय यह शासन पद्धति अनुपयुक्त सिद्ध होती है।
8. **अकुशल शासन**—प्रजातन्त्र में शासन अकुशल होता है। इसमें नये-नये व्यक्ति शासन में आते रहते हैं, जो शासन संचालन में अनभिज्ञ होते हैं। अत: वे कुशलतापूर्वक शासन कार्यों का सम्पादन नहीं कर पाते हैं । सर हेनरी मेन ने प्रजातन्त्र को 'बुद्धिहीन तथा अकुशल व्यक्तियों का शासन' कहा है।
9. **नैतिक मूल्यों की उपेक्षा**—प्रजातन्त्र में नैतिक मूल्यों की उपेक्षा होती है। निर्वाचन के समय सच्चाई और ईमानदारी के स्थान पर भ्रष्ट व अनैतिक तरीकों और धन के माध्यम से मतों को खरीदकर विजयी होना अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। निर्वाचन में प्राय: अधिकांश प्रत्याशी नैतिकता की उपेक्षा करके येन-केन प्रकारेण विजयी होने का प्रयास करते हैं। अत: प्रजातन्त्र अनैतिकता को जन्म देता है।
10. **बौद्धिक तथा सांस्कृतिक प्रगति का विरोधी**—प्रजातन्त्र नागरिकों की बौद्धिक तथा सांस्कृतिक प्रगति का विरोधी होता है। इसमें साहित्य, कला, विज्ञान तथा अन्य बौद्धिक प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि नहीं होती है । इस शासन में शासकीय तथा विरोधी, सभी राजनीतिक दल अपनी शक्ति मजबूत करने के लिए गन्दी राजनीति में पड़े रहते हैं। उनके पास नागरिकों के बौद्धिक

TOUCH 'n' PASS

तथा सांस्कृतिक विकास के लिए कार्य करने का समय नहीं रह जाता। इसलिए सर हेनरी मेन, लेकी तथा ट्रीटस्की आदि विचारकों का मत है कि प्रजातन्त्र बौद्धिक तथा सांस्कृतिक प्रगति के प्रतिकूल है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में लोकतंत्र की संभावनाओं का विवरण दीजिए।
Give the explanation of possibilities of democracy in India.

उत्तर

भारत में लोकतंत्र की संभावनाएँ
(Possibilities of Democracy in India)

भारत में लोकतंत्र का क्या भविष्य है, यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। प्रत्येक विचारवान् भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह इस प्रश्न पर गंभीरता पूर्वक चिंतन करे, सोचे कि क्या भारत में लोकतंत्र के सफल होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं? यदि नहीं तो उसकी सफलता के मार्ग में क्या बाधाएँ हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है?

भारत में लोकतंत्र की परम्परा
(Tradition of Democracy in India)

सिद्धांत और व्यवहार दोनों की दृष्टि से भारत के लिए लोकतंत्र का आदर्श नूतन नहीं है। यह ठीक है कि आज भारत में लोकतंत्र जिस व्यापक स्तर पर है, प्राचीन काल में कभी नहीं रहा। फिर भी इतिहास साक्षी है कि हमारे यहाँ लोकतंत्र की परम्परा शताब्दियों पुरानी है प्राचीन भारतीय चिंतन परम्परा में लोकतंत्र की भावना सदैव विद्यमान रहती थी। तत्कालीन जनता की जागरूकता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि शासक अपने दायित्वों का निर्वहन निष्ठापूर्वक नहीं कर पाता था, तो जनता उसका वध तक करने में नहीं हिचकती थी। हिंदू राजशास्त्रियों के अनुसार कर राजा का वेतन हैं। शासन जनता की सेवा करता है और जनता इसके बदले में उसे कर प्रदान करती है। **शुक्र** के शब्दों में राजा जनता की अनवरत रक्षा तथा उन्नति करने के उपलक्ष्य में अपने जीवन-निर्वाह के लिए करों के रूप में अपना पारिश्रमिक पाता है। करारोप के इस सिद्धांत का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता था कि यदि राजा जनता की उन्नति तथा रक्षा करने में असफल सिद्ध होता, तो प्रजा को यह अधिकार रहता था कि वह उसे करों से वंचित कर दे। बौद्ध ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे प्राचीन भारत में जनसत्तात्मक शासन की परंपरा अचूक रूप से पुष्ट होती है। बौद्ध संघों के संगठन का आधार विशुद्ध रूप से लोकतंत्रात्मक था। यूनानी यात्रियों और इतिहासकारों के विवरणों से पता चलता है कि जिस समय सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर सौभूति, यौधेय, क्षुद्रक, मालव्य और मुचकर्ण आदि शक्तिशाली गणराज्य स्थापित थे। इन गणराज्यों की शासन-व्यवस्था लोकतंत्र पर आधारित थी। कालान्तर में कतिपय सामाजिक और शासनिक दुर्बलताओं, आपसी लाग-डाट और चक्रवर्ती शासकों की राज्यलिप्सा के फलस्वरूप इन गणराज्यों का अंत हो गया। प्राचीन भारत में मानव-जीवन का विकास विभिन्न स्थानीय संस्थाओं के आधार पर हुआ था और इन स्थानीय संस्थाओं के फलस्वरूप जनता को लोकतंत्रात्मक शासन की कठिन कला की शिक्षा मिलती थी। कुटुम्ब, ग्राम, निगम, श्रेणी, गण और संघ आदि संस्थाएँ प्राचीन भारत में लोकतंत्र की आधारशिलाओं का कार्य करती हैं। यद्यपि भारत में बड़े-बड़े साम्राज्यों का उत्थान-पतन हुआ, लेकिन यहाँ ग्राम-पंचायतों की परम्परा ब्रिटिश शासन की स्थापना होने तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही थी इन ग्रामपंचायतों के माध्यम से ग्रामीण जनता अपने स्थानीय मामलों का स्वतंत्रतापूर्वक निदान करती थी।

स्वतंत्रता के पश्चात् (After Independence)

इसलिए, जब स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के नए संविधान ने सार्वभौम वयस्क मताधिकार के प्रवर्तन द्वारा देश में लोकतंत्र की स्थापना कर दी तो यह कोई जल्दबाजी या विचारहीनता का कार्य नहीं था। भारत के संविधान ने देश में लोकतंत्र की स्थापना के सभी आवश्यक उपकरण प्रदान किए हैं।

भारत का संविधान पूरी तरह लोकतंत्रात्मक हैं संविधान की उद्देशिका में भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने का संकल्प व्यक्त किया गया है और उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, समता, प्रतिष्ठा और समान अवसर को प्राप्त कराने का वचन दिया गया है। संविधान ने व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने

TOUCH 'n' PASS

का भी आश्वासन दिया है। संविधान की उद्देशिका में निहित राष्ट्रीय आदर्श, स्वतंत्र भारत के नए राष्ट्रीय जीवन मूल्य हैं। संविधान गत छह दशकों से इन जीवन-मूल्यों को चरितार्थ करने का प्रयत्न करता रहा है।

भारतीय संविधान ने नागरिकों को व्यापक मूल अधिकार दिए हैं। ये अधिकार निम्न 6 वर्गों में विभाजित हैं—1. समता का अधिकार, 2. स्वतंत्रता का अधिकार, 3. शोषण के विरुद्ध अधिकार, 4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, 5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार और 6. संविधानिक उपचारों का अधिकार।

भारतीय संविधान ने नागरिकों के मूल अधिकारों की गणना के साथ नागरिकों के कुछ मूल कर्त्तव्य भी गिनाए हैं। ये कर्त्तव्य अनुच्छेद 51क में दिए गए हैं जो इस प्रकार हैं—

"भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह—

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, संविधान, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।

(च) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत, वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखे।

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

(ङ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाईयों को छू ले।"

संविधान के भाग 4 में राज्य नीति के निर्देशक तत्वों का उल्लेख है ये तत्व किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं लेकिन देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्त्तव्य है। इन तत्वों में कहा गया है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था को, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोककल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा। राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व है—

(क) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।

(ख) समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो।

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन साधनों का अहितकारी संकेंद्रण न हो।

(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

(ङ) पुरुषों और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक विवशता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु और शक्ति के अनुकूल न हो।

(च) बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाएँ और बालकों और अल्पवयस्क व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।

भारतीय संघ की कार्यपालिका के अंतर्गत राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद्, महान्यायवादी तथा सिविल सेवाओं का विवेचन है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऐसे निर्वाचकगण के सदस्य करते हैं जिसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य करते हैं। जहाँ तक साध्य हो, राष्ट्रपति के निर्वाचन में भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के मापमान में एकरूपता रखी जाती है।

TOUCH 'n' PASS

राष्ट्रपति का कार्यकाल पाँच वर्ष है वह दुबारा निर्वाचित हो सकता है। भारत का एक उपराष्ट्रपति है। वह राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। उसका निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचकगण के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है।

संविधान ने राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् का प्रावधान किया है मंत्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमंत्री होता है। राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अहर्हित किसी व्यक्ति को भारत का महान्यायवादी नियुक्त करता है। महान्यायवादी का यह कर्त्तव्य है कि वह भारत सरकार को विधि संबंधी ऐसे विषयों पर सलाह दे और विधिक स्वरूप में ऐसे अन्य कर्त्तव्यों का पालन करे जो राष्ट्रपति उसको समय-समय पर निर्देशित करे या सौंपे और उन कर्त्तव्यों का निर्वहन करे जो उसको संविधान अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन प्रदान किए गए हों।

भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्रवाई राष्ट्रपति के नाम से की जाती है।

प्रधानमंत्री का यह कर्त्तव्य है कि वह संघ के कार्यकलाप के प्रशासन-संबंधी और विधान-विषयक प्रस्थापनाओं-संबंधी मंत्रिपरिषद के सभी विनिश्चय राष्ट्रपति को संसूचित करे।

संघ के लिए एक संसद है जो राष्ट्रपति तथा राज्य सभा और लोकसभा नामक दो सदनों से मिलकर बनती है। राज्य सभा राष्ट्रपति द्वारा नाम–निर्देशित बारह सदस्यों और राज्यों के और संघ राज्यक्षेत्रों के 238 से अनधिक प्रतिनिधियों से मिलकर बनती है। राष्ट्रपति उन 12 व्यक्तियों के नाम-निर्देशित करता है जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और समाज-सेवा विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है। राज्य सभा में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस राज्य की विधानसभा के विनिर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है।

लोकसभा राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुए पाँच सौ तीस से अनधिक सदस्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के 20 से अनधिक सदस्यों से मिलकर बनती है।

राज्यसभा का विघटन नहीं होता लेकिन उसके सदस्यों में से एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते हैं।

राष्ट्रपति समय-समय पर संसद के प्रत्येक सदन को अधिवेशन के लिए आहूत करता है। वह सदनों का या किसी सदन का सत्रावसान कर सकता है और लोकसभा का विघटन कर सकता है।

लोकसभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष लोकसभा की कार्यवाही का संचालन करता है।

संसद के दोनों सदनों ने अपने कार्य-संचालन और प्रक्रिया संबंधी नियमों का निर्माण कर लिया है। संसद ने धन विधेयकों और वित्तीय विधेयकों के बारे में भी प्रक्रिया निश्चित कर दी है। संसद के सदस्यों को सदन अथवा उसकी समितियों की बैठकों में अपने विचार व्यक्त करने की पूरी स्वतंत्रता है। मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। संसद प्रश्नों तथा विविध प्रकार की चर्चाओं द्वारा सरकार पर नियंत्रण रखती है। संसद की समितियाँ लघु संसदों के रूप में कार्य करती हैं और उसके बहुत से काम को निपटाती हैं।

अमेरिका जैसी अन्य संघात्मक प्रणालियों की भाँति भारत में संघ तथा राज्यों के न्यायालयों के अलग-अलग अधिक्रम नहीं है। भारत के समूचे गणराज्य के लिए एकीकृत न्यायिक प्रणाली है। सर्वोच्च तथा चोटी के न्यायालय के रूप में उच्चतम न्यायालय है। यह संघ तथा राज्यों के बीच के तथा राज्यों के आपसी संबंधों के मामलों के निपटारे के लिए एकमात्र मध्यस्थ है संविधान के किसी उपबंध का क्या अर्थ है इस विषय में भी अंतिम निर्णायक है।

भारत के संविधान में न केवल संघ का संविधान है, उसमें राज्यों का संविधान भी है। राज्यों के लिए उपबन्ध प्राय: संघ-शैली का अनुसरण करते हैं।

भारत में संघ लोक सेवा आयोग और राज्य सेवा आयोग संघ और राज्यों के अधीन सेवाओं का नियमन करते हैं। भारत का सेवातंत्र विश्व के सबसे प्रसिद्ध सेवातंत्रों में है।

संविधान के भाग 15, अनुच्छेद 324-329 में निर्वाचनों की व्यवस्था है गत 60 वर्षों में लोकसभा के लिए 14 आम चुनाव तथा विभिन्न राज्यों के लिए अनेक आम चुनाव हो चुके हैं और कुछ कमियों के बावजूद यह पाया गया है कि चुनाव निष्पक्ष, स्वतंत्र और सफल रहे हैं।

स्वतंत्र भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ। संविधान के कार्यकरण को 57 वर्ष हो चुके हैं। संविधान के अंतर्गत विधिवत् प्रथम निर्वाचन 1951-52 में हुए। प्रथम लोकसभा का गठन 17 अप्रैल, 1952 को हुआ। उसकी पहली बैठक 13 मई, 1952 को हुई।

TOUCH 'n PASS

प्र.2. लोकतंत्र के गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
Explain the merits of democracy in detail.

उत्तर

लोकतंत्र के गुण
(Merits of Democracy)

संतुलित मूल्यांकन की आवश्यकता—लोकतंत्र का सही-सही मूल्यांकन करना भी एक दुरूह समस्या है। एक ओर तो विचारकों का ऐसा वर्ग है जो लोकतंत्र को सर्वथा निर्दोष और पूर्ण शासन-प्रणाली मानता है और उसकी श्रेष्ठता में धार्मिक अंध-विश्वास जैसी भावना रखता है। दूसरी ओर ऐसे विचारकों का भी कोई अभाव नहीं है जिन्हें लोकतंत्र में निरी त्रुटियाँ दिखाई देती हैं और जो यह समझते हैं कि लोकतंत्र मृत्यु का और कुलीनतंत्र जीवन का वाहक है। ऐसी स्थिति में लोकतंत्र के गुण-दोषों का विवेचन करते समय हमें काफी सावधानी और संतुलित दृष्टिकोण रखने की आवश्यकता है। संक्षेपत: लोकतंत्र के पक्ष में अधोलिखित युक्तियाँ उपस्थित की जा सकती हैं—

1. **जनसाधारण की हित साधना**—लोकतंत्र की शायद सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह समानता के सिद्धांत पर आधारित है। वह इस विचार का खंडन करता है कि कुछ लोग तो आदेश देने के लिए और कुछ लोग आदेश पालन के लिए जन्म लेते हैं। प्रजातंत्र वर्ग-विशेष को सुविधाएँ देने का निषेध करता है। वह जनसाधारण के महत्त्व का प्रतिपादक है। लोकतंत्र में किसी भी नागरिक को जाति, वंश, धन या वर्ग के आधार पर उसके स्वाभाविक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। वह राज्य की सर्वोच्च शक्ति जनसाधारण के हाथों में समर्पित कर देता है और इस प्रकार सभी व्यक्तियों को राजनीतिक अधिकारों की समानता प्रदान करता है। लोकतंत्र में इस बात का विश्वास रहता है कि जनसमुदाय की इच्छानुसार कार्य किया जाएगा और शासन-कार्यों में किसी व्यक्ति की उपेक्षा न की जाएगी। **प्रो० हॉकिंग** (Prof. Hocking) का यह कहना बिलकुल सही है कि, 'लोकतंत्र राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में तंतुबंधन के समान पारस्परिक संबंध स्थापित कर देता है। लोकतंत्र के अतिरिक्त अन्य चाहे कोई सी शासन प्रणाली हो, चाहे वह राजतंत्र हो, चाहे कुलीनतंत्र उसमें जनसाधारण का माथा सदैव झुका ही रहता है। लोकतंत्र ही एकमात्र वह शासन प्रणाली है जिसमें जनसाधारण अपना मस्तक गर्व से ऊँचा कर सकता है और जिसमें छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी यह नहीं कह सकता कि मेरी नहीं सुनी गई।
2. **स्वतंत्रता का प्रसार**—लोकतंत्र का एक अन्य बडा गुण यह है कि वह नागरिक समुदाय के बीच स्वतंत्रता की भावना का प्रसार करता है। चूँकि लोकतंत्र में लोग अपना शासन अपने आप करते हैं, अत: वे दास नहीं हो सकते। इस व्यवस्था के अंतर्गत जनता को शास्वत विचार और विश्वास की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है और जनता के ऊपर राज्य की ओर से कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता। यदि शासन जनता के मनोनुकूल नहीं है, तो जनता उसकी आलोचना कर सकती है और यदि चाहे तो शांतिपूर्ण एवं वैधानिक उपायों द्वारा उसे बदल भी सकती है। लोकतंत्रात्मक देशों में नागरिक अधिनायकवादी देशों की तुलना में कहीं अधिक वैयक्तिक स्वाधीनता का उपभोग करते हैं। अधिनायकवादी देशों में तो गुप्त पुलिस और समाहार शिविरों की प्रधानता रहती है तथा जनसाधारण की वैयक्तिक स्वतंत्रताओं को बुरी तरह दबा दिया जाता है। मानव जाति के लिए स्वतंत्रता का क्या महत्त्व है यह मिल के इस कथन से स्पष्ट है कि, "जिस समाज में इन स्वतंत्रताओं (नागरिक स्वतंत्रताओं) का आदर नहीं होता। वह आजाद नहीं होता, चाहे उसकी कुछ भी शासन प्रणाली हो.....।
   एक मात्र वांछनीय स्वतंत्रता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से उस समय तक अपना हित साधन करने में स्वतंत्र हो जब तक कि वह दूसरों को उनकी हित साधना से वंचित न करे .....। यदि मनुष्य जाति प्रत्येक व्यक्ति को अपने ढंग से जीवन यापन की स्वतंत्रता देती है, तो उसे विशेष लाभ होता है। यदि वह प्रत्येक व्यक्ति को शेष समाज की इच्छानुसार जीवन-यापन करने के लिए बाध्य करता है, तो इसमें उसकी ही हानि है।"
3. **मनोवैज्ञानिक आधार**—लोकतंत्र के पक्ष में मनोवैज्ञानिक युक्तियाँ भी उपस्थित की जा सकती हैं। लोकतंत्र जनता की सहमति का शासन है। इसके अंतर्गत स्वतंत्र निर्वाचन होते हैं और जनता अपने प्रतिनिधियों को अपने आप चुनती है। ये प्रतिनिधि जिन विधियों का निर्माण करते हैं, वे जनता की इच्छाओं के अनुसार होती हैं और उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त रहता है। "लोकप्रिय शासन का मूल्य यह है कि वह उन साधनों को प्रदान करता है जिनके द्वारा जनता की इच्छाओं का ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार राज्य के व्यवहार को तदनुकूल बनाया जा सकता है।" लोकतंत्रात्मक शासन में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपने प्रत्येक कदम पर इस बात का ध्यान रहता है कि उसकी जनता के ऊपर क्या सम्भाव्य प्रतिक्रिया होगी। फलत:, वे अपनी नीति पर्याप्त सोच-विचार के उपरांत और जनता की नस-नाड़ी पर हाथ रखकर बनाते हैं।

4. **व्यावहारिक लाभ**—तथापि, लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति उसकी सैद्धांतिक श्रेष्ठता में नहीं, प्रत्युत उसकी व्यावहारिक उपयोगिता में निहित है। वृक्ष का ज्ञान उसके फलों से होता है। लोकतंत्र इस कसौटी पर बिलकुल खरा उतरता है। लोकतंत्रात्मक देशों में देशभक्ति की भावना अन्यान्य शासन-प्रणालियों की तुलना में काफी अधिक रहती है। चूँकि लोकतंत्र में शासन जनता की कृति होता है। अत: उसके प्रति जनता में निष्ठा भी होती है। इस प्रकार, लोकतंत्र हिंसात्मक क्रांतियों की संभावनाओं को कम कर देता है।
5. **नैतिक गुण**—लोकतंत्र का नैतिक पक्ष भी बहुत शक्तिशाली है। लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह कितना हीन क्यों न हो, पवित्र माना जाता है और उसके आत्म-सुधार का प्रयास किया जाता है। लोकतंत्र मनुष्यों में उच्चतम नैतिक गुणों का विकास करता है और उन्हें आत्म-निर्भरता, उपक्रम, उत्तरदायित्व तथा सहिष्णुता का पाठ पढाता है।
6. **नागरिक शिक्षा की प्रयोगशाला**—लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली जनसाधारण को नागरिकता की शिक्षा प्रदान करती है। उसे एक प्रकार से नागरिक शिक्षा की सर्वश्रेष्ठ प्रयोगशाला माना जा सकता है। लोकतंत्र जनता की बैद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करता है। चूँकि लोकतंत्र में जनता समय-समय पर निर्वाचनों में भाग लेती है और उसे चाहे परोक्ष रीति से ही सही शासन में योगदान देना पड़ता है, अत: वह समय की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को अच्छी तरह से समझने लगती है। स्वशासन और सार्वजनिक कार्यों में योगदान देने से व्यक्ति के अंदर आत्मविश्वास का भाव जाग्रत होता है और वह स्वार्थ की संकुचित सीमाओं से बाहर निकलता है। नागरिक यह समझता है कि वह संपूर्ण समाज का एक अंग है और वह अपनी संपूर्ण शक्तियों और योग्यताओं द्वारा समग्र समाज के कल्याण का प्रयास करता है।

प्र.3. भारतीय लोकतंत्र के सामने कौन-सी प्रमुख चुनौतियाँ हैं? ये चुनौतियाँ किस प्रकार एक प्रभावशाली लोकतान्त्रिक व्यवस्था बनाने के संभावित अवसर हैं? वर्णन कीजिए।

Which are the main challenges faced by Indian democracy? How are these probable possibilities in making an effective democratic system? Explain.

उत्तर

भारतीय लोकतंत्र की चुनौतियाँ
(Challenges of Indian Democracy)

भारत स्वतंत्रता प्राप्ति से एक जिम्मेदार लोकतंत्र के रूप में कार्य कर रहा है इसकी अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों द्वारा सराहना की जाती है इसने चुनौतीपूर्ण स्थितियों को सफलतापूर्वक अपनाया है सभी राजनीतिक कार्यालयों के लिए पंचायत से प्रेसीडेंट तक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष आवधिक चुनाव हुए हैं एक राजनीतिक दल अथवा राजनीतिक दल के गठबंधनों से दूसरे राजनीतिक दल में निर्बाध राजनीतिक शक्तियों का हस्तांतरण हुआ है जो राष्ट्रीय एवं राज्य दोनों स्तरों पर अनेक बार हुआ है। आप हमारे पडौसी देशों पाकिस्तान, म्याँमार एवं बांग्लादेश में भी अनेक उदाहरण पाएँगे जहाँ शक्तियों का हसतांतरण मिलिट्री हस्तक्षेप से हुआ है।

विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका अंग अच्छी तरह से कार्यशील हैं संसद एवं राज्य विधान मंडल प्रश्नकाल इत्यादि जैसे साधनों से कार्यपालिका पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण रखती हैं अति महत्त्वपूर्ण कुछ प्रभावशाली अधिनियम जैसे सूचना अधिकार अधिनियम 2005 शिक्षा का अधिकार 2009 एवं अन्य कल्याणकारी तरीकों से जनता को शक्तिशाली बनाया गया है जन-संचार मीडिया, प्रिंट एवं इलोक्टोनिक मिलाकर को पूरी स्वायत्तता है एवं वह जनता की राय को तैयार एवं प्रभावित करने में मुख्य भूमिका निभाती है। जीवन के लगभग सभी स्थितियों प्रभावकारी परिवर्तन हो रहे हैं और राष्ट्र सामाजिक-आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर हैं।

भारत एक बहुत बड़ा देश है जिसमें भाषा, संस्कृति एवं धर्म की अनेक विविधताएँ हैं। स्वतंत्रता के समय भारत आर्थिक रूप से अविकसित राष्ट्र था। हमारे देश में अनेक क्षेत्रीय विषमताएँ, व्यापक गरीबी, निरपेक्षता, बेरोजगारी और लगभग सभी जन कल्याण साधनों की कमी की स्वतंत्रता से नागरिकों को बहुत सी अपेक्षाएँ थी? हालाँकि भारत ने बहुत प्रगति की है। तथापि, देश समाज के विभिन्न वर्गों की अपेक्षाओं की पूर्ति के मामले में अनेक चुनौतियों का मुकाबला कर रहा है, ये चुनौतियाँ वर्तमान में देशों एवं अन्तर्राष्ट्रीय तिथियों दोनों के साथ-साथ लोकतंत्र के निर्बाध कार्यशीलता हेतु पर्याप्त पूर्वपेक्षाओं की कमी से आई हैं।

साक्षरता प्राप्ति (Literacy Achievements)

स्वतंत्रता समय भारत में लोकतंत्र के सफल कार्यशीलता हेतु व्यक्तियों में मैली निरक्षरता एक गंभीर चिन्ता की बात थी एवं यह अब भी एक मुख्य चेतावनी बनी है लोकतंत्र की सफल कार्यशीलता एवं देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए दोनों ही

नागरिकों का शिक्षा-स्तर महत्त्वपूर्ण हैं और शायद अत्यधिक महत्त्वपूर्ण यह मानव-सम्मान हेतु एक अनिवार्य शर्त हैं लेकिन भारत की स्वतंत्रता प्राप्त के समय औपचारिक साक्षरता का स्तर निराशाजनक था। 1951 में पुरुषों मे 18.33 प्रतिशत एवं महिलाओं में 8.9 प्रतिशत नगण्य साक्षरता की अत: यह आशंका व्यक्त की गई थी कि नागरिक अपनी भूमिका को प्रभावी रूप से अदा नहीं कर सकता और मताधिकार को सार्थकता के साथ पूरा नहीं कर पाएंगे जो जन शक्ति का एक व्यक्तिगत अभिव्यक्ति है।

जैसा कि आप जानते हैं कि इस आशंका के तथापि भारतीय मतदाताओं ने इन वर्षों में गलत सिद्ध कर दिया है उनके पर्याप्त संख्या में निरक्षर होने के बावजूद, उन्होंने अपने मताधिकार के अनेक के अनेक बार उपभोग कर परिपक्वता दिखाकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राजनीतिक शक्ति का शांतिपूर्ण हस्ताक्षरण किया हैं। श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सन् 1970 के प्रारम्भिक समय में लोकप्रिय एवं शक्तिशाली थी लेकिन 1977 के आम चुनाव में, भारत की जनता ने 1975-77 के आपातकाल के दौरान शक्तियों का दुरूपयोग करने के कारण उसे मुख्यत: अस्वीकार कर दिया और केन्द्र में जनता पार्टी के रूप में पहली बार गैर-कांग्रेसी सरकार को अवसर प्रदान किया उसके बाद, केन्द्र और राज्यों की सरकार में लगभग नियमित तौर पर परिवर्तन होते रहें हैं।

साक्षरता नागरिकों को न केवल चुनाव में भाग लेने एवं उनके मताधिकार को प्रभावी तरीके से प्रयोग करने हेतु योग्य बनाती है बल्कि इसके और भी महत्त्वपूर्ण आयाम है नागरिको को साक्षरता से देश में विभिन्न पराजों, समस्याओं, मांगों एवं हितों की जानकारी मिलती हैं यह उन्हें सभी की स्वतंत्रता एवं समानता के मूल सिद्धान्तों का बोध कराता हैं एवं सुनिश्चित करता है कि उनके द्वारा चुने गए प्रतिनिधि समाज के सभी-हितों का सही प्रतिनिधित्व करें, अत: सार्वजनिक साक्षरता ही भारतीय लोकतंत्र के सफल कार्यशीलता हेतु आवश्यक है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार यद्यपि साक्षरता 74.04 प्रतिशत तक बढ़ी है पर महिला साक्षरता दर 65.46 प्रतिशत तक सीमित रही है इसका तात्पर्य है कि देश की एक चौथाई जनसंख्या अभी तक निरक्षर है जबकि महिलाओं में तीन में से एक महिला साक्षर है यदि बच्चे बुनियादी शिक्षा पाते हैं तो निरक्षरता की समस्या रुक सकती है हाल ही में शिक्षा अधिकार को मौलिक अधिकार बना दिया है हमें आशा है कि इससे समान रूप से बच्चों की शिक्षा प्रदान करने में सहायता मिलेंगी।

गरीबी (Poverty)

यह सामान्यता कहा जाता है कि एक भूखे इंसान के लिए वोट के अधिकार का कोई मतलब नहीं है उसके लिए परम प्राथमिकता भोजन है अत: गरीबी को लोकतंत्र का सबसे बडा अभिशाप माना गया है अत: वास्तव में यह सभी प्रकार के वंचनों एवं असमानताओं का मूल कारण है यह जनता को स्वस्थ एवं सफल जीवन जीने के अवसरों को नकारना हैं निसंदेह भारत को लंबे शोषण के कारण पूर्ण ब्रिटिश उपनिवेश शासन से गरीबी विरासत में मिली है लेकिन यह आज तक सबसे गम्भीर समस्या बनी हुई है आज भी भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा जिसे बी०बी०एल० कहते हैं, में रहती है गरीबी रेखा का तात्पर्य है कि आय का ऐसा स्तर जिसमें कोई व्यक्ति भोजन उससे भी कम कपड़ों और आश्रय (घर) की अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा नहीं कर सकता है वर्ष 1960 में गरीबी रेखा की सरकारी परिभाषा में गरीबी की स्थिति व्यक्ति द्वारा ली जाने वाली कैलोरी की पोष्टिक स्तर वाली केवल न्यूनतम वांछित भोजन को खरीदने की आय की राशि पर आधारित है। इसके अनुसार भारतीय ertmotor@policybazoar.com स्थिति में गरीबी रेखा से परे रहने हेतु ग्रामीण इलाके में रहने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन औसतन 2400 कैलोरी और शहरी इलाकों में प्रतिदिन 2100 कैलोरी की जरूरत होती है। सन् 1990 के दौरान गैर खाद्य मदें जैसे कपड़ा, रोजगार आश्रय (घर) शिक्षा इत्यादि को गरीबी की परिभाषा में शामिल किया गया था।

इस समकालीन दौर में गरीबी अधिकारों की प्रणालीगत वंचन से सबद्ध है यह मबाडउल हर (एच डी आई) धारजा से भी जुड़ा हुआ है। एच डी आई के परिपेक्ष्य में देखते हुए गरीबी की परिभाषा में सामाजिक आर्थिक-राजनीतिक एवं मानव अधिकार के मामले भी शामिल हैं।

भारत में लगातार अवस्थित गरीबी के अनेक कारण हैं जिसमें से एक महत्त्वपूर्ण कारण कायक बेरोजगारी एवं अवरोजगारी (अंडर एमप्लॉयमेंट) हैं ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लोगों को नियमित एवं पर्याप्त काम नहीं मिलता शहरी क्षेत्रों में भी शिक्षित बेरोजगारी की संख्या बहुत अधिक है यद्यपि जनसंख्या सबसे बड़ा संसाधन है तथापि बढ़ती हुई जनसंख्या को भी गरीबी का एक कारण माना जाता है वास्तव में आर्थिक विकास की प्रक्रिया सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में असमर्थ रही हैं और गरीब तथा अमीर के बीच की खाई को वाटा नहीं जा सका है। इस सभी कारणों से भारतीय लोकतंत्र के लिए गरीबी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है।

लैंगिक भेदभाव (Gender Discrimination)

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम लड़कियों एवं महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव देखते हैं तथा हमारे समाज और राज्य में भी लैंगिक भेदभाव परिलक्षित होता है, लेकिन हम जानते हैं कि लैंगिक समानता लोकतंत्र का एक प्रमुख सिद्धान्त है। भारतीय संविधान राज्य को इसके लिए उत्तरदायी बनाता है कि पुरुष एवं महिला के बीच समानता हो और महिलाओ के विरुद्ध कोई भेदभाव न हो।
मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य एवं राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त भी संविधान की इन बातों को बहुत स्पष्ट करते हैं।
पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या सन् 1901 से घटती जा रही है, 1901 में प्रति 1000 पुरुषों पर 972 महिलाओं का लिंग अनुपात का सन 2011 की जनगणना के अनुसार लिंग-अनुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 940 महिलाओं का है जो महिलाओं के बिल्कुल पक्ष में नहीं है। कुछ राज्यों में सन् 2011 की जनगणना में हरियाणा में लिंग अनुपात 1000 पुरुषों में 877 महिलाएँ है और सबसे कम यह अनुपात दमन एवं दीव 618 महिलाओं और 866 महिलाओं का एनसीटी दिल्ली में है।
शिशु लिंग अनुपात भी एक गम्भीर चिन्ता का विषय है सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में शिशु लिंग अनुपात (6 वर्ष तक) प्रति 1000 लड़कों पर मात्र 914 लड़कियों का हैं यह अनुपात प्रति 1000 लड़को पर 927 लड़कियों के 2001 की जनगणना से कम है, समाज में लड़को को प्राथमिकता जन्म से ही लड़कियों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार एवं लड़कियों की हत्या एवं कन्या भ्रूण हत्या इसकी गिरावट के प्रमुख कारण हैं आधुनिक तकनीक से लोग गताको को भ्रूण मादा शिशु का गर्भपात कराने हेतु मजबूर कर देते हैं लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का शिशु मृत्यु दर अपेक्षाकृत अधिक है। सन् 2004-06 में सेंपल रजिस्ट्रेशन प्रणाली के अनुसार जच्चा मृत्यु दर प्रति एक लाख जन्म पर 254 की जिसे अत्यधिक माना जाता है।
सोसाइटी ऑफ इंडिया, जिसने देश में मादा शिशुओं की हत्या एवं मादा भ्रूण हत्या के विरुद्ध अभियान चलाया है, 2010 की अपनी रिपोर्ट में लिखा हैं कि हरियाणा के 21 जिलों में एक जिला भिवानी में 100 दुल्हनों को विवाह हेतु लाया गया था।

'दि इकानोमिस्ट', 4 मार्च 2010 प्रिंट एडीसन (इंटरनेशनल) से उद्धृत

जातिवाद, साम्प्रदायिकता एवं धार्मिक कट्टरवाद (Racism, Communalism and Religious Fundamentalism)

भारतीय लोकतंत्र गम्भीर चुनौतियों एवं जातिवाद साम्प्रदायिकता एवं धार्मिक कटटरवाद का सामना कर रहा है। ये लोकतंत्रीय प्रणाली की कार्यशीलता एवं स्थिरता को कमजोर करते हैं।

(क) **जातिवाद**—अनुमान लगाया जाता है कि जाति-व्यवस्था का अभ्युदय प्राचीन समाज में श्रम विभाजन के संदर्भ में हुआ का जो धीरे-धीरे जन्म पर आधारित ककोर-समूह वर्गीकरण में परिवर्तित हो गया। क्या आपने समाज एवं अपने व्यक्तिगत जीवन में जातिवाद की भूमिका का अनुभव नहीं किया है? आप सहमत होंगे इसमें छुआ-छूत की प्रथा जातिवाद का सर्वाधिक हानिकारक एवं अमानवीय पहलू है जिसमें संवैधानिक प्रतिबंध लगने के बावजूद यह प्रथा हमारे समाज से अलगांव हुआ एवं जिन्हें शिक्षा एवं अन्य सामाजिक लाभों से वंचित रखा गया। दलित जातियों का किसी एक किस्म का दासोचित श्रम और समाज में सब से कठिन शारीरिक कार्य करना पड़ता हैं लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रियाओं में भी जातिवाद की नकारात्मक भूमिका रही है वास्तव में, जातिवाद का उपयोग संकीर्ण राजनीतिक लाभ के लिए जातिवाद लोकतंत्र के मौलिक तत्वों का विरोधी है लोकतंत्र से उपलब्ध समानता भाषण एवं अभिव्यक्ति एवं संघ की स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों निर्वाचन प्रक्रिया में हिस्सा लेने के अवसर, स्वतंत्र मीडिया एवं प्रेस एवं विद्यायिकी विद्यायिका मंच का दुरूपयोग प्राय: जातिगत पहचान को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है।
सामाजिक-आर्थिक असमानता को कायम रखने हेतु जातिवाद भी उत्तरदायी है यह सच है कि भारत अनादिकाल से एक असमान समाज रहा है। अनुसूचित जातिवाद (एस सी) सूचित जन जातियाँ (एस टी) एवं पिछड़ी जातियों वर्षों से सामाजिक-आर्थिक लाभ से वंचित रही हैं हमारे समाज की जाति आधारित असमानता भारतीय लोकतंत्र के लिए एक गम्भीर चुनौती बनी हुई हैं। जाति एवं राजनीति के मिश्रण से जातियों का राजनीतिकरण एवं अति गंभीर स्थिति है एवं वर्तमान भारतीय राजनीति में जातिवादकरण से हमारे लोकतंत्र में गम्भीर चनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। वर्तमान उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण के युग के बावजूद, जातिगत चेतना हमारे समाज से कम नहीं हुई है और जातियों को अधिकांशत वोट-बैंक राजनीति के रूप में उपयोग किया जा रहा है।

(ख) **साम्प्रदायिकता**—भारत में साम्प्रदायिकता एवं धार्मिक कट्टरवाद ने एक खतरनाक एवं मभावह रूप ले लिया है ये हमारे बहुधर्मी समाज में हमारे सह-अस्तित्व के ढांचे को तोड़ रहे हैं साम्प्रदायिकता भारत की राष्ट्रीय एकता का निरादर करता

TOUCH 'n' LEARN

है और इसके एक पंथ निरपेक्ष संस्कृति के विकास के मार्ग में बड़ा बाधक है यह हमारी लोकतांत्रिक राजनीतिक स्थायत्वि के लिए खतरा एवं मानवीय एवं मिश्रित संस्कृति की यशस्वी परम्पराओं को बर्बाद कर रहा है प्राय: सम्प्रदायिकता को धर्म या रूढ़िवादिता का पर्यायवाची माना जाता है अपने धर्म वे प्रति निष्ठा एवं धार्मिक समुदाय से लगाव साम्प्रदायिकता नहीं है। यद्यपि रूढ़िवादिता सामाजिक पिछड़ापन दर्शाती है तो पर भी इसे साम्प्रदायिकता नहीं माना जा सकता है वस्तुत: साम्प्रदायिकता किसी धार्मिक समुदाय से कट्टरपंथी आधार पर जुड़े रहने की राजनीतिक विचारधारा है यह एक धार्मिक समुदाय को दूसरे समुदाय से विरोध करती है और दूसरे समुदाओं को अपना दुश्मन समझती है यह पंथ निरपेक्षता तथा यहाँ तक मानवतावाद की भी विरोधी है। साम्प्रदायिकता का एक प्रमाणन समुदायिक दंगे है पूर्व में हाल ही के वर्षों में कई समय पर साम्प्रदायिकता हमारे सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के लिए गम्भीर खतरा साबित हुई है।

(ग) **धार्मिक कट्टरवाद**—धार्मिक कट्टरवाद भी साम्प्रदायिक ताकतों को धर्म एवं राजनीति दानों को शोषण करने को बढ़ावा देता है वस्तव: कट्टरवद एक विचारधारा की तरह कार्य करती है जो रूढ़िवाद की वापसी की वकालत करता है और धर्म की कट्टरता के सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करता है। धार्मिक कट्टरवाद प्रगामी सुधारों का कठोरता से विरोध करती है जिससे वे अपने संबंधित समुदायों पर एक छत्र नियंत्रण स्थापित कर सकें।

क्षेत्रीयवाद (Regionalism)

भारतीय लोकतंत्र क्षेत्रीयवाद से भी संघर्ष कर रहा है जो मुख्यत: क्षेत्रीय विषमता एवं विकास की असमानता का परिणाम हैं। हम सभी जानते हैं कि भारत एक बहुसंख्यक देश है जिसमें धार्मिक, भाषागत, सामुदायिक, जनजातिगत तथा सांस्कृतिक विविधताएँ सदियों से विद्यमान हैं बहुत से सांस्कृतिक एवं भाषागत समुदाय कुछ खास क्षेत्रों में रहते हैं यद्यपि विकास का उद्देश्य देश सभी क्षेत्रों की वृद्धि एवं समान विकास रहा है लेकिन प्रति व्यक्ति आय, साक्षरता दर, स्वास्थ्य एवं शिक्षा की आधारभूत सरंचना एवं सेवा, जनसंख्या स्थिति तथा औद्योगिक एवं कृषि विकास के संबंधित क्षेत्रीय विषमताएँ एवं असंतुलन विद्यमान हैं राज्यों के बीच एवं एक राज्य के विभिन्न इलाकों के मध्य असमान विकास के होने एवं जारी रहने से लोगो में उपेक्षा, वचन एवं पक्षपात की भावना पैदा करता है। ऐसी स्थिति से क्षेत्रीयवाद पनपा है जिसके कारण नए राज्यों के निर्माण स्वायत्तता, राज्यों को अधिक अधिकार देने की मांगे और पकड़ रही हैं।

यह सोच है कि भारत जैसे विशाल एवं बहुसंख्यक देश में क्षेत्रीयवाद या उप-क्षेत्रीयवाद का होना अस्वाभाविक नहीं है परन्तु क्षेत्रीय अथवा उप-क्षेत्रीयवाद हितों का समर्थन देने अथवा उनका पोषण करने के प्रत्येक प्रयास को विभाजक, विखंडक अथवा देश-विरोधी प्रवृति नहीं कहा जा सकता है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन हितों का राजनीतिराज किया जाता हैं और क्षेत्रीय आंदोलनों को गलत राजनीतिक उद्देश्यों के लिए बढ़ावा दिया जाता है। इस प्रकार हानिकारक क्षेत्रीय अथवा उप-क्षेत्रीय देशभक्ति कैंसर के समान एवं विघटनकारी है लगातार क्षेत्रीय असमानता से हमारे देश के कुछ भागों में उग्रवादी आंदोलन प्रारम्भ हो गए हैं जम्मू तथा कश्मीर अथवा असम में यूएलएमए (यूनाइटेड लिबरेशन फंड ऑफ असम) के अलगाववादी मांगें अथवा उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में विभिन्न समूहों की मांगे भारतीय राजनीति के लिए चिन्ता का विषय है।

भ्रष्टाचार (Corruption)

सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार भारतीय लोकतंत्र के लिए चिन्ता का विषय है 2010 में ट्रान्सपरेन्सी इन्टरनेशनल के भ्रष्टाचार बोध सूचकांक (सीवीआई) में भ्रष्टाचार के आधार पर भारत को 178 देशों की सूची में 95वाँ स्थान प्राप्त हुआ वास्तविकता में भारत में भ्रष्टाचार जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है चाहे वह भूमि और सम्पत्ति, स्वास्थ्य, शिक्षा, वाणिज्य एवं उद्योग, कृषि परिवहन, पुलिस, सैन्यबल, यहाँ तक कि धार्मिक संस्थानों अथवा तथाकथित अध्यात्मिक क्षेत्र के स्थानों में हो भ्रष्टाचार राजनीति, नौकरशाही एवं कारपोरेट क्षेत्र के तीनों स्तरों में गुप्त अथवा प्रत्यक्ष तरीके से विधमान है कोई भी राजनेताओं, नौकरशाहों एवं औद्योगिकों के मध्य ऐसा संबंध देख सकता है जो भ्रष्टाचार एवं भ्रष्ट कार्यों को अंजाम देता हैं भ्रष्टाचार के तारों ने सरकार के सभी अंगों, न्यायपालिका को मिलाकर प्रभावित किया हैं सबसे प्रमुख चिन्ता का विषय निर्वाचन प्रक्रिया में भ्रष्टाचार तथा मतदान करने वाले विभिन्न स्तर के मतदाताओं को घूस देकर मतदान करवाने की प्रथा आम हो गई हैं।

हाल ही के वर्षों में देश में एक के बाद एक कई बड़े-बड़े घोटाले सामने आए हैं वस्तुत भ्रष्टाचार राजनीतिक अस्थिरता एवं संस्थागत ह्रास का प्रतीक हैं जो शासन की वैधता एवं औचित्या को गम्भीरता से चुनौती दे रहा है।

TOUCH 'n PASS

राजनीति का अपराधीकरण (Criminalisation of Politics)

हाल ही के वर्षों में, भारत में राजनीति में अपराधीकरण एक बहस का मुद्दा हो गया है यह आरोप लगाए जा रहे हैं कि राजनीति में कुछ ऐसे तत्व हैं। जिन्हें लोकतंत्रीय मूल्यों एवं व्यवहारों में विश्वास नहीं है वे हिंसा में लिप्त रहते हैं और चुनाव जीतने के लिए अन्य हानिकारक अलोकतंत्रीय तरीकों का सहारा लेते हैं निसंदेह, राजनीति में यह हानिकारक प्रवृत्ति है और ऐसी प्रवृतियों की रोकथाम की तुरंत आवश्यकता हैं।

राजनीति का अपराधीकरण लोकतंत्रीय मूल्यों को नकारना है और इसका लोकतंत्रीय ढाँचे में कोई स्थान नहीं हैं लोकतंत्र को लोकतंत्रीय मूल्यों को अपनाकर उन्हें विकसित कर सशक्त बनाना है और अपराधिक कार्यकलापों को दूर करना है।

हाल ही में राजनीति में अपराधी प्रवृतियों पर गंभीरता से संज्ञान लेते हुए न्यायपालिका ने ऐसे तत्वों पर पूरी रोक लगाने निवारणात्मक उपाय लागू करने के संकेत दिए हैं इस मामले को केन्द्रीय सरकार एवं बहुत सी राज्य सरकारें गंभीरता से लेकर प्रभावी कदम उठा रही हैं। यह बड़े संतोष एवं स्वध्य संकेत हैं कि हमारे देश में लोकतंत्र सफलता से कार्यशील है हम एक जागरूक नागरिक एवं संसार में सबसे बड़े लोकतंत्र के मतदाता के रूप में ऐसे व्यक्ति को हतोत्साहित करने में सहयोग करें जिसमें कोई अपराधिक भूमिका वाला व्यक्ति चुनाव में खड़ा न हो।

राजनीतिक हिंसा (Political Violence)

हमारे साथ हिंसा बहुत लम्बे समय से रही हैं किन्तु राजनीतिक उद्देश्य से हिंसा का उपयोग किसी व्यवस्था के अस्तित्व के लिए खतरा है भारत में हमने कई प्रकार की हिंसाए देखी हैं साम्प्रदायिक हिंसा जातिवादी हिंसा तथा राजनीतिक हिंसा जिसने सामान्यतया गम्भीर रूप ले लिया है साम्प्रदायिक दंगों को राजनीतिक धार्मिक एवं आर्थिक कारणों से निहित स्वार्थ के लिए कराया जाता है जातिवादी हिंसा विभिन्न रूपों में बढ़ती जा रही हैं। कृषि क्षेत्र में विकास, जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन एवं हरित एवं श्वेत क्रांति के बावजूद समाज में सामंतवादी तत्वों का बोलबाला बना हुआ हैं उच्च एवं मध्य जातियों के बीच हितों का गम्भीर टकराव हुआ हैं एवं जिसके परिणाम स्वरूप राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए आक्रात्मक प्रति द्वन्द्विता होने लगी है जो प्राय हिंसा को जन्म देती है।

दलित एवं निम्न जातियों, विशेष रूप से, अनुसूचित जातियों एवं पिछड़ी जातियों में अपने अधिकारो के प्रति बढ़ती जागरूकता एवं प्रभावशाली ढंग से उन अधिकारों का दावा करने की प्रवृति के कारण उच्च जातियों द्वारा की जाने वाली तीखी प्रतिक्रिया से भी जातिवादी हिंसा बढ़ी हैं चुनावों के दौरान या तो मतदाताओं को मत देने के लिए बढ़ावा देने अथवा उन्हें मत नहीं देने के लिए हिंसा का प्रयोग किया जाता है इसके साथ ही अलग राज्य की सीमा में बदलाव लाने की माँगों के लिए भी हिंसा का सहारा लिया जाता है हिंसा का प्रयोग औद्योगिक हड़ताल किसानों के आंदोलन तथा छात्र-आन्दोलनों में भी बार-बार किया जाता है।

❑

TOUCH 'n PASS

UNIT-II

दल प्रणाली
Party System

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'समाज के समाजवादी प्रतिमान' का क्या अर्थ था?
What was meant by 'Socialist model of Society'?

उत्तर 1955 में कांग्रेस के आवड़ी अधिवेशन में यह संकल्प पारित हुआ कि देश में सामाजिक कल्याण व न्याय के सूत्र देश की अर्थव्यवस्था को अनुप्रेरित करेंगे।

प्र.2. कांग्रेस को गठबन्धनयुक्त प्रकृति की पार्टी क्यों कहा जाता है?
Why is congress called a party of coalitional nature?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में देश के सभी धर्मों, सम्प्रदायों, वर्गों, जातियों, क्षेत्रों, हितों आदि के लोग सम्मिलित हैं, अत: यह विविध हितों का समूहन करती है।

प्र.3. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को विचारधारा की दृष्टि से तटस्थ दल क्यों कहा जाता है?
Why is Indian national congress called an ideologically neutral patty?

उत्तर राजनीतिक दल दक्षिणपंथी या वामपंथी विचारधारा पर बनते हैं। यदि साम्यवादी व समाजवादी पार्टियाँ वामपंथी हैं तो भारतीय जनसंघ (अब भारतीय जनता पार्टी) व स्वतन्त्र पार्टी दक्षिणपंथी कही जाती हैं। कांग्रेस दोनों विरोधी विचारधाराओं का ऐसा समागम है कि उसको किसी विशेष कोटि में नहीं रखा जा सकता।

प्र.4. समाजवादी आन्दोलन के कुछ प्रमुख नेताओं व चिन्तकों के नाम लिखिए।
Write the names of some prominent leaders and thinkers of socialist movement.

उत्तर भारत के प्रमुख समाजवादी चिन्तक निम्नलिखित हैं—(i) अच्युत पटवर्धन, (ii) आचार्य नरेन्द्रदेव, (iii) जयप्रकाश नारायण, (iv) राजनारायण, (v) अशोक मेहता, (vi) राममनोहर लोहिया।

प्र.5. जनसंघ की विचारधारा क्या थी?
What was the ideology of Jana Sangh?
***अथवा* भारतीय जनसंघ की विचारधारा की किन्हीं दो विशेषताओं को उजागर कीजिए।**
***Or* Highlight any two features of the ideology of Bhartiya Jana Sangh.**

उत्तर जनसंघ अपनी विचारधारा और कार्यक्रमों की दृष्टि से अन्य दलों से अलग है। (1) जनसंघ 'एक देश, एक संस्कृति और एक राष्ट्र' के विचार का समर्थन करती है। यह ऐसा मानती है कि देश भारतीय संस्कृति और परम्परा के आधार पर आधुनिक, प्रगतिशील और शक्तिशाली बन सकता है। (2) जनसंघ ने भारत-पाकिस्तान को एक करके 'अखण्ड भारत' बनाने की बात कही थी।

प्र.6. बहुदलीय व्यवस्था क्या है?
What is multi-party system?
***अथवा* बहुदलीय व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?**
***Or* What do you understand by multi-party system?**

उत्तर बहुदलीय व्यवस्था का अर्थ है राजनीतिक तन्त्र में किसी एक दल अथवा दो दल के बजाय कई दलों की भूमिका तथा इन सभी दलों के द्वारा सत्ता प्राप्ति के प्रयत्न करना।

TOUCH 'n' PASS

बहुदलीय व्यवस्था में आवश्यक नहीं है कि सभी दल समान रूप से शक्तिशाली हों, ऐसा हो सकता है कि कोई एक या उससे अधिक दल अधिक प्रभावशाली भूमिका रखते हों। भारत इसका एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है जहाँ स्वतन्त्रता के पश्चात् कांग्रेस की सशक्त स्थिति के बावजूद कई अन्य दल, महत्त्वपूर्ण रहे। वर्तमान में भारत में कांग्रेस व भारतीय जनता पार्टी दो प्रमुख दल हैं तथा बहुत बड़ी संख्या में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की उपस्थिति है।

प्र.7. एक दलीय व्यवस्था क्या है?
What is single party system?

उत्तर किसी देश की दल व्यवस्था उस समय एक दलीय व्यवस्था कहलाती है जबकि वहाँ—

1. किसी एक दल विशेष का सबसे अधिक प्रभाव हो तथा सत्ता पर उसकी पकड़ मजबूत हो।
2. अन्य राजनीतिक दल अस्तित्व में होते हैं, परन्तु विशेष दल की तुलना में उनकी शक्ति नगण्य होती है।
3. सम्पूर्ण देश में किसी दल विशेष का प्रभाव होता है इस दृष्टि से अन्य दल बहुत पिछड़े होते हैं।

प्र.8. भारत के सभी वर्तमान राष्ट्रीय दलों के नाम लिखिए।
Write the names of all current national parties of India.

उत्तर वर्तमान में भारत में 6 राष्ट्रीय राजनीतिक दल हैं—

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस,
2. भारतीय जनता पार्टी,
3. राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी,
4. बहुजन समाज पार्टी,
5. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया,
6. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी)।

प्र.9. भारतीय जनसंघ की स्थापना कब हुई थी और इसके संस्थापक अध्यक्ष कौन थे?
When was Bharatiya Jana Sangh established and who was its founding president?

उत्तर भारतीय जनसंघ का गठन 1951 में हुआ था। श्यामाप्रसाद मुखर्जी इसके संस्थापक अध्यक्ष थे।

प्र.10. भारतीय राजनीति में 'कांग्रेस प्रभुत्व' से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by 'Congress Dominance' in Indian politics?

उत्तर भारतीय राजनीति में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' सबसे प्रभावशाली दल रहा है। कांग्रेस की स्थापना परतन्त्रता के दिनों में 1885 ई० में हुई थी। राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेस द्वारा किया गया। आजादी मिलने के बाद जनमानस में कांग्रेस की लोकप्रिय छवि बनी रही। आजादी के पश्चात् लम्बे समय तक भारतीय राजनीति पर कांग्रेस का एकछत्र प्रभाव बना रहा। भारतीय राजनीति में कांग्रेस की इस भूमिका को कांग्रेस प्रभुत्व के नाम से जाना जाता है। कांग्रेस प्रभुत्व का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि केन्द्र में अधिकांश समय कांग्रेस अथवा उसकी गठबन्धन सरकारें सत्ता में रहीं।

प्र.11. समाजवादी दलों और कम्युनिस्ट पार्टी में अन्तर बताइए।
Differentiate between socialist parties and communist parties.

उत्तर समाजवादी दलों और कम्युनिस्ट पार्टी में अन्तर—

	समाजवादी दल	कम्युनिस्ट पार्टी
1.	ये लोकतान्त्रिक विचारधारा में विश्वास करते हैं।	ये सर्वहारा के अधिनायकवाद में विश्वास करती है।
2.	पूँजीवाद और सामंतवाद को पूर्णतया समाप्त करना नहीं चाहती।	पूँजीवाद व सामन्तवाद को पूर्णतया समाप्त करने का पक्षधर है।
3.	सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिए लोकतान्त्रिक तरीकों में विश्वास करते हैं।	यह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु हिंसक साधनों में विश्वास रखती है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.12. स्वतन्त्र पार्टी और भारतीय जनसंघ में अन्तर लिखिए।

Write the difference between Swatantra party and Bharatiya jana Sangh.

उत्तर स्वतन्त्र पार्टी और भारतीय जनसंघ में अन्तर निम्नलिखित हैं—

	स्वतन्त्र पार्टी	भारतीय जन संघ
1.	यह चाहती थी कि सरकार अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र में कम-से-कम हस्तक्षेप करे।	यह भारतीय परिवेश के अनुकूल अर्थव्यवस्था चाहती थी। वह पूँजी-पतियों तथा निजी भूस्वामियों को कुचलने के पक्ष में नहीं थी।
2.	यह केन्द्रीकृत नियोजन, निजी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण, सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका आदि की विरोधी थी।	यह निजी और सहकारी क्षेत्र के अस्तित्व की पक्षधर थी। यह लघु व छोटे उद्योगों को बढ़ावा देने के पक्ष में थी।
3.	यह कृषि में जमीन की हदबन्दी, सहकारी खेती और खाद्यान्न के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण के विरुद्ध थी।	यह चाहती थी कि भूमि का स्वामित्व भूस्वामियों या किसानों के पास रहे। यह खाद्यान्न व्यापार का विरोध करना नहीं चाहती थी।
4.	यह धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करती थी।	यह हिन्दू धर्म, भारतीय संस्कृति व हिन्दुत्व के तत्त्वों का आह्वान करती थी।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में विपक्षी दल के उदय एवं समाजवादी दल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write a short note on rise of opposite party and socialist party in India.

उत्तर

विपक्षी दल का उदय
(Rise of Opposite Party)

स्वतन्त्रता के बाद भारत में कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी थी। अन्य पार्टियाँ थीं, लेकिन उनकी स्थिति बहुत कमजोर थी। इसीलिए 1952 के पहले चुनावों से लेकर 1967 के चौथे चुनावों तक इसी पार्टी का दबदबा बना रहा। केन्द्र व राज्यों में (जम्मू कश्मीर को छोड़कर) यही पार्टी सत्ता में रही। 1957 में केरल में कम्युनिस्ट पार्टी ने सरकार बनाई तो 1959 में उसे अनु. 356 के अन्तर्गत भंग कर दिया गया। देखने में देश में बहुदलीय व्यवस्था थी, वास्तव में कांग्रेस के प्रभुत्व को देखते हुए यह एकल आधिपत्यशाली दल व्यवस्था थी।

लेकिन यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कांग्रेस ने लोकतान्त्रिक परम्पराओं को बनाए रखा। इसीलिए विपक्षी पार्टियाँ कार्यरत रहीं। रजनी कोठारी का मत ठीक है कि कांग्रेस ने राजनीतिक बहुलवाद को बनाए रखा।

प्रेस, मीडिया, विरोधी दल, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता आदि लोकतन्त्र की व्यवस्था के अनिवार्य घटक माने जाते हैं। बहुदलीय व्यवस्था को लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अनुकूल माना जाता है। जब तक कांग्रेस ने विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, समूहों, क्षेत्रीय हितों को ध्यान में रखा और सभी को साथ लेकर चलने की नीति का अनुसरण किया तब तक केन्द्र और अधिकांश राज्यों में उसकी सरकार रही, किन्तु जब मनमाने ढंग से धारा 356 का प्रयोग कर राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू किया अथवा आपातकाल की घोषणा की तो लोगों में विरोध के स्वर मुखरित हुए और अन्ततः जनता ने उसे सत्ता से हटा दिया। 1977 में अनेक विरोधी दल एक छतरी के नीचे आये और उन्होंने चुनाव जीता।

समाजवादी दल
(Socialist Party)

समाजवादी पार्टी या सोशलिस्ट पार्टी का आधार स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय तैयार हुआ था। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय 1934 में कांग्रेस के समाजवादी रुझान वाले नेताओं ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया। यह कांग्रेस के भीतर एक दबाव समूह की तरह थी जो उसकी नीतियों में समाजवादी दिशा सुनिश्चित करना चाहती थी। 1948 में कांग्रेस के संविधान में संशोधन करके दोहरी सदस्यता पर रोक लगा दी गयी तो कांग्रेस के समाजवादियों ने मजबूरन अलग होकर सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया।

समाजवादी लोग लोकतान्त्रिक समाजवाद की विचारधारा में विश्वास रखते थे और इस आधार पर वे कांग्रेस तथा साम्यवादी (कम्युनिस्ट) दोनों से अलग थे। वे कांग्रेस की आलोचना करते थे कि वह पूँजीपतियों और जमींदारों का पक्ष ले रही है और मजदूरों व किसानों की अपेक्षा कर रही है।

TOUCH 'n PASS

सोशलिस्ट पार्टी में कई बार विभाजन हुए और विलय भी हुआ। इन दलों में, किसान मजदूर प्रजा पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का नाम लिया जा सकता है। मौजूदा समय के कई दलों जैसे समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल (यूनाइटेड) आदि पर सोशलिस्ट पार्टी या समाजवादी दल की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

प्र.2. कांग्रेस किन अर्थों में एक विचारधारात्मक गठबन्धन थी? क्या एकल पार्टी प्रभुत्व की प्रणाली का भारतीय राजनीति के लोकतान्त्रिक चरित्र पर बुरा असर हुआ है? बताइए।

In what sense was the congress an ideological alliance? Has the system of single party dominance had a bad effect on the democratic character of Indian politics? State.

उत्तर कांग्रेस का जन्म 1885 में हुआ था। शुरू में यह समाज के उच्च व सम्पन्न वर्गों का एक हित समूह समूह थी, लेकिन 20वीं शताब्दी में इसने जन आन्दोलन का रूप लिया। कांग्रेस ने परस्पर विरोधी हितों के अनेक समूहों को एक साथ जोड़ा। इसमें किसान और उद्योगपति, ग्रामीण, शहरी मजदूर और मालिक, मध्य, निम्न और उच्च वर्ग तथा जाति सबको जगह मिली। आजादी के समय तक कांग्रेस एक सतरंगे गठबन्धन की शक्ल ग्रहण कर चुकी थी और वर्ग, जाति, भाषा, धर्म तथा अन्य हितों के आधार पर इस गठबन्धन से भारत की विविधता प्रदर्शित हो रही थी।

इनमें से अनेक समूहों ने अपनी पहचान को कांग्रेस में समाहित कर दिया। कई बार ऐसा भी हुआ कि किसी समूह ने अपनी पहचान को कांग्रेस के साथ समाहित नहीं किया और अपने विश्वासों को मानते हुए इसके भीतर बने रहे। इस अर्थ में कांग्रेस एक विचारधारात्मक गठबन्धन थी। कांग्रेस ने क्रान्तिकारी और शान्तिवादी, कंजरवेटिव और रेडिकल, गरमपंथी और नरमपंथी. दक्षिणपंथी व वामपंथी अर्थात् हर धारा के लोगों को समाहित किया है।

किसी खास पद्धति, कार्यक्रम या नीति पर मतभेद के बावजूद कांग्रेस उन्हें आम सहमति के आधार पर अपने आप में मिलाए रखती थी। इनमें से कुछ बाद में विपक्षी दल बने।

स्वतन्त्रता के बाद भारत में कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी थी। अन्य पार्टियाँ थीं, लेकिन उनकी स्थिति बहुत कमजोर थी। इसीलिए 1952 के पहले चुनावों से लेकर 1967 के चौथे चुनावों तक इसी पार्टी का दबदबा बना रहा। केन्द्र पर तथा राज्यों में (जम्मू-कश्मीर को छोड़कर) यही पार्टी सत्ता में रही। 1957 में केरल में कम्युनिस्ट पार्टी ने सरकार बनाई तो 1959 में उसे अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत भंग कर दिया गया। देखने में देश में बहुदलीय व्यवस्था थी, वास्तव में कांग्रेस के प्रभुत्व को देखते हुए यह एकल आधिपत्यशाली दल व्यवस्था थी।

इस स्थिति में विपक्ष बहुत सशक्त नहीं बन सका जिससे कभी-कभी कांग्रेस के प्रभुत्व को अधिनायकवादी कहा गया। लेकिन यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कांग्रेस ने लोकतान्त्रिक परम्पराओं को बनाए रखा। इसीलिए विपक्षी पार्टियाँ कार्यरत रहीं। रजनी कोठारी का मत ठीक है कि कांग्रेस ने राजनीतिक बहुलवाद को बनाए रखा।

प्रेस, मीडिया, विरोधी दल, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, आदि लोकतन्त्र की व्यवस्था के अनिवार्य घटक माने जाते हैं। बहुदलीय व्यवस्था को लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अनुकूल माना जाता है। जब तक कांग्रेस ने विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, समूहों, क्षेत्रीय हितों को ध्यान में रखा और सभी को साथ लेकर चलने की नीति का अनुसरण किया तब तक केन्द्र और अधिकांश राज्यों में उसकी सरकार रही, किन्तु जब मनमाने ढंग से धारा 356 का प्रयोग कर राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू किया अथवा आपातकाल की घोषणा की तो लोगों में विरोध के स्वर मुखरित हुए और अन्ततः जनता ने उसे सत्ता से हटा दिया। 1977 में अनेक विरोधी दल एक छतरी के नीचे आये और उन्होंने चुनाव जीता। एकल आधिपत्यशाली दल व्यवस्था का अन्त हुआ।

प्र.3. मैक्सिको में स्थापित एक पार्टी का प्रभुत्व भारत के एक पार्टी के प्रभुत्व से कैसे भिन्न था? 'इंदिरा गांधी ने कांग्रेस प्रणाली को पुर्नस्थापित किया, लेकिन कांग्रेस प्रणाली की प्रकृति को बदल दिया।' स्पष्ट कीजिए।

How was single party dominance in Mexico different from single party in India? 'Indira Gandhi restored the congress system, but changed the nature of the congress system.' Clarify.

उत्तर भारत और मैक्सिको दोनों देशों में एक खास समय तक एक पार्टी का प्रभुत्व रहा। किन्तु दोनों के बीच बड़ा अन्तर था। मैक्सिको में एक पार्टी का प्रभुत्व लोकतन्त्र की कीमत पर स्थापित हुआ, जबकि भारत में ऐसा कभी नहीं हुआ। भारत में कांग्रेस पार्टी के साथ अनेक पार्टियों राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर चुनाव में भाग लेती रहीं।

कांग्रेस पार्टी को 1952, 1957 व 1962 के चुनावों में विशाल बहुमत मिला क्योंकि उसने देश की आजादी के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उसके सामने कोई अन्य राजनीतिक दल दृष्टि, संगठन व अन्य कमियों के कारण सशक्त दावेदार बनकर नहीं

TOUCH 'n' PASS

उभर सका। 1967 के चुनावों तक कांग्रेस का सारे देश पर एकमात्र दबदबा बना रहा, लेकिन राजनीतिक बहुलवाद की स्थिति बरकरार रही।

इंस्टीट्यूशनल रिवोल्यूशनरी पार्टी (पी.आर.आई.) का मैक्सिको में लगभग 60 वर्षों तक प्रभुत्व रहा। इस पार्टी की स्थापना 1929 में हुई थी। उस समय इसे नेशनल रिवोल्यूशनरी पार्टी कहा जाता था। इसे मैक्सिकन क्रान्ति की विरासत हासिल थी। मूल रूप में यह पार्टी राजनेताओं, सैनिक नेताओं, मजदूरों और किसानों तथा अनेक राजनीतिक गुटों समेत कई किस्म के हितों का गठबन्धन थी। धीरे-धीरे इसके संस्थापक प्लूटार्को इलियास कैलस ने इसके संगठन पर कब्जा जमा लिया और उसके बाद नियमित रूप से होने वाले चुनावों में हर बार यही पार्टी विजयी होती रही। शेष पार्टियाँ नाम की थीं। चुनाव के नियम इस तरह बनाए गए कि हर बार इसकी जीत सुनिश्चित हो सके। शासक दल ने हमेशा चुनावों में धाँधली की। इसके शासन को 'परिपूर्ण तानाशाही' कहा जाता था। आखिरकार वर्ष 2000 में हुए राष्ट्रपति पद के चुनाव में यह पार्टी हारी।

विभिन्न विचारकों के मतानुसार इन्दिरा गाँधी ने जो कुछ किया, वह पुरानी कांग्रेस को पुनर्जीवित करने का प्रयास नहीं था। कई मामलों में यह पार्टी इन्दिरा गाँधी के हाथों में नई तर्ज पर बनी थी। इस पार्टी को लोकप्रियता के दृष्टिकोण से वही स्थान प्राप्त था, जो उसे प्रारम्भिक दौर में प्राप्त था, लेकिन यह अलग किस्म की पार्टी थी। यह पार्टी पूर्णतया अपने सर्वोच्च नेता की लोकप्रियता पर आश्रित थी। इस पार्टी का सांगठनिक ढाँचा भी अपेक्षाकृत कमजोर था। इस कांग्रेस पार्टी के अन्दर अनेक गुट नहीं थे, वह विभिन्न मतों और हितों को एक साथ लेकर चलने वाली पार्टी नहीं थी। इस पार्टी ने चुनाव जीते, लेकिन इस जीत के लिए पार्टी कुछ सामाजिक वर्गों जैसे गरीब, महिला, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यकों पर अधिक निर्भर थी। जो कांग्रेस उभरकर सामने आई, वह एकदम नई कांग्रेस थी। इन्दिरा गाँधी ने कांग्रेस प्रणाली को पुनर्स्थापित जरूर किया, लेकिन कांग्रेस-प्रणाली की प्रकृति को बदलकर।

कांग्रेस प्रणाली के अन्दर तनाव और संघर्ष को पचा लेने की क्षमता थी। कांग्रेस प्रणाली को इसी विशेषता के कारण जाना जाता था, लेकिन नई कांग्रेस ज्यादा लोकप्रिय होने के बावजूद इस क्षमता से हीन थी। कांग्रेस ने अपनी पकड़ मजबूत की और इन्दिरा गाँधी की राजनीतिक हैसियत अप्रत्याशित रूप से बढ़ी, लेकिन जनता की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति की लोकतान्त्रिक जमीन छोटी पड़ती गई। विकास और आर्थिक बदहाली के मुद्दों पर जनाक्रोश तथा लामबन्दी लगातार बढ़ती रही। इन बातों से एक राजनीतिक संकट उठ खड़ा हुआ और जिससे देश के संवैधानिक लोकतन्त्र के अस्तित्व पर ही खतरा मँडराने लगा था।

प्र.4. राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस प्रभुत्व का वर्णन कीजिए। किन कारकों ने इसकी सहायता की?

Describe congress dominance at the national level. What factors helped it?

***अथवा* भारत में पहले तीन आम चुनावों में कांग्रेस के प्रभुत्व के क्या कारण थे? इस काल में विपक्षी दलों की क्या भूमिका थी?**

What were the reasons for the dominance of congress in the first three general elections in India? What was the role of opposition parties in this period?

उत्तर

राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस प्रभुत्व
(Congress Dominance at the National Level)

1952 के प्रथम आम चुनाव से लेकर 1967 के चतुर्थ आम चुनाव तक भारतीय राजनीति पर कांग्रेस दल का एकछत्र एकाधिकार बना रहा। 1967 के चुनाव से पूर्व लोकसभा के चुनाव में उसने 73% से अधिक सीटें ही प्राप्त की थीं। 1957 में केरल में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वाले गठबन्धन जैसे अपवादों को छोड़कर अधिकांश राज्यों की राजनीति पर भी कांग्रेस ही प्रभावी थी।

इस तरह हम कह सकते हैं कि स्वतन्त्रता के पश्चात् लगभग दो दशकों (1947-67) तक के कालखण्ड में भारत में राजनीति और शासन सत्ता पर एक मात्र दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ही नियन्त्रण था। कांग्रेस के राजनीति पर प्रभुत्व को हम कांग्रेस प्रभुत्व का नाम देते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस के प्रभुत्व को यदि आम जन की दृष्टि से देखा जाये तो भारत की ग्रामीण आबादी के लिए शासन का मतलब था कांग्रेस, वोट देने का अर्थ था कांग्रेस का चुनाव चिन्ह तथा नेता के रूप में पण्डित जवाहरलाल नेहरू को ही समझा जाता था। यूँ तो कई अन्य दल तथा उनका संगठन भी देश में सक्रिय था, परन्तु वे कांग्रेस का विकल्प नहीं माने जाते थे। यह लोगों का कांग्रेस पर अटूट विश्वास ही था कि कांग्रेस का राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभुत्व एक लम्बे काल तक बना रहा। इस काल में विपक्षी दलों में अस्थिरता का दौर चल रहा था जिसके कारण विपक्ष की भूमिका मजबूत नहीं थी।

राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस प्रभुत्व को बनाये रखने में कई कारकों का योगदान रहा था। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण कारकों को निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है—

कांग्रेस प्रभुत्व के कारक
(Factors of Congress Dominance)

कांग्रेस प्रभुत्व के विभिन्न कारक निम्नलिखित हैं—

1. राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान इस दल ने भारतीय जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त किया था। आम जनजीवन में इस दल की पहुँच बहुत अन्दर तक हो गयी थी। स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपनी अग्रणी भूमिका के कारण इस दल को लोगों से अपनत्व, भावानात्मक जुड़ाव तथा सम्मान प्राप्त हुआ था। अपनी इसी पूँजी के बल पर कांग्रेस ने स्वतन्त्रता के बाद भारतीय राजनीति पर प्रभाव कायम किया।
2. उस समय देश में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही एकमात्र ऐसा दल थी जिसका संगठन देश के कोने-कोने में फैला हुआ था तथा दूर दराज के ग्रामीण स्थलों तक जिसके कार्यकर्ता पहुँचे हुए थे। इस दल में आन्तरिक लोकतन्त्र की मजबूत व्यवस्था थी जिसके तहत दल के भीतर के मतभेद आसानी से सुलझ जाते थे। सम्पूर्ण राष्ट्र में अपनी पहुँच और निष्ठावान कार्यकर्ताओं की सेना ने कांग्रेस को प्रभावशाली स्थिति में पहुँचाया था।
3. हमारे द्वारा अपनाई गयी चुनाव प्रणाली ने भी कांग्रेस प्रभुत्व की स्थापना में मदद की। हमारे देश की चुनाव प्रणाली में सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत' के तरीके को अपनाया गया है। ऐसे में अगर कोई पार्टी बाकियों के मुकाबले थोड़े से अधिक वोट प्राप्त कर ले तो उसके द्वारा जीती गयी सीटों की संख्या प्राप्त वोटों की तुलना में बहुत अधिक होती है। जैसे—1952 के प्रथम आम चुनाव में कांग्रेस को कुल वोटों में से 45% वोट हासिल हुए थे लेकिन कांग्रेस को 75% सीटें हासिल हुई थीं।
4. पण्डित जवाहर लाल नेहरू को महात्मा गाँधी के बाद देश में सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। गाँधीजी की मृत्यु के बाद उनको ही भारत के लोग अपनी आशा का केन्द्र बिन्दु मानते थे। नेहरू को लोगों का समर्थन कांग्रेस को वोटों के रूप में प्राप्त होता था और उसकी स्थिति अन्य दलों से बहुत बेहतर हो जाती थी।
5. स्वतन्त्रता आन्दोलन में कांग्रेस एक विचारधारात्मक गठबन्धन थी। इसमें लगभग सभी विचारधाराओं के लोग शामिल थे। अपनी सर्वसमावेशी प्रकृति के कारण इसका प्रभाव क्षेत्र व्यापक हो गया था। आजादी के बाद भी इसने सबको एक साथ लेकर चलने का प्रयास किया था। भारत में विपक्ष का विकास भी कांग्रेस से अलग हुए नेताओं द्वारा किया गया था।

प्र.5. दबाव समूह की विभिन्न परिभाषाएँ लिखिए।
Write the different definitions of pressure group.

उत्तर

दबाव समूह की परिभाषा
(Definition of Pressure Group)

इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है—

1. **माइनर वीनर के शब्दों में**—'दबाव समूह से तात्पर्य प्रशासनिक ढाँचे से बाहर अपनी इच्छा से संगठित ऐसे गुटों से हैं जो प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति चुनाव, विधि निर्माण, और सरकारी नीति को प्रभावित करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील ही रहते हैं।'
2. **सत्य नारायण दुबे के शब्दों में**—'शासन पर अधिकार जमाने का प्रयास किए बिना विधायकों और प्रशासकों की नीति तथा कार्यों को प्रभावित करने का प्रयास करता है वह दबाव समूह कहलाता है।'
3. **हेनरी ए. टर्नर के शब्दों में**—'दबाव समूह दरअसल एक गैर राजनीतिक संगठन है जो लोक नीति के लिए कभी भी प्रभावित करने का प्रयास करता रहता है।'
4. **एच. जेग्लर के शब्दों में**—'दबाव समूह एक ऐसा संगठित समूह है जो अपने सदस्यों को सरकारी पदों पर पदस्थापित किए बिना भी सरकारी निर्णय को प्रभावित करने की तीव्र इच्छा रखता है।'
5. **कैसिल्स के शब्दों में**—'दबाव समूह उसे कहते हैं जो शासकीय गतिविधियों द्वारा या उनके बिना ही राजनीतिक परिवर्तन लाने का प्रयत्न करे और जो उस समय स्वयं किसी विधायिका में प्रतिनिधित्व प्राप्त राजनीतिक दल के रूप में न हो।'

TOUCH 'n PASS

6. **एम.जी. गुप्ता के शब्दों में**—'दबाव समूह या हित समूह एक ऐसा माध्यम है जिससे सामान्य उद्देश्य वाले व्यक्तियों द्वारा सार्वजनिक मामलों की कार्यवाही को प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता है। इस दृष्टि से हर सामाजिक समूह जो औपचारिक रूप से शासन पर नियंत्रण किए बिना ही प्रशासकीय एवं विधायी दोनों प्रकार के राजनीतिक पदाधिकारियों के आचरण को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है। दबाव समूह या हित समूह कहलाता है।'
7. **एक्सटीन के शब्दों में**—'दबाव गुट राजनीतिक समूहों के पूर्ण राजनीतिकरण से कुछ कम का और पूर्ण अराजनीतिकरण के बीच एक अंतरवर्ती स्वर का निर्माण करती है।'
8. **वी.ओ. की के शब्दों में**—'ये शब्द (दबाव समूह) ऐसे बदमाश लाबीबाज की तस्वीर मानस पटल पर उभारते हैं जो सदाचारी विधायक को जनहित में अपने विवेकानुसार आचरण नहीं करने देता और उसे पथभ्रष्ट करने के हथकंडे इस्तेमाल करने की कोशिश करता है।'

इन सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि हित समूह का कार्य शासन की नीतियों और प्रशासकों को प्रभावित कर निर्णय परिवर्तन कराने का मुख्य उद्देश्य रखते हैं। यह सार्वजनिक लोक हितों के लिए कभी भी प्रकट हो सकते हैं।
यद्यपि इनका अस्तित्व हमेशा बना रहता है। फिर भी ये अदृश्य शक्ति के रूप में रहकर कार्य करते हैं। यह अपने हितों को स्पष्ट करते हैं और उन्हीं की रक्षा करने का सर्वोच्च कार्य करते हैं।

प्र.6. दबाव समूह के गुण व दोषों का उल्लेख कीजिए।
Mention the merits and demerits of pressure group.

उत्तर

दबाव समूह के गुण
(Merits of Pressure Group)

आधुनिक युग में दबाव समूह/हित समूह का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। इसके होने से अनेक लाभ होते हैं। फिर भी हम यह मान सकते हैं कि दबाव समूह में निम्न गुण पाए जाते हैं—

1. **लोकतंत्र के पोषक**—हित समूह को लोकतंत्र का पोषक माना जाता है। यह राजनीति और प्रशासन दोनों में जनता की सहभागिता बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयास करता है। इसके साथ-साथ जनता को संगठित कर एक शक्ति के रूप में प्रदर्शित करने का भी कार्य करता है। अगर इनका अस्तित्व नहीं होगा तो लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता है। इनके बिना लोकतंत्र नाममात्र का ही रह जाएगा।
2. **प्रतिनिधित्व की जागरूकता बढ़ाना**—दबाव समूह जनता में प्रतिनिधित्व के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने का भी कार्य करता है। इससे जनता में सामाजीकरण की प्रक्रिया पूर्ण होती है। जनता जितनी जागरूक होगी उतनी ही राजनीतिक सफलता प्राप्त होगी। इससे यह हित समूह निरंतर रूप से अपनी भूमिका निर्वाह करता है।
3. **शासकीय सूचनाओं की जानकारी प्रसारित करना**—शासन में क्या होता है? कैसे नीतियाँ बनती हैं? कैसे नीतियाँ क्रियान्वित होती हैं? शासन की क्या खामियाँ होती हैं? इसकी क्या-क्या सफलता हो सकती हैं? इसकी वास्तविकता क्या है? इन सबके बारे में दबाव समूह सूचना जनता तक पहुँचाता है। इसके बाद जनता सक्रियता की भूमिका निर्वाह करती है। जनता स्वयं रैलियों, विद्रोह का आयोजन करने लग जाती है। इसमें दबाव समूह नेतृत्व प्रदान करने का भी कार्य करते हैं। इससे इनका स्थान महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

दबाव समूह के दोष
(Demerits of Pressure Group)

दबाव समूहों से अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इससे शासन व्यवस्था के सामने निरंतर संघर्ष, समस्याएँ भी रहती हैं। जो कार्य जिस समय पर पूर्ण होना चाहिए वह वास्तव में संपन्न होता ही नहीं है। ऐसी स्थिति में दूसरे ही कार्य संपन्न हो जाते हैं। इससे अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

1. **भ्रष्टाचार शिष्टाचार का प्रतीक होता है**—राजनीति एवं प्रशासन में भ्रष्टाचार व्याप्त होता चला जाता है। इसके बिना कोई कार्य नहीं होता है। राजनेताओं का चरित्र निम्न कोटि के स्तर का हो जाता है। सभी नेता भ्रष्टाचार में लिप्त पाए जाते हैं। इसे आधुनिक युग में शिष्टाचार का प्रतीक माना जाता है शासकीय कार्यालयों में लालफीताशाही बढती रहती है।

TOUCH 'n PASS

2. **व्यक्तिगत स्वार्थों, हितों का महत्त्व**—इसमें सार्वजनिक हितों को नकारात्मक कर दिया जाता है। इसके स्थान पर व्यक्तिगत लाभ, स्वार्थों और हितों का ही ध्यान रखा जाता है। यह राष्ट्र की सेवा करने के स्थान पर धन संग्रह का कार्य करता है। इससे राष्ट्र का विकास भी प्रभावित होता है। दबाव समूह व्यक्तिगत हितों की पूर्ति सर्वोपरि रखते हैं।
3. **अलोकतांत्रिक साधनों का प्रयोग**—दबाव समूह अवसरवादी होता है। यह कभी भी हितों, शक्ति एवं असंवैधानिक साधनों का प्रयोग कर सकता है। इससे कानून और शांति व्यवस्था को खतरा उत्पन्न होता है। इससे राष्ट्र के धन, जन-शक्ति को हानि पहुँचती है।
4. **अन्य वर्ग के हितों की नगण्यता**—दबाव समूह हमेशा अपने ही हितों को प्राथमिकता देता है, दूसरे वर्ग विशेष के हितों को प्राथमिकता नहीं देता है। अन्य वर्ग के हितों को कभी पूरा नहीं करता है। यह हमेशा पक्षपात पूर्ण हितों को पूर्ण करने का प्रयास करता है। इसके हित बदलते रहते हैं।

प्र.7. प्रतिनिधित्व समूह के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।
Discuss the principles of representation group.

उत्तर

प्रतिनिधित्व समूह के सिद्धांत
(Principles of Representation Group)

आधुनिक युग में राजनीतिक व्यवस्थाओं के बढ़ते हुए महत्त्व में राजनीतिक दलों के साथ-साथ समूहों के प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास तेजी से हो रहा है। प्राचीन युगीन राज्य और आधुनिक राज्यों में व्यापक अंतर आ जाने से प्रतिनिधित्व प्रणाली का महत्त्व और बढ़ जाता है इससे इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। प्रत्येक राष्ट्र में अलग-अलग प्रतिनिधित्व के सिद्धांत विकसित हो रहे हैं। इससे राजनीतिक स्वतंत्रता का विस्तार भी हुआ है।

किसी भी राष्ट्र में चाहे कैसी भी शासन व्यवस्था स्थापित की गई हो फिर भी उसमें प्रतिनिधित्व के सिद्धांत अवश्य पाए जाते हैं। दरअसल यह प्रणाली 13वीं शताब्दी के बाद में विकसित की गई है। प्राचीन युग में सम्राट या शासक वसूली के लिए अपने प्रतिनिधि की नियुक्ति करता था। सबसे पहले ब्रिटेन के संसदीय प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास हुआ था। भारत में भी ब्रिटेन कालीन शासन व्यवस्था में प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास हुआ था। इसके बाद स्वतंत्र भारत में इसका संबंध प्रतिनिधित्व एवं निर्वाचन से जोड़ दिया गया। आधुनिक युग में प्रतिनिधित्व वयस्क मताधिकार प्रणाली का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है।

प्रतिनिधित्व की परिभाषा (Definition of Representation)

प्रतिनिधित्व के अनेक अर्थ लिए जाते हैं फिर भी हम इसको राजनीतिक क्षेत्र के संदर्भ में भी समझाने का प्रयास करेंगे तभी इसको सही अर्थों में समझा जा सकता है। इस संबंध में इसकी निम्न परिभाषा इस प्रकार दी जाती है।

1. **ए.एच. विच के अनुसार**—'राजनीतिक प्रतिनिधित्व एक ऐसा व्यक्ति है जो परंपरागत या कानून द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था में प्रतिनिधि का स्तर रखता है और प्रतिनिधि की भूमिका निभाता है।'
2. **लार्ड एल्टन के अनुसार**—'प्रतिनिधित्व आधुनिक समय की महत्त्वपूर्ण खोज है।'
3. **एक अन्य अर्थ एवं परिभाषा के रूप में वर्णित है**—'प्रतिनिधित्व एक ऐसी प्रक्रिया।'

प्र.8. राजनीतिक दल से क्या अभिप्राय है? परिभाषा सहित स्पष्ट कीजिए।
What do you mean by political party? Define with definition.

उत्तर

राजनीतिक दल
(Political Party)

लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता राजनीतिक दलों का उत्कर्ष है। लोकतंत्र के संगठन और निर्माण में उनका निर्णायक भाग रहता है। जनता के अंदर विभिन्न विचारधाराओं का प्रसार करने में वे दलाल का सा कार्य करते हैं। **लार्ड ब्राइस** ने दलों के महत्त्व के विषय में यह ठीक ही लिखा है—'दल अनिवार्य हैं। कोई भी बड़ा स्वतंत्र देश उनके बिना नहीं रह सका है। किसी व्यक्ति ने यह प्रदर्शित नहीं किया है कि प्रतिनिधिक शासन उनके बिना कैसे चल सकता है। वे मतदाताओं की अव्यवस्था में शांति और व्यवस्था उत्पन्न करते हैं, यदि दल कुछ बुराइयाँ उत्पन्न करते हैं, तो वे दूसरी बुराइयों को कुछ कम या दूर भी करते हैं। अत: लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए राजनीतिक दलों का विशेष महत्त्व है। एकतंत्रात्मक देशों में राजनीतिक दलों का कार्य लोकतंत्रात्मक देशों के राजनीतिक दलों के कार्यों से भिन्न होता है। अधिनायकवादी देश में एक राजनीतिक दल होता है और

TOUCH 'n PASS

वह स्वयं को सत्तारूढ दल के साथ समीकृत कर देता है। संक्षेप में, आधुनिक राजनीतिशास्त्र का यह एक अटल सिद्धांत है कि, शासन-प्रणाली चाहे कैसी भी क्यों न हो, उसके पीछे मूल शक्ति राजनीतिक दलों की ही होती है।

राजनीतिक दल का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Political Party)

राजनीतिक दल प्राय: संगठित नागरिकों का एक ऐसा समुदाय है जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं और अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार को नियंत्रित करना और समान नीति को कार्यान्वित करना चाहते हैं। **लीकॉक** के शब्दों में—"राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो इकट्ठे होकर एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक प्रश्नों पर एक से होते हैं और वे एक समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं।" **गिलक्राइस्ट** और **मैकाइवर** ने भी राजनीतिक दलों की बहुत कुछ यही परिभाषा दी है। **बर्क** के अनुसार—"राजनीतिक दल व्यक्तियों का वह समुदाय है जो अपने संयुक्त प्रयास द्वारा किसी विशिष्ट सिद्धांत के आधार पर जिसमें उसके सभी सदस्य सहमत होते हैं, राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि करना चाहता है।" राजनीतिक दलों की इन कुछ प्रतिनिधि परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक राजनीतिक दल की रचना के लिए कुछ चीजों की आवश्यकता होती है—(1) संगठन, (2) सामान्य सिद्धांत, (3) राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का लक्ष्य, (4) शांतिपूर्ण उपायों का प्रयोग, और (5) राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि का प्रयास। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजनीतिक दल गुटों से भिन्न होते हैं। गुटों का लक्ष्य संकुचित होता है और वे अनुचित उपायों द्वारा भी अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत राजनीतिक दल केवल शांतिपूर्ण और वैधानिक उपायों द्वारा ही शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं और उनका उद्देश्य संपूर्ण राष्ट्र के हितों की अभिवृद्धि करना होता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मिली-जुली प्रकृति की समीक्षा कीजिए तथा भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों व कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए।

Review the composite nature of the Indian national congress and explain the principles and programmes of major political parties of India.

उत्तर

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मिली-जुली प्रकृति
(Composite Nature of the Indian National Congress)

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसमें समाज के उच्च व सम्पन्न वर्गों के लोग शामिल हुए, जैसे—दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बदरुद्दीन तय्यबजी आदि। ये सभी लोग ब्रिटिश राज के प्रशंसक थे तथा ब्रिटिश शासकों के हाथों तरह-तरह के सुधार चाहते थे। इन्हें नरमपंथी या उदारवादी कहा गया। लेकिन 1895 के बाद इसमें मध्यम वर्ग के लोग (जैसे—लाला लाजपतराय, तिलक व विपिनचन्द्र पाल आदि) आए जिन्होंने इसके आधार को विकसित किया। महात्मा गाँधी को श्रेय जाता है जिन्होंने इसे जन आन्दोलन में बदल दिया। अब कांग्रेस का आधार बहुत व्यापक हो गया। इसमें देश के सभी प्रान्तों, क्षेत्रों, वर्गों, धर्मों, सम्प्रदायों, भाषाओं आदि के लोगों की भरमार हो गई जिन्होंने असहयोग आन्दोलन (1921-22), सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930-31) तथा भारत छोड़ो आन्दोलन (1942-11) में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्वतन्त्रता के बाद जवाहरलाल नेहरू ने इसी परम्परा को बनाए रखा। कांग्रेस एक राष्ट्रीय, अखिल भारतीय तथा धर्मनिरपेक्ष संगठन बनी रही। नेहरू ने इसे समाजवादी दिशा में मोड़ा, लेकिन उनका समाजवाद किसी कट्टर सिद्धान्त की भाँति नहीं था। यह इंग्लिश फैबियनवाद (Fabianism) से मिलता-जुलता था जिसमें उदारवाद का अंश शामिल है और उसे लोकतान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) कहा जाता है। यही कारण है कि यदि कांग्रेस को देश के धनी वर्गों का समर्थन मिला तो उसमें समाजवादी तत्व भी भरे रहे। यही ऐसी पार्टी है जिसमें शहरी व ग्रामीण, उद्योगपति व मजदूर, भूमिपति व किसान, हिन्दू व मुस्लिम, सवर्ण व अवर्ण, प्रगतिवादी व पुरातनवादी अर्थात् सभी प्रकार के लोग शामिल रहे हैं और इसी तथ्य में इसके लम्बे जीवन के इतिहास का मूल कारण ढूँढा जा सकता है।

यदि विचारधारा की दृष्टि से देखा जाए तो कांग्रेस की कोई विचारधारा नहीं है। विचारधारा में अन्धविश्वास व कट्टरवादिता के लक्षण भरे होते हैं। नमनशीलता को कोई जगह नहीं होती। ब्रिटेन की कंजरवेटिव पार्टी पूँजीपतियों की हितैषी है तो लेबर पार्टी

श्रमिकों के हितों की पक्षधर है। भारत में साम्यवादी पार्टियाँ मार्क्सवाद-लेनिनवाद की दुहाई देती हैं तो भारतीय जनता पार्टी समाज के सम्पन्न वर्गों के हितों की रक्षा करती है। लेकिन यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि **कांग्रेस की अपनी विचारधारा है जिसमें लोकतन्त्र व समाजवाद का अद्भुत मिश्रण देखा जा सकता है।** बदलती दशाओं व परिस्थितियों के अनुसार इस विचारधारा के आयाम बदलते रहते हैं। यदि नेहरू व इन्दिरा गाँधी ने उत्साहपूर्वक समाजवादी कार्यक्रमों को अपनाया तो नरसिंह राव व मनमोहन सिंह ने भूमण्डलीकरण के युग में उदारीकरण को मान्यता दी।

ऐसी विचित्र प्रकृति के कारण कांग्रेस को विविध हितों का संघ (Coalition of diverse interests) कहा जाता है। इस पार्टी के भीतर हितबद्ध गुट काम करते रहते हैं जो बाहरी पार्टियों से अपना तालमेल बनाए रखते हैं। इससे इस पार्टी को बल मिलता है। उदाहरण के लिए, इस पार्टी के भीतर समाजवादी नेता अन्य पार्टियों के समाजवादी नेताओं से अपनी निकटता बनाए रहते हैं जिससे दोनों के कार्यक्रम प्रभावित होते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि पूँजीपतियों व किसानों के दबावकारी गुट कांग्रेस से अलग रहते हुए प्रमुख नेताओं से अपना अदृश्य नाता बनाए रखकर अपना हित साधन करते रहते हैं। **कांग्रेस के बहुलवादी चरित्र के कारण ही यह सम्भव है।**

नमनशील संगठन होने के नाते कांग्रेस के भीतर सभी तरह के तत्व रहते हैं व काम कर सकते हैं। यदि किसी तत्व ने उग्रवाद या अति-उत्साहपूर्ण रुख अपनाया तो उसे कांग्रेस से अपना नाता तोड़ना पड़ता है। तिलक व उनके साथियों ने उग्रवादी दिशा में इस पार्टी को खींचना चाहा, 1907 के सूरत अधिवेशन में उन्हें इसकी सदस्यता छोड़नी पड़ी। जो लोग पूँजीवाद का खुलकर समर्थन करना चाहते थे, वे 1959 में कांग्रेस छोड़कर स्वतन्त्र पार्टी में चले गए। चौधरी चरण सिंह व देवीलाल जैसे नेता किसानों के हितों के अति-उत्साही समर्थक थे, उन्हें कांग्रेस छोड़नी पड़ी। युवा तुर्कों (जैसे चन्द्रशेखर व मोहन धारिया) इन्दिरा गाँधी को अपने नमूने के समाजवाद की ओर खींचना चाहते थे, 1975 में उन्हें भी ऐसा करना पड़ा। इसी नमनशीलता के कारण 1969 में फूट के बाद कांग्रेस ने कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन स्वीकार किया। 1971 के चुनावों में कांग्रेस को बड़ी सफलता मिली। पुराने नेताओं के गठबन्धन (सिंडीकेट) का 'इन्दिरा हटाओ' नारा काम न कर सका। 1977 के चुनावों में अप्रत्याशित पराजय के कारण कांग्रेस में फिर फूट पड़ा। 1978 में इन्दिरा गाँधी ने कांग्रेस (इन्दिरा) बनाई। वर्ष 2004 तथा पुन: वर्ष 2009 में कांग्रेस ने मनमोहन सिंह के नेतृत्व में केन्द्र में गठबन्धन सरकार बनाई और कई राजनीतिक दलों के साथ मिलकर संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (संप्रग) का गठन किया।

प्रमुख राजनीतिक दल व उनके सिद्धान्त एवं कार्यक्रम
(Main Political Parties and their Principles and Programmes)

	प्रमुख राजनीतिक दल		कार्यक्रम या सिद्धान्त
1.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	(i)	धर्मनिरपेक्षवाद अर्थात् सभी धर्मों के प्रति समान सद्भाव तथा राज्य के कार्यों में धर्म के हस्तक्षेप की मनाही। विविधता में एकता के सूत्र में आस्था।
		(ii)	समाज का समाजवादी प्रतिमान अर्थात् समाज के दुर्बल व पिछड़े वर्गों के हितार्थ कार्य करना, जनहित में निजी सम्पत्ति पर राज्य का नियन्त्रण तथा महत्त्वपूर्ण धन्धे का राष्ट्रीयकरण होना, मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रशंसा।
		(iii)	संसदीय शासन प्रणाली में आस्था, देश में बहुदलीय व्यवस्था, खुले व स्वच्छ चुनाव, प्रेस की स्वतन्त्रता, सीमित व उत्तरदायी शासन, विसम्मति की अनुमति।
		(iv)	नियोजन के माध्यम से देश का आर्थिक व सामाजिक कल्याण करना।
		(v)	अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की नीति बनाना, गुट-निरपेक्ष आन्दोलन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ को पूर्ण समर्थन देना।
		(vi)	उपनिवेशवाद, जातीय भेदभाव, नस्लवाद, सम्प्रदायवाद, आदि का खण्डन करना तथा अन्य गैर-साम्प्रदायिक दलों, गुटों व तत्वों के सहयोग से मिली-जुली सरकार बनाना।
		(vii)	सभी देशवासियों के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने तथा सामाजिक सद्भाव को बनाए रखने हेतु राजनीतिक स्थायित्व पर बल देना।
2.	कम्युनिस्ट व मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टियाँ	(i)	मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा का आह्वान करना, पूँजीवाद व सामन्तवाद की निन्दा करना, बड़े उद्योग धन्धों के राष्ट्रीयकरण पर बल देना।

TOUCH 'n' PASS

		(ii)	चुनावों में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का प्रयोग होना, राजनीति के अपराधीकरण को रोकना, चुनावी खर्चे की भरपाई के लिए राज्य से वित्तीय सहायता मिलना, सामाजिक न्याय की खातिर दलितों, मुस्लिमों व अन्य दुर्बल वर्गों को आरक्षणों की व्यवस्था का लाभ मिलना।
		(iii)	संघीय व्यवस्था को समर्थन देना लेकिन उसमें केन्द्र की शक्तिशाली भूमिका का विरोध करना, राज्यों की अधिक स्वायत्तता पर बल देना, राष्ट्रपति शासन के प्रावधान को समाप्त करना, नियोजन कार्य में राज्यों की अधिक सहभागिता का कामना करना।
		(iv)	धर्मनिरपेक्षवाद का समर्थन करना, इस नाते सम्प्रदायवाद, जातिवाद व नस्लवाद का खण्डन करना।
		(v)	अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति व सुरक्षा की नीति पर चलना किन्तु अमेरिका व अन्य पूँजीवादी देशों की नीतियों की निन्दा करना, रूस व चीन के साथ अधिक निकट सम्बन्ध बनाने पर जोर देना।
3.	भारतीय जनता पार्टी	(i)	भारतीय संस्कृति के आधार पर राष्ट्रवादी धारा को प्रबलित करना।
		(ii)	धर्मनिरपेक्षता पर बल देना, सर्वधर्म समभाव के सूत्र को प्रचारित करना किन्तु किसी सम्प्रदाय (जैसे—मुस्लिम व ईसाई) के प्रति तुष्टीकरण न किया जाना।
		(iii)	यथास्थिति का समर्थन करना, निजी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देना, सुरक्षा, स्वदेशी व सामाजिक समरसता पर बल देना।
		(iv)	राजनीतिक क्षेत्र में सभी को सत्ता, सम्मान व समृद्धि के लाभ उपलब्ध होना, राजनीति को मूल्य-आधारित बनाना।
		(v)	अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति व सुरक्षा की नीति का आचरण करना किन्तु अपने शत्रुओं के प्रति कठोर रुख बनाए रखना, हिन्दू देशों के साथ निकट सम्बन्ध बनाए रखना।
4.	जनता दल	(i)	देश में लोकतन्त्र के सही संचालन हेतु भ्रष्टाचार व अपराधीकरण को रोकना, लोगों के मौलिक अधिकारों को सुरक्षित रखना, राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्राप्त होना।
		(ii)	आर्थिक क्षेत्र में गरीबी का निराकरण करना, कुटीर उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना, भूमि सुधार कानूनों का क्रियान्वयन करना, उदारीकरण की नीति का विरोध करना।
		(iii)	सामाजिक न्याय की खातिर समाज के कमजोर व पिछड़े वर्गों को आरक्षणों का लाभ मिलना, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण के कार्यक्रमों को लागू करना।

प्र.2. दबाव समूह के उदय के कारण, विशेषताएँ, प्रकार एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
Explain the cause of rising, characteristics, types and works of pressure group.

उत्तर

दबाव समूह के उदय के कारण
(Cause of Rising Pressure Group)

इनका अस्तित्व अचानक प्रकट नहीं हुआ है। बल्कि इनके लिए निम्न बिंदु उत्तरदायी हैं।

1. **औद्योगिक संपन्नता की उपज**—पूँजीवादी, समाजवादी, मिश्रित समाजवादी व्यवस्थाओं ने बड़े-बड़े उद्योगों की उत्पत्ति करके मानव सभ्यता को बदलने का प्रयास किया था। इसी तरह औद्योगिक सभ्यता ने मजदूर, कमजोर वर्ग, समूह, समुदायों, में विभाजित करके अपने-अपने हितों की रक्षा करने की क्षमता का विकास करके प्रत्येक को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से दबाव समूह का उदय करने की पृष्ठभूमि का निर्माण किया गया। सभी के अपने-अपने हितों की रक्षा करने के लिए जागरूक होने से इसकी उत्पत्ति हुई है।
2. **राज्यों के कार्यों में प्रगतिशीलता होना**—वर्तमान युग प्रगति का युग है। इसलिए राज्य के कार्यों में असीमित वृद्धि हो जाने से दबाव समूह के उत्पन्न होने का कारण माना जाता है। राज्य का व्यापक रूप हो जाने से सही प्रगति हो इसे गतिशीलता बनाए रखने की भूमिका दबाव समूह ही रखते हैं।

TOUCH 'n PASS

3. **लोकतंत्र का व्यवहारीकरण होना**—आधुनिक युग में लोकतंत्र सैद्धांतिक नहीं होकर व्यवहारिक बनता चला जा रहा है। इसलिए शासन में हितों की रक्षा करने के लिए संगठन का निर्माण भी होना व्यवहारिक बन गया था। लोकतंत्र की सफलता अब इसी पर निर्भर होने लगी है।
4. **राजनीतिक दलों की बढ़ती हुई सहभागिता**—आधुनिक युग में दो दलीय व्यवस्था, बहुदलीय व्यवस्था में स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक सहभागिता प्रत्येक राजनीतिक दलों की पाई जाती है। मतदाता अपने हितों के प्रति जागरूक बनता है। अपने हितों को स्पष्ट करता है। दबाव समूह अराजनीतिक संगठन होते हुए भी जनता के सदस्यों की भागीदारी प्राप्त कर लेता है।
5. **निर्वाचन प्रणाली**—आज के युग में निर्वाचन के बिना कोई सी भी राजनीतिक व्यवस्था का संचालन नहीं को रहा है। सभी में चुनावों की अनिवार्यता है। चुनावों के माध्यम से हितों को सुरक्षित रखा जाता है। चुनाव प्रणाली दबाव समूह की उत्पत्ति का कारण है।
6. **राजनीति का व्यवसायीकरण होना**—आधुनिक युग में राजनीति भौतिकवादी पहलू बनकर रह गई है। जो व्यक्ति राजनीति में लगे हुए हैं वे इसे व्यवसाय के रूप में समझते हैं, इससे अवसरवादी नेताओं की उत्पत्ति होती है। यह स्वार्थ सिद्धि का केंद्र बन गई। इसे रोकने के लिए ही हित समूह की उत्पत्ति हुई है। इससे सार्वजनिक हितों की रक्षा संभव है।

दबाव समूह की विशेषताएँ
(Characteristics of Pressure Group)

इसकी निम्न विशेषताएँ इस प्रकार दी जाती हैं—

1. **अनिश्चित साधनों का प्रयोग**—दबाव समूह असीमित साधनों का प्रयोग कभी भी कर सकते हैं। यह नैतिक अनैतिक, हिंसात्मक संविधानिक साधनों का प्रयोग भी कर सकते हैं। यह अवसर की तलाश में हमेशा रहते हैं। इसके कार्यक्रम हमेशा गुप्त ही होते हैं। यह हडतालें, बंद का आह्वान, विरोध, काले झंडों के प्रदर्शन का भी प्रयोग करने से दबाव समूह की शक्ति में वृद्धि निरंतर होती है।
2. **परिवर्तनशील उद्देश्य**—दबाव समूहों के उद्देश्य हमेशा परिवर्तनशील होते हैं। इनके उद्देश्य कभी पूरे नहीं होते हैं। एक उद्देश्य में दूसरे पूरक उद्देश्य उत्पन्न हो जाते हैं। इनकी भूमिका भी बार-बार बदलती रहती है। कभी स्थाई नहीं रहती है। इनका मात्र उद्देश्य यही रहता है कि किसी न किसी तरह शासन एवं नीतियों पर दबाव निरंतर डालते रहते हैं और अपने हितों की निरंतर पूर्ति करने में लगे रहते हैं। इसके उद्देश्य दीर्घकालीन और अल्पकालीन भी हो सकते हैं।
3. **संगठनात्मक शक्ति के प्रतीक**—दबाव समूह संगठित रहते हैं। अलगाववादी तत्व नहीं पाए जाते हैं। बल्कि संगठनात्मक शक्ति के तत्व पाए जाते हैं। एक संगठन की माँगों की पूर्ति के लिए सभी संगठन समर्थन देते रहते हैं। अपनी माँगों को मनवाने के लिए संगठित हो जाते हैं। इसके सदस्य, गैर सदस्य भी अपनी-अपनी भूमिका निर्वाह कर सकते हैं। यह संगठन सरकार से मान्यता प्राप्त हो, ऐसी अनिवार्यता नहीं होती है। संगठन मनमाने तरीके से कार्य करने के लिए स्वतंत्र होता है। यह बिना सदस्यता के भी शक्तिशाली संगठन माना जाता है।
4. **शासनतंत्र में भूमिका नहीं**—दबाव समूह शासन नहीं करता है और न ही शासन को संचालित करता है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शासन संचालन करने के लिए चुनाव में प्रतिनिधि खड़े करना, चुनाव में विजय करवाना चुनाव में दबाव समूह की मुख्य विशेषता मानी जाती है। चुनाव में दबाव समूह धन व्यय भी करता है। यह हमेशा सर्वव्यापी बने रहते हैं, इसीलिए अपना प्रभाव निरंतर बनाए रखते हैं।
5. **दबाव समूह और राजनीतिक दल में अंतर है**—राजनीतिक दल शासन संचालन करने के पक्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। राजनीतिक दलों के मुख्य कार्य चुनाव जीतना, सत्ता प्राप्त करना, मतदान में जागरूकता स्थापित करना आदि है। दबाव समूह में ऐसा नहीं पाया जाता है। शासन से बाहर रहकर दबाव समूह राजनीतिक व्यवस्था की नीतियों, कार्यक्रमों पर दबाव डालता है। विरोध प्रकट करवाते हैं, आंदोलन चलाए जाते हैं। इसका संचालन कौन कर रहा होता है, यह प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जाता है। इसका कहीं पर भी संबंध राजनीतिक नहीं होता है। यह भिन्न-भिन्न कार्य करता है।

Touch 'n' PASS

दबाव समूह के प्रकार (Types of Pressure Group)

दबाव समूह के प्रकार अलग-अलग राष्ट्रों में अलग-अलग प्रकार के पाए जाते हैं। किसी राष्ट्र में कम, किसी राष्ट्र में ज्यादा पाए जाते हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, भारत जैसे राष्ट्र में दबाव समूह के प्रकारों में अंतर पाया जाता है। फिर भी दबाव समूह को चार वर्गों में रखा जा सकता है—

1. **संस्थागत हित समूह**—इस तरह के हित समूह शासकीय प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए होता है। इसमें सरकारी विभागों के स्तर पर अनेक प्रकार के कार्यों को संपन्न किया जाता है। हित समूह संवैधानिक दृष्टि से हितों को प्रभावित करता है। इसमें कानूनी, गैर-कानूनी प्रक्रिया के विरुद्ध भी, हित समूह की भूमिका पाई जाती है। इसमें संस्थागत हितों की रक्षा करना ही मात्र इनका उद्देश्य होता है।
2. **जाति, वर्ग, धर्म पर आधारित हित समूह**—किसी भी जाति के हितों की रक्षा के लिए कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का संगठन हित समूह हो सकता है। इसमें वर्ग, धर्म, को भी आधार बनाया जा सकता है। धार्मिक हितों की रक्षा के लिए, महिला हितों की रक्षा के लिए, समूह कभी-कभी ही अस्तित्व में आते हैं।
3. **आकस्मिक हित समूह**—ऐसे हित समूह कभी-कभी ही अस्तित्व में आते हैं और हितों को पूरा करने के बाद दूसरे हितों में लीन हो जाते हैं। जैसे बंद का आह्वान कराना, हडतालों, तालाबंदी, जुलूस, रैलियाँ, आदि का आयोजन, शासन का विरोध करना और नीतियों को प्रभावित करके व्यापक दबाव डालना ही ऐसे हित समूहों का कार्य होता है।
4. **औपचारिक और अनौपचारिक हित समूह**—ऐसे हित समूह औपचारिक रूप से भी पाए जाते हैं और अनौपचारिक रूप से भी पाए जाते हैं। ऐसे समूह अपने हितों की रक्षा के लिए हमेशा अपना प्रतिनिधित्व करते रहते हैं। यह निरंतर संपर्क बनाए रखते हैं। सार्वजनिक और असार्वजनिक क्षेत्र में भी सक्रिय होते हैं। इसमें उद्योगपति, पूँजीपति, अभिजन वर्ग भी शामिल होते हैं।

यह अवसर मिलने पर अनुचित साधनों का भी प्रयोग करते हैं। यह व्यवसायिक, व्यापारिक भी हो सकते हैं। यह हित समूह लाभ पाने या लाभ पहुँचाने का ही उद्देश्य बनाए हुए रहते हैं।

दबाव समूह के कार्य (Works of Pressure Group)

दबाव समूह के कार्य स्थिर नहीं होते हैं। इनके कार्यों में गतिशीलता बनी रहती है। दबाव समूह राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सुरक्षा, विकास, सांस्कृतिक, आदि क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। इस तरह इन सभी क्षेत्रों में ये ऐसे कानूनों को बनवाने का प्रयास करते हैं जो उनके हितों के अनुकूल होते हैं या नीति जो शासन व्यवस्था द्वारा बनाई जाती है उसे किसी न किसी तरह प्रभावित करके संशोधित करवा लेते हैं। इस तरह समूह ऐसे कार्य संपन्न करवा लेता है जिससे कानून के माध्यमों से उसके हितों को बरकरार रखा जा सके। इसी तरह प्रशासन पर भी नियंत्रण रखने एवं उनको प्रभावित करने का कार्य भी निरंतर करता है। ऐसी स्थिति में दबाव समूह के कार्यों को निम्न बिंदुओं में रखा जा सकता है—

1. **माँगों को उत्पन्न करना**—दबाव समूह अपने हित साधन के लिए माँगें उत्पन्न करके उन्हें मनवाने के लिए समुचित साधनों का प्रयोग करता है। एक बार माँग उठ जाने पर निरंतर माँग को मनवाने के लिए सक्रियता रखी जाती है। इसके लिए बार-बार हड़तालें, बंद, रैलियाँ, आदि का आयोजन किया जाता है।
2. **चुनाव में प्रत्याशी खड़े करना एवं निरंतर समर्थन देना**—दबाव समूह संसद/विधान सभा के उम्मीदवारों में अपने-अपने उम्मीदवार खड़े करता है। चुनाव क्षेत्र में उम्मीदवार खड़े करने के बाद वह निरंतर विजयी बनाए जाने के लिए समर्थन और धन भी देता रहता है। इसमें जन-शक्ति से भी समर्थन लिया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि वे अपने आदमी शासन व्यवस्था में रखेंगे तो नीतियों को बनवाने में अपनी भूमिका निर्वाह कर सकते हैं। यह विधायकों/सांसदों को हमेशा अपने पक्ष में रखने का प्रयास करता रहता है।
3. **संपर्क, भेंट, साक्षात्कार से आग्रह**—दबाव समूह अपने हितों की रक्षा के लिए संपर्क निरंतर बनाए रखता है। यह शासन, प्रशासन से हमेशा संपर्क में रहता है। यह आवश्यकतानुसार भेंट, वार्ता, भी करता है। इसमें ध्यान आकर्षित करता रहता है। यदि इसके बाद भी कोई प्रगति नहीं होती है तो अंतिम रूप से न्याय की शरण हेतु न्यायालय में वाद दायर करके अपने हितों की रक्षा करता है।

TOUCH 'n' PASS

4. **हड़तालें, रैलियाँ, विरोध आयोजन**—दबाव समूह शासन की नीतियों के विरुद्ध हडतालें करवाने में सबसे आगे रहते हैं। कभी-कभी शासन की नीतियों के विरोध में रैलियों का आयोजन करके प्रभावित किया जाता है। दबाव समूह हमेशा असंतुष्ट समूह के रूप में ही रहता है। वह संतुष्ट होने के लिए अन्य राजनीतिक दलों से निरंतर विरोध प्रकट करवाता रहता है।

   एक दबाव समूह दूसरे समूह को व्यापक समर्थन देता है इससे माँग को मनवाने में आसानी रहती है।
5. **राजनीतिक दलों को आर्थिक सहायता देना**—आधुनिक युग में चुनाव लड़ने के लिए धन शक्ति का महत्त्व पाया जाता है। इसलिए राजनीतिक दलों के पास धन कहाँ से आता है और धन कौन चुनावों में देता है। इसका सही-सही लेखा नहीं रखा जाता है। चुनावों में करोड़ों रुपया आर्थिक सहायता के रूप में चुनाव में खर्च किया जाता है। राजनीतिक दल उद्योगपतियों के सहयोग के बिना सत्ता प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए राजनीतिक दल आर्थिक सहायता के बदले में उनके हितों को सुरक्षित करने का एक जरिया बना हुआ है।
6. **समाज और राजनीतिक व्यवस्था में भूमिका**—दबाव समूह के हितों को स्थाई रखने के लिए प्रयास करता है। यदि कभी राजनीतिक व्यवस्था और समाज के बीच सीधा संघर्ष कायम हो जाता है तो दबाव समूह समन्वयवादी भूमिका निर्वाह करता है। इसके लिए वार्ता, सुलह का आयोजन करता है। समाज में जातीय संघर्ष, धार्मिक संघर्ष, राजनीतिक संघर्ष पाए जाते हैं। दबाव समूह इसमें भी अपनी भूमिका निर्वाह करता है। यह सरकारी जांच आयोगों के सामने गवाही पेश करता है। कभी-कभी अपना प्रतिनिधित्व भी करता है यह शासन की समस्त सूचनाओं को जनता तक प्रसारित करता है। यह इससे अपने हितों को पूरा करता है।

प्र.3. एकदलीय पद्धति क्या है? दल पद्धति के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।
What is single party system? Discuss the merits and demerits of party system.

उत्तर

एकदलीय पद्धति
(Single Party System)

यह निर्विवाद है कि लोकंतत्रात्मक शासन की सफलता के लिए राजनीतिक दलों का अस्तित्व अपरिहार्य है। अधिनायकवाद की सबसे बड़ी पहचान यह है कि अधिनायक अपना विरोध करने वाले समस्त राजनीतिक दलों व संगठनों का दमन कर देता है और केवल अपना समर्थन करने वाले दल को ही जीवित रखता है।

एकदलीय पद्धति का उदय प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् हुआ था। सबसे पहले रूस ने और इसके बाद इटली, जर्मनी और अन्य साम्यवादी या फासिस्ट देशों ने इस प्रणाली को अपनाया था। एकदलीय पद्धति आजकल के सर्वाधिकारवादी राज्यों की एक प्रमुख विशेषता है। इस पद्धति के अंदर शासन की संपूर्ण शक्ति एक दल के हाथों में केंद्रीभूत होती है और इस दल का शासन के समानांतर ही संगठन होता है। रूस में यह दल साम्यवादी दल, जर्मनी में नाजी दल और इटली में फासिस्ट दल थे। साम्यवादियों का एक प्रणाली के समर्थन में कहना था कि विभिन्न राजनीतिक दल समाज के विभिन्न वर्गगत हितों को प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ वर्ग-संघर्ष का अंत हो गया है और एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना हो गई, वहाँ समाज के सभी सदस्यों के हित एक से हो जाते हैं और एक ही राजनीतिक दल इन हितों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। फलतः, वहाँ विभिन्न राजनीतिक दलों की कोई आवश्यकता नहीं रहती। जिस भाँति रूस में साम्यवादी दल का सर्वग्रासी नियंत्रण था, इटली और जर्मनी में क्रमशः नाजी और फासिस्ट दलों का पूर्ण प्रभुत्व था। इन सभी एक दलीय शासन-प्रणालियों में विचार-स्वातंत्र्य पर अंकुश रखा जाता था और जनता को केवल वही विचार और मत रखने के लिए बाध्य किया जाता था जो सत्तारूढ दल की नीति से मेल खाते थे। एकदलीय पद्धति वाले देशों में निर्वाचन खेल होते थे और सभी प्रत्याशी सत्तारूढ दल द्वारा नामनिर्देशित होते थे।

लोकतंत्रात्मक देशों में प्रत्येक राजनीतिक दल की यह चेष्टा रहती है कि वह अपनी सदस्य-संख्या को अधिक से अधिक करना चाहते हैं। इसके विपरीत अधिनायकवादी देशों के राजनीतिक दल अपनी सदस्य-संख्या को सीमित रखते हैं इसके कई कारण हैं—(1) सीमित सदस्य-संख्या के कारण इन दलों का कठोर अनुशासन बना रहता है। (2) इससे जनता के सामने यह प्रचार किया जा सकता है कि दल का सदस्य केवल कुछ चुने हुए लोगों को उनके विशिष्ट गुणों के कारण ही बनाया जा सकता है। (3) दल की सदस्यता एक पारितोषिक समझी जाती है और यह केवल उन्हीं लोगों को प्राप्त होती है, जिन्होंने दल की विशेष सेवा की हो।

अधिनायकवादी देशों में राजनीतिक दलों के सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे दल के लिए अपना सब कुछ त्यागने के लिए प्रस्तुत रहें। इस सम्बन्ध में नाजी दल और साम्यवादी दल दोनों के प्रलेख अपने सदस्यों को यह स्पष्ट हिदायत देते हैं कि उन्हें अपने नेताओं के आदेश पर दल के हितार्थ सब कुछ करना होगा। चूँकि इन दलों के नेताओं में अपने को पूर्ण मानने की भावना होती है। अत: वे समय-समय पर दल से अवांछनीय तत्त्वों को निकालते भी रहते हैं या दूसरे शब्दों में दल शुद्धि (Party Purges) करते रहते हैं। इन दल-शुद्धियों में हजारों-लाखों व्यक्तियों को अभियोग का दिखावा करके मौत के घाट उतार दिया जाता है।

लोकतंत्रात्मक देशों के विपरीत अधिनायकवादी देशों के राजनीतिक दलों के पास अपने सैनिक संगठन भी होते हैं। नाजी दल में स्टार्म ट्रूपर्स, एलाइट गार्ड्स और गेस्टापो, फासिस्ट दल में मिलिशिया और ओ.बी.आर.ए. और साम्यवादी दल में रेड गार्ड तथा ओ.जी.यू. बड़े सशक्त सैनिक संगठन थे। ये संगठन दो कार्य करते थे-विरोधी पक्ष का दमन और सैनिक शक्ति द्वारा शासन की रक्षा।

एक दल पद्धति में राजनीतिक दलों के नेता अपने अनुयाइयों की निष्ठा बनाए रखने के लिए भावनात्मक अपीलों और प्रदर्शनपूर्ण समारोहों का आश्रय लेते हैं। इसके साथ ही साथ वे शासन के समस्त महत्त्वपूर्ण पदों पर केवल उन्हीं व्यक्तियों की नियुक्ति करते हैं जिनकी दलगत निष्ठा असंदिग्ध होती है।

दल पद्धति के गुण (Merits of Party System)

दल पद्धति के गुण-राजनीतिक दलों के विविध क्रिया-कलापों के वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रतिनिधिक शासन की सफलता के लिए अपरिहार्य हैं। **बर्क** के शब्दों में, "दलगत भेदों को, चाहे उनसे भलाई हो, या बुराई स्वतंत्र शासन से पृथक नहीं किया जा सकता।"

दल पद्धति के गुण निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किये जा सकते हैं—

1. **जन जागृति**—राजनीतिक दलों से सबसे बड़ा लाभ यह है कि वे जनता में राजनीतिक जागृति लाते हैं उसे महत्त्वपूर्ण समसामयिक समस्याओं से अवगत रखते हैं। सामान्यतया राजनीति के विविध प्रश्नों पर जनता के विचार बहुत कुछ विशृंखलित और असंबद्ध से होते हैं। राजनीतिक दल इन विचारों में समन्वय और सामंजस्य लाते हैं। नागरिकों की विभिन्न निष्ठाओं के बीच भी उचित समन्वय लाने का श्रेय राजनीतिक दलों को ही प्राप्त हैं। राजनीतिक दल अपनी नीतियों के पक्ष में प्रचार करते हैं और जनता को मूल्यवान राजनीतिक शिक्षा देते हैं। सभी राजनीतिक दल निर्वाचकों से अपने लिए समर्थन की माँग करते हैं। चूँकि विभिन्न राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों और सिद्धांतों में एक-दूसरे से काफी भेद होता है, इसलिए निर्वाचकों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे सभी राजनीतिक दलों के सिद्धांतों और कार्यक्रमों का तुलनात्मक अध्ययन करें और फिर जिस राजनीतिक दल के सिद्धांत और कार्यक्रम को सबसे अच्छा समझें, उसे अपना मत दें। इस प्रक्रिया से जनता के अंदर राजनीतिक चेतना का प्रसार होता है जो लोकतंत्र की सफलता के लिए अनिवार्य है।
2. **निर्वाचन**—राजनीतिक दलों से बड़ा लाभ यह है कि वे निर्वाचनों को सुगम कर देते हैं। यदि देश में सुसंगठित राजनीतिक दल न हों, तो निर्वाचनों में उम्मीदवार बड़ी संख्या में खडे हो सकते हैं। राजनीतिक दलों के कारण निर्वाचनों में प्रत्याशी सीमित संख्या में ही खड़े होते हैं। इससे जनता को भी सहूलियत रहती है और वह यह आसानी से तय कर सकती है कि किस प्रत्याशी को अपना मत दे। यदि निर्वाचनों में ज्यादा प्रत्याशी खड़े हों, तो मतदाताओं को यह निश्चित करने में कि वे किसे अपना मत दें और किसे न दें, बड़ी कठिनाई हो सकती है। इसके अलावा यदि अभ्यर्थी स्वतंत्र रूप से खड़े होते हैं, तो उन्हें अपने पक्ष में प्रचार में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। उनके पास अक्सर उन साधनों का अभाव होता है जिनसे निर्वाचनों में सफलता प्राप्त की जा सकती है। राजनीतिक दल निर्वाचनों में प्रत्याशियों को सब प्रकार की सहायता देते हैं।
3. **शासन और जनता का संपर्क**—राजनीतिक दल शासन और जनता के बीच संपर्क कायम रखने के अचूक साधन हैं। वे शासन की नीतियों की जनता के समाने व्याख्या करते हैं और जनता की शिकायतों व माँगों को सरकार तक पहुँचाते हैं। राजनीतिक दलों के फलस्वरूप सरकार का जनता से संपर्क बना रहता है और वह लोकमत के उतार व चढ़ाव को परखती है। चूँकि दलगत सरकारें जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं, अत: वे लोकमत को अपने पक्ष में रखने के लिए यथासंभव उपाय करती हैं तथा "बाध्यता की अपेक्षा प्रेरणा को अधिक उचित और शस्त्र-संघर्ष के स्थान पर विचार-संघर्ष को अधिक रचनात्मक समझती हैं।" राजनीतिक दल सरकार की नीतियों से असंतुष्ट जनता को सरकार के प्रति विरोध प्रकट

TOUCH 'n' PASS

करने का सुअवसर प्रदान करते हैं। वे सशस्त्र विप्लव की संभावनाओं का अंत कर देते हैं। विरोधी राजनीतिक दलों की उपस्थिति के कारण सत्तारूढ दल स्वेच्छाचारी नहीं होने पाता और वह इस बात की निरंतर कोशिश करता है कि उससे कोई ऐसी गलती न हो जिससे विरोधी दल को उसकी तीखी आलोचना करने का अवसर मिले।

4. **शासन के विभिन्न अंगों में संतुलन**—संसदीय शासन राजनीतिक दलों के बिना बिल्कुल नहीं चल सकता। इस शासन-प्रणाली में मंत्रिमंडल को इस बात की निरंतर आवश्यकता बनी रहती है कि उसे व्यवस्थापिका के बहुमत के सदस्यों का समर्थन मिलता रहे। जहाँ व्यवस्थापिका का बहुमत इस समर्थन से अपना हाथ खींच लेता है, वहाँ सत्तारूढ़ मंत्रिमंडल को अपना स्थान रिक्त करना पड़ता है और उसके स्थान पर नए मंत्रिमंडल की स्थापना होती है। यदि देश में सुसंगठित राजनीतिक दल न हों तो मंत्रिमंडल को इस प्रकार का जन-समर्थन प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है और इस दशा में यह संभव है कि मंत्रिमंडलों का उत्थान-पतन बड़ी शीघ्रता से हुआ करे। इसके परिणाम स्वरूप शासन बिल्कुल अस्तव्यस्त हो सकता है और मंत्रिमंडल में यह शक्ति नहीं रहती कि वह किसी ठोस नीति का अनुसरण कर सके। अध्यक्षात्मक शासन शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आश्रित होता है। इसमें भी राजनीतिक दलों की बहुत आवश्यकता रहती है क्योंकि जब कभी शासन के विभिन्न विभागों के बीच मतभेद पैदा हो जाता है, तब राजनीतिक दल ही उनमें सामंजस्य और संतुलन लाने की चेष्टा करते हैं। संघात्मक राज्यों में अवयवी एककों की सरकारों व केंद्रीय सरकार के बीच जब-तब मतभेद पैदा होते रहते हैं। राजनीतिक दल यहाँ भी मतभेदों को दूर करने में अग्रसर होते हैं। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजनीतिक दल शासन के विभिन्न अंगों में समन्वय लाते हैं और उनके कार्य को आसान कर देते हैं। अत: शासन के विभिन्न अंगों का सुचारु रूप से संचालन बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि राजनीतिक दलों का संगठन कैसा है। यदि राजनीतिक दलों का संगठन सशक्त और सुव्यवस्थित हुआ, तो शासन के सभी अंग अपना कार्य सुसंबद्ध रीति से करेंगे और यदि राजनीतिक दलों के संगठन में शिथिलता हुई, तो शासन में भी अव्यवस्था आ सकती है।

दल पद्धति के दोष (Demerits of Party System)

राजनीतिक दलों के जिन लाभों की हमने ऊपर सूची प्रस्तुत की है, वह देखने में बड़ी प्रभावोत्पादक प्रतीत होती है। लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिए कि दलपद्धति में कई दोष भी हैं।

1. **जनता का विरोधी शिविरों में विभाजन**—राजनीतिक दलों के ऊपर सबसे बड़ा दोषारोपण यह है कि वे जनता को कई विरोधी शिविरों के बीच विभाजित कर देते हैं और जनता के बीच भेद-भाव की दीवारें खड़ी कर देते हैं। इससे राष्ट्रीय एकता को चोट पहुँचती है। कभी-कभी जनता दलगत प्रभाव में राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करने लगती है।
   नैतिक पतन—राजनीतिक दल-पद्धति राजनीतिक वातावरण को विषाक्त कर देती है। राजनीतिक दलबादियों में दूसरों के विचार-भेद को सहन करने की क्षमता बहुत कम होती है। वे अपने सिद्धांतों को, चाहे उनमें कितनी ही त्रुटियाँ क्यों न हों, अपने प्रतिपक्षियों के सिद्धांतों से श्रेयस्कर समझते हैं। वे अपने विरोधियों के ऊपर कीचड़ उछालते कभी नहीं थकते। इसके परिणामस्वरूप राजनीति एक गंदा खेल हो जाता है और योग्य व ईमानदार व्यक्ति उससे अपना हाथ खींच लेते हैं। आधुनिक दलपद्धति में आमतौर से ऐसे ही व्यक्ति सफल हो पाते हैं जो अवसरवादी होते हैं और जनता को विमोहित करने की शक्ति रखते हैं। राजनीतिक दल अपने नेताओं को निर्भ्रांत महामानवों के रूप में चित्रित करते हैं और अपने प्रचार के द्वारा गलत बातों को सही और सही बातों को गलत सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। फलत: जनता का नैतिक स्तर गिरने लगता है और वह प्रस्तुत प्रश्नों पर निष्पक्ष तथा आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करना छोड़ देती है। दल-पद्धति में पक्षपात और भ्रष्टाचार को खुलकर प्रश्रय मिलता है उदाहरण के लिए विभाजन के पूर्व राजनीतिक दलों ने भारत के सामाजिक व राजनीतिक वातावरण को अत्यंत दूषित कर दिया था। राजनीतिक दलों की दृष्टि में मुख्य उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना होता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वे उचित-अनुचित सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग करते हैं।
2. **जनता का अंधानुकरण**—दलगत शासन जनता का अनुचर होता है। चूँकि उसकी दृष्टि सदैव निर्वाचनों पर ही लगी रहती है, अत: वह जनता का अधिक से अधिक समर्थन प्राप्त करने के लिए कभी-कभी खराब कानूनों का भी निर्माण कर देता है और इन कानूनों से देश की अपरिमित हानि होती है। यदि कोई कानून आगे चलकर देश के लिए लाभदायक सिद्ध हो, लेकिन फिलहाल उसे जनता पसंद न करती हो, तो दलगत शासन में इतनी शक्ति नहीं होती कि वह उस कानून को पास कर दे और आवश्यकता पड़ने पर जनता के विरोध का सामना कर सके।

TOUCH 'n' PASS

3. **दलनिष्ठा के मूल्य पर योग्यता का तिरस्कार**—दलपद्धति में एक बड़ा दोष यह है कि इसमें दलनिष्ठा के मूल्य पर योग्यता का तिरस्कार किया जाता है। जिस दल को निर्वाचनों में बहुमत प्राप्त होता है, वही दल शासन पर अपना नियंत्रण रखता है। दूसरे दल के सदस्य चाहे कितने ही योग्य हों, उन्हें शासन-कार्य में कोई स्थान नहीं मिलता। अमेरिका में पहले दलपद्धति का एक दूषित रूप यह दिखाई देता था कि ऊँचे सार्वजनिक पदों को विजयी राजनीतिक दलों का पुरस्कार समझा जाता था। जिस राजनीतिक दल का प्रत्याशी राष्ट्रपति निर्वाचित होता था, वह ऊँचे-ऊँचे पदों से पूर्ववर्ती दल से संबंध रखने वाले अधिकारियों को हटाकर उन पर अपने दल के सदस्यों को नियुक्ति करता था। इस प्रथा का शासन के सुचारु संचालन पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इस प्रकार, दलपद्धति बहुधा राज्य को सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों की सेवाओं से वंचित कर देती है।
4. **व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आघात**—राजनीतिक दल अपने सदस्यों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आघात करते हैं। यदि सदस्य दल की किसी नीति से सहमत नहीं होता, तो अनुशासन की दुहाई देकर उससे यह माँग की जाती है कि वह दल के आदेशों को शिरोधार्य करेगा। आजकल के राजनीतिक दल **हॉब्स** के 'लेवियाथन' बन गए हैं।
5. **विधानमंडलों की शक्ति का अपव्यय**—दलपद्धति के कारण विधान-मंडलों की शक्ति का अपव्यय होता है। **लॉर्ड ब्राइस** का यह कहना सही है कि, 'दलपद्धति के कारण संसद रणभूमि बन जाती है।' सत्तारूढ दल तो स्वयं को सत्तारूढ बनाए रखने की चेष्टा करता है और विरोधी दल उससे संघर्ष करने में देश के हित उपेक्षित हो जाते हैं। यदि विधान-मंडल के सदस्य किसी विधेयक को पसंद नहीं करते, तो वे उसको लेकर घंटों वाद-विवाद करते रहते हैं और इस प्रकार राष्ट्रीय धन तथा समय का व्यर्थ में ही अपव्यय होता है।
6. **दल पद्धति में सुधार की योजनाएँ**—ऊपर हमने दल पद्धति के जिन दोषों की चर्चा की है, वे अधिकांश में सच्चे हैं और उन्होंने हमारे सामाजिक व राजनीतिक जीवन में नई समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। दलपद्धति के इन दोषों को दृष्टि में रखकर कुछ लेखकों ने यह सुझाव दिया है कि राजनीतिक दलों का उन्मूलन ही कर देना चाहिए। उदाहरण के लिए **अलैक्जेंडर पोप** ने कहा है कि—'दल पद्धति थोडे से लाभ के लिए अनेकों का पागलपन है। 'दल पद्धति के आलोचकों का कहना है कि आजकल के राजनीतिक दल अपनी स्वार्थपरता के कारण लोकतंत्र के विकास में साधक नहीं प्रत्युत बाधक बन गए हैं और सच्चे लोकतंत्र की स्थापना तभी हो सकती है जब राजनीतिक दलों को समाप्त कर दिया जाए और शासन की बागडोर ऐसे व्यक्तियों के हाथों में रहे जो प्रत्येक समस्या पर व्यापक राष्ट्रीय दृष्टि से विचार कर सकें।

यद्यपि उक्त आलोचना में काफी सच्चाई है लेकिन राजनीतिक और सामाजिक विकास के वर्तमान स्तर पर राजनीतिक दलों का उन्मूलन न संभव है न वांछनीय। राजनीतिक दलों के उन्मूलन का सुझाव तो प्राय: ऐसा ही है कि यदि किसी व्यक्ति के सिर में दर्द हो तो उससे कहा जाए कि वह अपने सिर को ही काट दे। वर्तमान काल में राजनीतिक दल प्रतिनिधिक शासन का अनिवार्य अंग है और उनके अभाव में प्रतिनिधिक शासन का संचालन असंभव है। हाँ, यह अवश्य है कि दलपद्धति के उक्त दोषों को जहाँ तक हो सके कम किया जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि—(1) दलों का निमार्ण संप्रदाय, जाति या धर्म के आधार पर न होकर सुनिश्चित आर्थिक और राजनीतिक सिद्धांतों के आधार पर हो, (2) दल का नेतृत्व ऐसे व्यक्तियों के हाथों में रहना चाहिए, जो पहले राष्ट्रवादी हों और बाद में दलवादी (3) जनता सुशिक्षित तथा प्रबुद्ध हो और राजनीतिक समस्याओं में सक्रिय रुचि ले, (4) बहुमत और अल्पमत में सद्भाव हो जहाँ तक हो सके दोनों एक-दूसरे की इच्छाओं का पालन करें और (5) यथासंभव द्विदल प्रणाली को प्रोत्साहन दिया जाए।

❑

TOUCH 'n PASS

UNIT-III

ग्रामीण और नगरीय स्थानीय सरकार
Rural and Urban Local Government

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. पंचायती राज का अर्थ बताइए।
Give the meaning of panchayati raj.

उत्तर भारत में 'पंचायती राज' शब्द का अभिप्राय ग्रामीण स्थानीय स्वशासन पद्धति से है। यह भारत के सभी राज्यों में, जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के निर्माण हेतु राज्य विधानसभाओं द्वारा स्थापित किया गया है। इसे ग्रामीण विकास का दायित्व सौंपा गया है। 1992 के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा इसे संविधान में शामिल किया गया।

प्र.2. स्थानीय सरकार का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
Give the short introduction of local government.

उत्तर 1. स्थानीय स्वशासन ऐसे स्थानीय निकायों द्वारा स्थानीय मामलों का प्रबंधन है जिसके सदस्य स्थानीय लोगों द्वारा चुने जाते हैं।

2. स्थानीय स्वशासन में ग्रामीण और शहरी दोनों सरकारें शामिल हैं।
3. यह सरकार का तीसरा स्तर है।
4. स्थानीय सरकारें दो प्रकार की होती हैं—ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतें और शहरी क्षेत्रों में नगर पालिकाएँ।

प्र.3. ग्राम पंचायत का चुनाव कौन करता है?
Who elects the gram panchayat?

उत्तर पंचायत के सदस्यों का चुनाव गाँव के मताधिकार प्राप्त व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

प्र.4. पंचायत कितने प्रकार की होती हैं?
What are the types of panchayat?

उत्तर वर्ष 1993 में 73वें व 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से भारत में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर पर), पंचायत समिति और जिला परिषद् शामिल हैं।

प्र.5. भारत में स्थानीय शासन का विकास कैसे हुआ?
How local government evolved in India?

उत्तर आयोग ने जिला बोर्ड तथा जिला नगरपालिकाओं के कार्यों को विभाजित करने के लिए ग्राम पंचायत और उपजिला बोर्डों के विकास पर बल दिया। उसने सुझाव दिया कि ग्राम पंचायतों को अधिक शक्तियाँ मिलनी चाहिए। 1919 के 'भारत सरकार अधिनिमय' के लागू होने के पश्चात स्थानीय स्वायत्त शासन एक हस्तातरित विषय के अंतर्गत आ गया।

प्र.6. ग्रामीण स्थानीय स्वशासन से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by rural local self government?

उत्तर स्थानीय स्वशासन भारतीय अवधारणा/नवाचार है। स्थानीय स्वशासन का अर्थ स्थानीय स्तर की उन संस्थाओं से है जो जनता द्वारा चुनी जाती है तथा जिन्हें राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन के नियंत्रण में रहते हुए नागरिकों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकार और दायित्व प्राप्त होते हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. स्थानीय स्वशासन के कितने प्रकार होते हैं?
What are the types of local self government?

उत्तर स्थानीय स्वशासन का अर्थ स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित वह शासन है जिन्हें स्थानीय स्तर पर क्षेत्र की जनता द्वारा चुना जाता है।

1. **ग्राम पंचायत**—पंचायती व्यवस्था में ग्रामीण स्तर के सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होती है।
2. जनपद पंचायत
3. जिला-पंचायत या जिला परिषद्।

प्र.8. शहरी क्षेत्रों में प्रशासन के लिए कितने प्रकार की नगरीय संस्थाओं का गठन किया गया?
How many types of urban institutions were formed for administration in urban areas?

उत्तर नगरीय शासन से संबंधित संस्थाओं के तीन प्रकार हैं—नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम। नगर निगम बड़े नगर क्षेत्र के लिए।

प्र.9. नगरीय प्रशासन से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by urban administration?

उत्तर भारत में नगरीय शासन व्यवस्था प्राचीन काल से ही प्रचलन में रही है, लेकिन इसे कानूनी रूप सर्वप्रथम 1687 में दिया गया, जब ब्रिटिश सरकार द्वारा मद्रास शहर के लिए नगर निगम संस्था की स्थापनी की गयी। बाद में 1793 के चार्टर अधिनियम के अधीन मद्रास, कलकत्ता तथा बम्बई के तीनों महानगरों में नगर निगमों की स्थापना की गयी।

प्र.10. शहरी स्थानीय प्रशासन का सर्वोच्च निकाय कौन-सा है?
Which is the apex body of urban local administration?

उत्तर नगर निगम एक स्थानीय सरकारी निकाय है जो 10 लाख से अधिक आबादी वाले बड़े शहरी क्षेत्रों को नियंत्रित करता है। नगर परिषद नगरों और शहरों का एक स्थानीय सरकारी निकाय है।

प्र.11. स्थानीय सरकार कैसे कार्य करती है?
How local government works?

उत्तर स्थानीय स्वशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि यह देश के आम नागरिकों के सबसे करीब होती है और इसलिये यह लोकतंत्र में सबकी भागीदारी सुनिश्चित करने में सक्षम होती है। स्थानीय सरकार का क्षेत्राधिकार एक विशेष क्षेत्र तक सीमित होता है और यह उन्हीं लोगों के लिये कार्य करती है जो उस क्षेत्र विशेष के निवासी हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. नगर निकायों के विकास का उल्लेख कीजिए।
Mention the development of urban bodies.

उत्तर

नगर निकायों का विकास
(Development of urban Bodies)

आधुनिक भारत में ब्रिटिश काल के दौरान स्थानीय नगर प्रशासन की संस्थाएँ अस्तित्व में आईं। इस संदर्भ में प्रमुख घटनाएं निम्नवत हैं—

1. 1688 में भारत का पहला नगर निगम मद्रास में स्थापित हुआ।
2. 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता में नगर निगम स्थापित हुए।
3. 1870 का लॉर्ड मेयो का वित्तीय विकेन्द्रीकरण का संकल्प स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के विकास में परिलक्षित हुआ।
4. लॉर्ड रिपन का 1882 का संकल्प स्थानीय स्वशासन के लिए 'मैग्नाकार्टा' की हैसियत रखता है। उन्हें भारत में 'स्थानीय स्वशासन का पिता' कहा जाता है।
5. 1907 में रॉयल कमीशन ऑन डीसेन्ट्रलाइजेशन की नियुक्ति हुई, जिसने 1909 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। इस आयोग के अध्यक्ष हॉब हाउस थे।

TOUCH 'n PASS

6. भारत सरकार अधिनियम, 1919 के द्वारा प्रांतों में लागू की गई द्विशासनिक योजना के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन एक अंतरित विषय बन गया और इसके लिए एक भारतीय मंत्री को प्रभारी बनाया गया।
7. 1924 में कैण्टोण्मेन्ट एक्ट केन्द्रीय विधायिका द्वारा पारित किया गया।
8. भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा लागू प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय विषय घोषित किया गया।

अगस्त 1989 में, राजीव गांधी सरकार ने लोकसभा में 65वां संविधान संशोधन विधेयक (नगरपालिका विधेयक) पेश किया। इस विधेयक का उद्देश्य नगरपालिका के ढांचे पर उनकी संवैधानिक स्थिति पर परामर्श कर उन्हें शक्तिशाली बनाना एवं सुधारना था। यद्यपि यह विधेयक लोकसभा में पारित हुआ किंतु अक्तूबर 1989 में यह राज्यसभा में गिर गया और निरस्त हो गया। वी.पी. सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने सितंबर 1990 में लोकसभा में पुनः संशोधित नगरपालिका विधेयक पुनः स्थापित किया। फिर भी यह विधेयक पास नहीं हुआ और अंत में लोकसभा विघटित होने पर निरस्त हो गया।
सितंबर 1991 में पी.वी. नरसिम्हा राव सरकार ने भी लोकसभा में संशोधित नगरपालिका विधेयक पुनः स्थापित किया। अंततः यह 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में पारित हुआ और 1 जून, 1993 को प्रभाव में आया।

प्र.2. नगरपालिका कर्मी एवं निगम राजस्व के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
Mention the types of municipal workers and corporation revenue.

उत्तर

नगरपालिका कर्मियों के प्रकार
(Types of Municipal Workers)

भारत में तीन प्रकार के नगरपालिका कार्मिक हैं। नगर सरकारों में कार्यरत कार्मिक इन तीनों में से किसी एक अथवा तीनों से संबंधित हो सकते हैं—

1. **पृथक् कार्मिक प्रणाली**—इस प्रणाली में प्रत्येक स्थानीय निकाय अपने कार्मिकों की नियुक्ति प्रशासन एवं नियंत्रण स्वयं करता है। ये कार्मिक अन्य स्थानीय निकायों में स्थानांतरित नहीं किए जा सकते। यह व्यवस्था सबसे अधिक प्रचलित है। यह प्रणाली स्थानीय स्वायत्तता के सिद्धान्त को कायम रखती है तथा अविभक्त निष्ठा को प्रोत्साहित करती है।
2. **एकीकृत कार्मिक प्रणाली**—इस प्रणाली में राज्य सरकार नगरपालिका कार्मिकों की नियुक्ति, प्रशासन तथा नियंत्रण करती है। दूसरे शब्दों में, सभी नगर निकायों के लिए राज्य स्तरीय सेवाएं (कैडर) सृजित की जाती हैं। इनमें कार्मिकों का विभिन्न स्थानीय निकायों में स्थानांतरण होता रहता है। यह व्यवस्था आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि में लागू है।
3. **समेकित कार्मिक प्रणाली**—इस प्रणाली में राज्य सरकार के कार्मिक तथा स्थानीय निकायों के कार्मिक एक ही सेवा का गठन करते हैं। दूसरे शब्दों में, नगरपालिका कार्मिक राज्य सेवाओं के सदस्य होते हैं। इनका स्थानांतरण केवल स्थानीय निकायों में ही नहीं बल्कि राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में भी हो सकता है। यह व्यवस्था ओडिशा, बिहार, कर्नाटक, पंजाब हरियाणा तथा अन्य राज्यों में लागू है।

निगम राजस्व (Corporation Revenue)

शहरी स्थानीय निकायों के आपके पांच साधन हैं। वे साधन इस प्रकार हैं—

1. **कर-राजस्व**—स्थानीय करों से प्राप्त राजस्व के अंतर्गत संपत्ति कर, मनोरंजन कर, विज्ञापन कर, पेशा कर, जलकर मवेशी कर, प्रकाश कर, तीर्थ कर, बाजार कर, नये पुलों पर मार्ग कर, चुंगी तथा अन्य कर आते हैं। साथ ही, निगम के निकाय कई प्रकार के शुल्क, जैसे-पुस्तकालय शुल्क, शिक्षा शुल्क, शिक्षा शुल्क आदि लगाते हैं। चुँगी जो स्थानीय क्षेत्र में आने वाली चीजों पर लगाया कर है जो उनके इस्तेमाल तथा बिक्री पर भी लगाया जाता है। ये चुंगियां कई राज्यों में हटा दी गई हैं। संपत्ति कर कर-राजस्व में सर्वाधिक महत्त्व का है।
2. **गैर-कर राजस्व**—इस स्रोत के अंतर्गत आते हैं—निगम संपत्ति, फीस, जुर्माना, रॉयल्टी लाभ, लाभांश, ब्याज, उपयोग फीस तथा अन्य अदायगियाँ । जन-सुविधा शुल्क, जैसे-जल, स्वच्छता, मलवाहन (swerage) फीस तथा अन्य।

TOUCH 'n PASS

3. **अनुदान**—इनमें केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा निगम निकायों को कई विकास परियोजनाओं संरचना परियोजना, शहरी सुधार प्रक्रम तथा अन्य योजनाएं संचालित करने हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा दिए जाने वाले विभिन्न अनुदान शामिल हैं।
4. **हस्तांतरण**—इसके अंतर्गत आता है—राज्य सरकार से शहरी स्थानीय निकायों को निधि का हस्तांतरण । यह हस्तांतरण राज्य वित्त आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर होता है।
5. **कर्ज**—शहरी स्थानीय निकाय अपने व्यय के लिए राज्य सरकार तथा वित्तीय संस्थानों से भी कर्ज लेते हैं। पर वे राज्य सरकार की अनुमति से ही वित्तीय संस्थानों या अन्य संस्थाओं से कर्ज ले सकते हैं।

प्र.3. ग्राम सभा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a short note on gram sabha.

उत्तर

ग्राम सभा
(Gram Sabha)

ग्राम सभा पंचायती राज की प्राथमिक इकाई है, जिसके आधार पर ग्राम पंचायत कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है। बलवन्त राय समिति ने पंचायती राज का सुझाव देते हुए केवल त्रिस्तरीय व्यवस्था की कल्पना की थी, जिसमें सबसे नीचे गाँव स्तर पर पंचायत थी। इस समिति ने यह नहीं सोचा था कि गाँव के स्तर पर प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की स्थापना करने के लिए गाँव के सभी निवासियों की एक संस्था भी होनी चाहिए, जिसके प्रति पंचायत को उत्तरदायी बनाया जा सके। इस आवश्यकता को अनुभव करते हुए जब पंचायती राज प्रणाली को लागू किया गया, तो विभिन्न राज्यों में ग्राम सभा को पंचायती राज की मौलिक इकाई (Basic Unit) के रूप में स्वीकार किया गया। ग्राम सभा सही अर्थों में जनमूलक संस्था है, जिसमें जनता के प्रतिनिधि ही नहीं, बल्कि जनता स्वयं सम्मिलित होती है। यह भारत में केवल एकमात्र राजनीतिक संस्था है, जिसमें प्रत्यक्ष लोकतन्त्र विद्यमान है। ग्राम सभा अपने सदस्यों में से पंचायत के सदस्यों (पंचों एवं सरपंचों) का चुनाव करती है। इसलिए पंचायत इसके प्रति उत्तरदायी है। पहले केरल तथा तमिलनाडु के राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में ग्राम सभा को वैधानिक संस्था (Statutory Body) का रूप दिया गया था। इन राज्यों में इसे Corporate का रूप दिया गया था। अब सभी राज्यों में इसे वैधानिक संस्था का रूप दिया गया है।

रचना (Composition)—ग्राम सभा की रचना सभी राज्यों में पूर्णतया एक जैसी नहीं है। बिहार, उड़ीसा तथा राजस्थान में गाँव अथवा सनीपस्थ गाँवों के समूह के वयस्क निवासी इसके सदस्य होते हैं। दूसरे राज्यों में ग्राम क्षेत्र के सभी मतदाता अर्थात् वे लोग जिनके नाम राज्य की विधानसभा के चुनाव की मतदाता सूची में लिखे होते हैं, ग्राम सभा के सदस्य होते हैं। इस प्रकार गाँव का प्रत्येक स्त्री और पुरूष जिसकी आयु 18 वर्ष या इससे अधिक हो ग्राम सभा का सदस्य होता है। ग्राम सभा का आकार सभी राज्यों में भिन्न है। साधारणत: उसमें 250 से 500 तक सदस्य होते हैं। जैसे पंजाब में जब पंचायती राज की स्थापना की गई थी तो किसी भी गाँव में जिनकी जनसंख्या 500 या इससे अधिक है वहाँ पर ग्राम सभा की व्यवस्था की जाती है। यदि किसी गाँव की जनसंख्या 500 से कम हो तो उसके समीप के छोटे-छोटे गाँवों को मिलाकर ग्रामसभा की स्थापना की जाती थी, परन्तु 27 जनवरी, 1971 को राज्य सरकार ने ग्राम पंचायत एक्ट, 1952 में संशोधन करके ग्राम सभा के निर्माण के लिए कम से कम जनसंख्या 200 निश्चित की है। जम्मू व कश्मीर, मैसूर (कर्नाटक) तथा राजस्थान के पंचायत अधिनियमों (Panchayat Acts) द्वारा ग्राम-पंचायत के क्षेत्र में रहने वाले सभी वयस्कों के अधिवेशनों की व्यवस्था की गई है।

अधिवेशन (Session)—ग्राम सभा के अधिवेशन के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रणाली विद्यमान है। ग्राम सभा का अधिवेशन अधिकांश राज्यों में प्रति वर्ष दो बार होता है परन्तु तमिलनाडु में एक वर्ष में तीन बार तथा असम एवं बिहार में प्रतिवर्ष चार बार होता है। इसकी कार्यवाही संस्था (Quorum) ग्राम सभा के सदस्यों का पाँचवां भाग होती है। 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है तथा इस एक्ट के प्रभावाधीन सभी राज्यों द्वारा पारित किए गए पंचायती राज अधिनियमों द्वारा ग्राम स्तर पर सभा की स्थापना करना अनिवार्य है तथा सभी राज्यों में इसे वैधानिक संस्था (Statutory Body) की स्थिति (Status) प्रदान की गई है। इसकी कार्यवाही संख्या (Quorum) ग्राम सभा के सदस्यों का पाँचवां भाग होती है।

ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता सरपंच (प्रधान) और सरपंच की अनुपस्थिति में उपसरपंच (उप-प्रधान) द्वारा की जाती है। उन दोनों की अनुपस्थिति की दशा में ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता, बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत द्वारा इस प्रयोजन के लिए निर्वाचित सदस्य द्वारा की जाती है।

TOUCH 'n' PASS

केरल जैसे राज्य में जहाँ पर प्रत्येक ग्राम पंचायत की जनसंख्या 2000 है। ग्राम सभा की बैठक बुलाना कठिन है। इस समस्या का समाधान करने के लिए वहाँ पर क्षेत्रीय बैठक होती है। गाँव के क्षेत्रों में बाँटा गया है तथा प्रत्येक क्षेत्र की अलग बैठक होती है जिसमें ग्राम पंचायत का सरपंच अध्यक्षता करता है। बिहार, गोवा, त्रिपुरा, राजस्थान तथा मणिपुर में प्रत्येक ग्राम सभा के लिए एक चौकसी समिति की व्यवस्था की गई है।

प्र.4. ग्राम पंचायत के सार्वजनिक कार्यों एवं प्रशासकीय कार्यों का उल्लेख कीजिए।
Mention the public and administrative functions of gram panchayat.

उत्तर

ग्राम पंचायत के कार्य
(Function of Gram Panchayat)

ग्राम पंचायत के बहुमुखी कार्य हैं जिनका विवरण निम्नलिखित हैं—

1. **सार्वजनिक कार्य** (Public Functions)—पंचायत के सार्वजनिक कार्य निम्न प्रकार हैं—
   (i) अपने क्षेत्र की सड़कों की देखभाल करना, उनकी मरम्मत करना।
   (ii) ग्राम की सफाई करना।
   (iii) कुओं, नलों तथा तालाबों आदि की व्यवस्था तथा देखभाल करना।
   (iv) गलियों तथा बाजारों में रोशनी का प्रबन्ध करना।
   (v) श्मशानों तथा कब्रिस्तानों की निगरानी करना।
   (vi) जन्म एवं मृत्यु का लेखा करना।
   (vii) प्राथमिक शिक्षा के प्रयत्न करना।
   (viii) पशुओं की मंडियाँ लगवाना तथा पशुओं की नस्ल में सुधार करना।
   (ix) ग्राम सभा से सम्बन्धित किसी भी भवन की सुरक्षा करना।
   (x) मेलों तथा उत्सवों के अतिरिक्त सामाजिक उत्सवों को मनाना।
   (xi) नये मकानों का निर्माण तथा बनी हुई इमारतों में परिवर्तन अथवा विस्तार करने पर नियन्त्रण रखना।
   (xii) कृषि, व्यापार तथा ग्राम उद्योग के विकास में सहायता देना।
   (xiii) सार्वजनिक इमारतों की स्थापना तथा उनकी देखभाल एवं मरम्मत करवाना।
   (xiv) मातृ तथा शिशु कल्याण केन्द्रों की स्थापना करना।
   (xv) पशु चिकित्सालय की स्थापना करना।
   (xvi) खाद एकत्र करने के लिए स्थान निश्चित करना।
   (xvii) आग बुझाने में सहायता करना तथा आग लग जाने पर जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करने का प्रयत्न करना।
   (xviii) पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा खेल मैदानों की व्यवस्था करना।
   (xix) सड़कों के किनारे वृक्ष लगवाना।
   (xx) आवश्यकतानुसार पुलों की स्थापना करना।
   (xxi) गरीबों को सहायता (Relief) देना।
2. **प्रशासकीय कार्य** (Administrative Functions)—प्रशासकीय क्षेत्र में ग्राम पंचायत का कर्त्तव्य है कि वह—
   (i) अपने क्षेत्र में अपराधों की रोकथाम तथा अपराधियों की खोज में पुलिस की सहायता करे।
   (ii) यदि ग्रामीण क्षेत्र में काम करने वाले किसी सरकारी कर्मचारी, सिपाही, पटवारी, वन विभाग के व्यक्ति, चौकीदार चपरासी आदि के विरुद्ध कोई शिकायत हो तो जिलाधीश अथवा किसी अन्य अधिकारी को सूचित करे। पंचायत की रिपोर्ट के अनुसार जिलाधीश या किसी अन्य अधिकारी द्वारा जो कार्यवाही की गई हो, उसकी सूचना लिखित रूप में ग्राम पंचायत को भेजे।
   (iii) ग्रामों में शराब के ठेके और शराब बेचने का विरोध करे।
   (iv) असम, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा ओडिसा में ग्राम पंचायतों को चौकीदारों (Watch and Wards) का प्रबन्ध करने की शक्ति भी प्रदान की गई है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. पंचायतों की आय के साधन एवं पंचायत कर्मचारी का उल्लेख कीजिए।
Mention the sources of income of panchayats and panchayat employees.

उत्तर

पंचायत की आय के साधन
(Sources of Income of Panchayat)

पंचायतों की आय के साधन निम्नलिखित हैं—

1. **कर** (Taxes)—पंचायत की आय का प्रथम साधन कर है। पंचायत राज्य सरकार द्वारा या पंचायती राज द्वारा स्वीकृत किए गए कर लगा सकती है। जैसे सम्पत्ति कर, पशु कर, व्यवसाय कर, टोकन कर, मार्ग कर, चुंगी कर आदि।
2. **फीस और जुर्माना** (Fees and Fines)—पंचायत की आय का दूसरा साधन इसके द्वारा किए गए जुर्माने तथा अन्य प्रकार के शुल्क (fees) हैं; जैसे—पंचायती विश्राम घर के प्रयोग के लिए फीस, गली तथा बाजारों में रोशनी करने का कर, पानी कर आदि। इन करों का प्रयोग केवल उन्हीं पंचायतों द्वारा किया जाता है जो ये सुविधाएँ प्रदान करती है।
3. **सरकारी अनुदान** (Government Grants)—पंचायत की आय का मुख्य साधन सरकारी अनुदान है। सरकार पचायतों की विकास-सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अनुदान देती हैं। साधारणतया प्रत्येक राज्य के क्षेत्र से इकट्ठा होने वाले भू-राजस्व का कुछ भाग पंचायतों को दिया जाता है। जैसे—पंजाब में 15%, उ०प्र० में $12\frac{1}{2}$%, आदि। बिहार, महाराष्ट्र तथा गुजरात में पंचायतें ही सरकार के आधार पर भू-राजस्व इकट्ठा करती है।
4. **मिश्रित साधन** (Other Sources)—पंचायतों के आय के और भी साधन हैं जैसे पंचायत की सीमा में कूडा-कर्कट गोबर, गन्दगी आदि को बेचने से आय, शामलाट से आय, मेलों आदि से आय, पंचायत की सम्पत्ति से आय आदि। आन्ध्र प्रदेश, ओडिसा तथा पंजाब में पंचायतों को मछली पालने तथा बेचने से विशेष आय होती है।
5. **ऋण** (Borrowings)—उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त राज्य सरकार की स्वीकृति से पंचायत ऋण भी ले सकती है।

पंचायत कर्मचारी
(Panchayat Employee)

पंचायत के स्तर पर निम्नलिखित कर्मचारी कार्य करते हैं—

1. **पंचायत सचिव** (Panchayat Secretary)—पंचायत की सहायता के लिए एक पंचायत सचिव होता है। उसे एक से अधिक पंचायतों की सहायता के लिए भी कार्य करना पड़ता है। पंचायत सचित की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। उसमें मुख्य कार्य पंचायत सम्बन्धी सभी प्रकार का हिसाब-किताब रखना, बजट बनाने में सरपंच की सहायता करना, आय और व्यय का ब्यौरा रखना तथा पंचायत की ओर से सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करना है। व्यावहारिक रूप में एक सचिव को कई पंचायतों का कार्य करना पड़ता है।
2. **ग्राम सेवक** (Gram Sewak)—विकासवादी कार्यों में पंचायत की सहायता के लिए राज्य सरकार ग्राम सेवक की नियुक्ति करती है। वह कई पंचायतों के लिए कार्य करता है। वह पंचायत की उद्योग, कृषि तथा विकासवादी कार्यों के लिए सहायता करता है और उसे परामर्श देता है।
3. **चौकीदार** (Watchman)—गाँव में लोगों की सम्पत्ति की देखभाल तथा रक्षा के लिए चौकीदार की नियुक्ति की जाती है। वह रात के समय पहरा देता है तथा गाँव में शान्ति की व्यवस्था बनाए रखने के लिए पंचायत तथा सरकारी कर्मचारियों की सहायता करता है।

प्र.6. स्थानीय शासन की मुख्य विशेषताएँ बताइए।
State main features of local government.

उत्तर

स्थानीय शासन की मुख्य विशेषताएँ
(Main Features of Local Government)

स्थानीय शासन के अर्थ व परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी विशेष क्षेत्र के स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा संचालित शासन प्रबन्ध ही स्थानीय शासन कहलाता है। स्थानीय शासन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **निश्चित स्थानीय क्षेत्र** (Definite Local Area)—स्थानीय शासन की प्रत्येक इकाई, चाहे वह नगरपालिका की कोई संस्था हो या पंचायत की कोई संस्था हो, का अपना एक निश्चित कार्य क्षेत्र होता है। स्थानीय शासन की प्रत्येक इकाई का

TOUCH 'n PASS

अधिकार क्षेत्र व सीमान्तर का निर्धारण राज्य सरकार/संघीय सरकार करती है। इस निश्चित अधिकार क्षेत्र के अन्दर रहकर ही स्थानीय शासन की इकाई अपने दायित्वों का निर्वाह करती है। State Government स्थानीय शासन की किसी भी इकाई की सीमा का निर्धारण करते समय सम्बन्धित क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व (1 km. वर्ग में रहने वाले लोग), स्थानीय क्षेत्र की आय के साधन, शहरीकरण या ग्रामीण पृष्ठभूमि का विस्तार आदि तत्त्वों को ध्यान में रखती है।

2. **स्थानीय सत्ता** (Local Authority)—स्थानीय शासन की संस्थाओं का प्रशासन कुशलतापूर्वक चलाने के लिए वहाँ के नागरिकों के प्रतिनिधियों को सत्ता व शक्ति सौंपना आवश्यक है। ये चुने हुए प्रतिनिधि स्थानीय शासन के संस्थाओं के प्रशासन का संचालन करते हैं और अपने क्षेत्र के लोगों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इन प्रतिनिधियों को स्थानीय समस्याओं के बारे में ज्ञान होता है और ये अपने विचार केन्द्र या राज्य सरकार के पास प्रभावशाली तरीके से पहुंचा सकते हैं। इसलिए स्थानीय शासन की संस्थाओं के जनप्रतिनिधियों को स्थानीय स्तर पर शक्ति सौंप देनी चाहिए।
3. **स्थानीय लोगों की सेवा** (Service to Local People)—स्थानीय शासन पर गठित सभी संस्थाएं लोगों की सेवा और सुविधा के लिए कार्यरत होती हैं। इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य स्थानीय क्षेत्र में रहने वाले लोगों का कल्याण करना होता है। बिजली, पानी, स्वास्थ्य, यातायात, शिक्षा आदि सभी प्रकार की सेवाओं का लाभ स्थानीय क्षेत्र के लोगों को मिलता है। यदि वित्तीय स्थिति अच्छी हो और राज्य सरकार कुछ सहायता प्रदान कर दे तो स्थानीय लोगों की सेवा के स्तर व गुणों में वृद्धि हो सकती है।
4. **स्थानीय आय के साधन** (Local Sources of Income)—स्थानीय शासन की संस्थाएँ स्थानीय सेवाओं व प्रशासन का प्रबन्ध करने हेतु स्थानीय वित्तीय स्रोतों से प्राप्त धन का ही प्रयोग करती हैं। इन संस्थाओं की आय के अनेक साधन होते हैं जिसमें स्थानीय कर (Local Tax) एवं राज्य से प्राप्त ऋण व सेवाओं के बदले ली गई फीस शामिल है। स्थानीय संस्थाओं को अपना बजट बनाने की स्वतन्त्रता होती है। ये अपने शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आय के सभी उपलब्ध साधनों का पूरा लाभ उठाती हैं। कई बार स्थानीय नागरिक भी स्वेच्छा से स्थानीय क्षेत्र के विकास के लिए चन्दा, दान आदि भी देते हैं।
5. **स्थानीय स्वायत्तता** (Local Autonomy)—स्थानीय शासन की संस्थाएँ स्थानीय लोगों की जरूरतों को पूरा करती हैं। यदि इन संस्थाओं पर अत्यधिक नियन्त्रण व प्रतिबन्ध लगाए जाए तो ये कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। इन संस्थाओं को एक अधिकार क्षेत्र की सीमा में रहकर पूर्ण स्वतन्त्रता व स्वायत्तता होती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि ये संस्थाएँ अपनी इच्छा से कुछ भी कार्य कर सकती हैं। राज्य या केन्द्रीय सरकार के कानूनों व नियमों के विरुद्ध ये संस्थाएँ कुछ भी नहीं कर सकती। इन संस्थाओं को किस हद तक स्वायत्तता दी जाए व किस सीमा तक स्वतन्त्रता दी जाए, इसका निर्णय सम्बन्धित विषय पर निर्भर करता है।

प्र.7. स्थानीय शासन के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

Throw light on the importance of local government.

उत्तर

स्थानीय शासन का महत्त्व
(Importance of Local Government)

किसी विशेष क्षेत्र के स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा संचालित शासन प्रबन्ध ही स्थानीय शासन कहलाता है। लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था के महत्त्व एवं उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है—

1. **लोकतन्त्र की आधारशिला**—स्थानीय शासन व्यवस्थाएँ लोकतन्त्र की जड़ों को गहरा बनाती हैं। इनके अभाव में लोकतन्त्र की सफलता सम्भव नहीं है। वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश देशों में प्रतिनिधियात्मक लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था प्रचलित है, लेकिन इस शासन व्यवस्था के देशों में अधिकांशत: व्यक्तियों का शासन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की जाती है ताकि लोकतन्त्र केवल शिखर पर ही नहीं रहे वह धरातल पर लोकतन्त्र बन सकें। इस प्रकार की आवश्यकता स्थानीय शासन ही पूर्ण कर सकता है क्योंकि इसमें स्थानीय जनता, स्थान विशेष की समस्याओं का प्रबन्ध करती है। अत: स्थानीय संस्थाओं को लोकतन्त्र की 'रीढ़ की हड्डी' भी कहा जाता है। वास्तविकता यह है कि उच्च स्तर के लोकतन्त्र की सफलता प्राय: निम्न स्तर के मजबूत लोकतन्त्र पर निर्भर करती है।

TOUCH 'n PASS

2. **लोकतन्त्र की पाठशाला**—ब्राइस के अनुसार लोकतन्त्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला तथा इसकी सफलता की गारन्टी स्थानीय शासन है। स्थानीय शासन राजनीतिक अनुभव की विविधता को बढ़ावा देकर तथा अपने को लोकतान्त्रिक पद्धति पर आधारित सृजनात्मक क्रियाकलाप के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित करके लोकतन्त्र की नमनीयता, शक्ति तथा सम्पन्नता के विकास में योगदान देता है। अत: ब्राइस का विचार है कि स्थानीय शासन का जो अभ्यास नागरिकों को होता है उससे उनके व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक कार्यों के प्रति यह कर्त्तव्य की भावना जागृत होती है कि कार्य कुशलता व ईमानदारी से किया जाए। अत: इन संस्थाओं को 'लोकतन्त्र की पाठशाला', 'प्रयोगशाला' एवं 'नर्सरी' कहा जाता है।
3. **जनता को राजनीतिक प्रशिक्षण**—स्थानीय शासन राजनीतिक प्रशिक्षण का सुनिश्चित साधन है। उसका सम्बन्ध मुख्यत: ठोस कार्यों से होता है जैसे—पार्क विकसित करना, पानी की व्यवस्था, कूड़ा करकट हटाना इत्यादि। अत: स्थानीय संस्थाओं के कार्यों एवं परिणामों को हर व्यक्ति सरलता से देख व जान सकता है। चूँकि हर कार्य जनता की आँखों के सामने होता है अत: महत्त्वपूर्ण स्थानीय समस्याओं के सन्दर्भ में सूक्ष्म वाद-विवाद उठ खड़ा होता है जिससे लोगों को शिक्षा मिलती है और उनमें अनुशासन का विकास होता है। नागरिकों में जागरूकता उत्पन्न होती है तथा उन्हें राजनीतिक प्रशिक्षण मिलता है।
4. **नेतृत्व का प्रशिक्षण**—स्थानीय संस्थाएँ केवल सामान्य जनता का ही नहीं बल्कि नेतृत्व करने वाले वर्ग का भी प्रशिक्षण का कार्य करती हैं। उभरते हुए नेतृत्व के विकास में ये संस्थाएँ अत्याधिक सहायक हैं। स्थानीय संस्थाओं के सदस्य इन संस्थाओं के माध्यम से प्राप्त राजनीतिक व प्रशासनिक अनुभव एवं ज्ञान का उपयोग राष्ट्रीय या प्रान्तीय स्तर पर कर सकते हैं। चर्चिल, मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, लाला लाजपतराय, सरदार बल्लभ भाई पटेल, फिरोजशाह मेहता जैसे सर्वमान्य नेताओं ने अपना सार्वजनिक जीवन स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से ही शुरू किया था। लास्की का विचार है—'उन्हीं व्यक्तियों को केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार में प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने का अधिकार मिलना चाहिए जो पहले कम से कम तीन वर्ष तक स्थानीय संस्थाओं में प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर चुके हों।'
5. **नागरिक गुणों का विकास**—ये संस्थाएँ जनता में अनेक नागरिक गुणों का विकास करती हैं। उदाहरणार्थ उदारता, सहिष्णुता एवं व्यापक दृष्टिकोण, सहयोग एवं सार्वजनिक सेवा की भावना, पारस्परिक समझ एवं सामंजस्य, सार्वजनिक उत्साह आदि भावनाएँ इन्हीं संस्थाओं की क्रियान्विती के माध्यम से उत्पन्न होती हैं। ये संस्थाएँ विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोगों में समान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामूहिक रूप से मिलजुलकर कार्य करने की भावना पैदा करती हैं। अत: लॉर्ड ब्राइस ने इस सन्दर्भ में लिखा है, 'स्थानीय संस्थाएँ सामान्य कार्यों में नागरिकों की सामान्य रुचि जागृत करती हैं। ये लोगों को दूसरों के हित का कार्य करने का प्रशिक्षण ही नहीं देतीं वरन् उन्हें प्रभावशाली ढंग से दूसरों के साथ कार्य करना भी सिखाती हैं। ये सहज ज्ञान, तर्कसंगतता, न्यायप्रियता एवं सामाजिकता का विकास करती हैं।'

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 1992 के 74वें संविधान संशोधन अधिनियम का वर्णन कीजिए।
Describe the 74th constitutional amendment act of 1992.

उत्तर

1992 का 74वें संविधान संशोधन अधिनियम
(74th Constitutional Amendment Act of 1992)

इस अधिनिमय ने भारत के संविधान में नया भाग 9क शामिल किया। इसे 'नगरपालिकाएँ' नाम दिया गया और अनुच्छेद 243त से 243-यछ के उपबंध शामिल किए गए। इस अधिनियम के कारण संविधान में एक नई 12वीं सूची को भी जोड़ा। इस सूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्यकारी विषय-वस्तुओं का उल्लेख है। यह अनुच्छेद 243-डब्ल्यू से संबंधित हैं।

इस अधिनियम ने नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। इससे इसे संविधान के न्यायोचित भाग के क्षेत्राधिकार में लाया गया। दूसरे शब्दों में, राज्य सरकार अधिनियम के प्रावधानानुसार नई नगरपालिका पद्धति को अपनाने के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य है।

इस अधिनियम का उद्देश्य शहरी शासन को पुनर्जीवित करना एवं शक्तिशाली बनाना है, जिससे कि वे स्थानीय शासन की इकाई के रूप में प्रभावशाली ढंग से कार्य करें।

TOUCH 'n PASS

प्रमुख विशेषताएँ (Main Features)

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

तीन प्रकार की नगरपालिकाएँ—यह अधिनियम प्रत्येक राज्य में निम्न तीन तरह की नगरपालिकाओं की संरचना का उपबंध करता है।

1. नगर पंचायत (किसी भी नाम से) परिवर्तित क्षेत्र के लिए।
2. नगरपालिका परिषद छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए।
3. बडे शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका निगम।

लेकिन एक अपवाद है। यदि कोई शहरी क्षेत्र है जहाँ की शहरी सुविधाएँ किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान द्वारा मुहैया कराई जा रही हैं तब राज्यपाल उस क्षेत्र को एक औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकते हैं। इस स्थिति में नगरपालिका का गठन नहीं किया जा सकता है।

राज्यपाल, किसी क्षेत्र को निम्नलिखित कारकों के आधार पर संक्रमण क्षेत्र, लघु शहरी क्षेत्र अथवा वृहत शहरी क्षेत्र विनिर्दिष्ट कर सकते हैं—

क. क्षेत्र की जनसंख्या
ख. जनसंख्या घनत्व
ग. स्थानीय प्रशासन के लिए उपार्जित राजस्व
घ. गैर-कृषि कार्यों में रोजगार का प्रतिशत
च. आर्थिक महत्त्व
छ. अन्य कारण जिसे राज्यपाल विचार करने योग्य मानें

संरचना—नगरपालिका के सभी सदस्य सीधे नगरपालिका क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने जाएंगे। इस उद्देश्य के लिए, प्रत्येक नगरपालिका को निर्वाचन क्षेत्रों (वार्ड) में बांटा जाएगा। राज्य विधानमंडल नगरपालिका के अध्यक्ष के निर्वाचन का तरीका प्रदान कर सकता है। यह नगरपालिका में निम्न व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व की भी व्यवस्था करता है—

1. वह व्यक्ति जिसे नगरपालिका के प्रशासन का विशेष ज्ञान अथवा अनुभव हो लेकिन उसे नगरपालिका की सभा में बाधा डालने का अधिकार नहीं होगा।
2. निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोकसभा या राज्य विधानसभा के सदस्य, जिनमें नगरपालिका का पूर्ण या अंशत: क्षेत्र आता हो।
3. राज्यसभा और राज्य विधानपरिषद के सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र में मतदाता के रूप पंजीकृत हों।
4. समिति के अध्यक्ष (वार्ड समितियों के अतिरिक्त)।

वार्ड समितियाँ—तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाली नगरपालिका के क्षेत्र के तहत एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समिति होगी। वार्ड समिति की संरचना, क्षेत्र और वार्ड समिति में पदों को भरने के संबंध में राज्य विधानमंडल उपबंध बना सकता है।

अन्य समितियाँ—कई समितियों के अतिरिक्त, राज्य विधायिका अन्य समितियों के गठन के लिए प्रावधान बनाने के लिए अधिकृत हैं ऐसी समितियों के अध्यक्ष नगरपालिका के सदस्य हो सकते हैं।

पदों का आरक्षण—यह अधिनियम अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को उनकी जनसंख्या और कुल नगरपालिका क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक नगरपालिका में आरक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा यह महिलाओं को कुल सीटों के एक-तिहाई (इसमें अनुसूचित जाति व जनजाति महिलाओं से संबंधित आरक्षित सीटें भी हैं) (इसमें कम नहीं) सीटों पर आरक्षण प्रदान करता है।

राज्य विधानमण्डल अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं हेतु नगरपालिकाओं में अध्यक्ष पद के आरक्षण हेतु विधि निर्धारित कर सकता है। यह किसी भी नगरपालिका या अध्यक्ष पद पर पिछड़ी जातियों के आरक्षण के समर्थन में कोई भी उपबंध बना सकता है।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए नगरपालिकाओं में सीटों के आरक्षण के साथ-साथ अध्यक्षों के कार्यालयों में आरक्षण की सुविधा अनुच्छेद 334 में विनिर्दिष्ट समापन अवधि (जो कि वर्तमान में सत्तर वर्ष, अर्थात् 2020 तक) के पश्चात् निष्प्रभावी या समाप्त हो जाएगी।

TOUCH 'n' PASS

नगरपालिकाओं का कार्यकाल—यह अधिनियम प्रत्येक नगरपालिका की कार्यकाल अवधि 5 वर्ष निर्धारित करता है। यद्यपि इसे इसकी अवधि से पूर्व समाप्त किया जा सकता है। उसके बाद एक नई नगरपालिका का गठन किया जाएगा—

(अ) इसकी 5 वर्ष की अवधि समाप्त होने से पूर्व या,

(ब) विद्यटत होने की दशा में इसे विघटन होने की तिथि से 6 महीने की अवधि तक।

किंतु, जहाँ इस अवधि (जिसके लिए भंग नगरपालिका को कार्य करते रहना है) छह महीने से कम हो, उस अवधि के लिए नई नगरपालिका के लिए किसी चुनाव की आवश्यकता नहीं होगी। फिर भी, किसी नगरपालिका के कार्यकाल की समाप्ति के पूर्व गठित नगरपालिका उस शेष अवधि के लिए बना रहेगा जिस अवधि के लिए भंग की गयी नगरपालिका भंग नहीं किए जाने पर बना रहता।

दूसरे शब्दों में, समयपूर्व भंग के पश्चात् पुन: गठित नगरपालिका पांच वर्ष की पूर्ण अवधि तक के लिए नहीं बना रहेगा बल्कि केवल बची हुई अवधि के लिए ही कार्य करेगा।

अधिनियम नगरपालिका के भंग होने के सम्बन्ध में दो और प्रावधान करता है—(क) नगरपालिका को भंग होने के पहले उसे अपना पक्ष रखने का अवसर अवश्य दिया जाता है, तथा (ख) किसी भी कानून का कोई भी संशोधन, जो कि वर्तमान में लागू है, पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने के पूर्व नगरपालिका को भंग नहीं कर सकता है।

निरर्हताएँ—चुने जाने पर या नगरपालिका के चुने हुए सदस्य निम्न स्थितियों में निरर्ह घोषित किए जा सकते हैं—

(अ) संबंधित राज्य के विधानमण्डल के निर्वाचन के प्रयोजन हेतु प्रचलित किसी विधि के अंतर्गत।

(ब) राज्य विधान द्वारा बनाए गई किसी विधि के अंतर्गत, फिर भी किसी व्यक्ति को 25 वर्ष से कम आयु की शर्त पर निरर्ह घोषित नहीं किया जा सकेगा, यदि वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो। इसके बाद निरर्हता संबंधित सारे विवाद, राज्य विधान द्वारा नियुक्त अधिकारियों के समक्ष ही प्रस्तुत किए जा सकेंगे।

राज्य निर्वाचन आयोग—निर्वाचन प्रक्रियाओं की देख-रेख, निर्देशन एवं नियंत्रण और नगरपालिकाओं के सभी चुनावों का प्रबंधन राज्य चुनाव आयोग के अधिकार में होगा।

नगरपालिकाओं के चुनाव संबंधित सभी मामलों पर राज्य विधानमंडल उपबंध बना सकता है।

शक्तियाँ और कार्य—राज्य विधानमंडल नगरपालिकाओं को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियाँ और अधिकार दे सकता है जिसमें कि वे स्वायत्त सरकारी संस्था के रूप में कार्य करने में सक्षम हों। इस तरह की योजना में उपयुक्त स्तर पर नगरपालिकाओं के अंतर्गत शक्तियाँ और जिम्मेदारी आती हैं, जो निम्न हैं—

(अ) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को तैयार करना।

(ब) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना, जो उन्हें सौंपे गए हैं, जिसमें 12वीं अनुसूची के 18 मामले भी सम्मिलित हैं।

वित्त—राज्य विधायिका—

(अ) नगरपालिका को वसूली, उपयुक्त कर निर्धारण, चुंगी, यात्री कर, शुल्क लेने का अधिकार। (ब) यह नगरपालिकाओं राज्य सरकार द्वारा करों, चुंगी, पथकर और शुल्क एकत्र करने का काम सौंप सकती है। (स) राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता के रूप में अनुदान प्रदान है। (द) नगरपालिकाओं में जमा होने वाली सभी राशि संग्रहण की विधियाँ तैयार कर सकती है।

वित्त आयोग—वित्त आयोग (जो पंचायतों के लिए गठित किया गया है) भी प्रत्येक 5 वर्ष में नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का पुनरावलोकन करेगा और राज्यपाल को निम्न सिफारिशें करेगा—

1. सिद्धांत जो नियंत्रित होंगे—
   (अ) राज्य और नगरपालिकाओं में राज्य सरकार द्वारा एकत्र किए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग कर एवं संगृहीत शुल्कों का बंटवारा और सभी स्तरों पर नगर पालिकाओं के बीच शेयरों का आवंटना
   (ब) करों, चुंगी, पथकर और शुल्कों का निर्धारण जो कि नगरपालिकाओं को सौंपे जा सकते हैं।
   (स) राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को दिए जाने वाले सहायता अनुदान।
2. नगरपालिका की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक उपाए।
3. राज्यपाल द्वारा आयोग को दिया जाने वाला कोई भी मामला जो कि पंचायतों के मजबूत वित्त के पक्ष में हो।

राज्यपाल आयोग द्वारा की गई सिफारिशों और कार्यवाही रिपोर्ट को राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करेगा।
केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में नगरपालिकाओं के पूरक स्रोतों की राज्य की संचित निधि में वृद्धि के लिए (राज्य वित्त आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों के आधार पर) आवश्यक उपायों के बारे में सलाह देगा।

संघीय क्षेत्र में लागू होना—इस भाग के प्रावधान संघीय क्षेत्र पर लागू होते हैं। किन्तु राष्ट्रपति निदेशित कर सकते हैं कि ये प्रावधान ऐसे अपवादों तथा संशोधनों के साथ भी संघीय क्षेत्रों पर लागू किए जाएंगे, जैसा कि वे विनिर्दिष्ट करें।

केंद्रीय शासित राज्यों पर लागू—भारत का राष्ट्रपति इस अधिनियम के उपबंधों को किसी भी केंद्रशासित क्षेत्र में लागू करने के संबंध में निर्देश दे सकता है, सिवाए कुछ छूटों और परिवर्तनों के जिन्हें वे विशिष्टत: बताए।

छूट प्राप्त क्षेत्र—यह अधिनियम राज्यों के अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। यह अधिनियम प. बंगाल की दार्जिलिंग गोरखा हिल परिषद की शक्तियों और कार्यवाही को प्रभावित नहीं करता। तथापि संसद इस भाग के प्रावधानों को अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातीय क्षेत्रों तक ऐसे अपवादों एवं संशोधनों के साथ विस्तारित कर सकती है जैसा कि वह विनिर्दिष्ट करें।

जिला योजना समिति—प्रत्येक राज्य जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन करेगा जो जिले की पंचायतों एवं नगरपालिकाओं द्वारा तैयार योजना को संगठित करेगी और जिला स्तर पर एक विकास योजना का प्रारूप तैयार करेगी। राज्य विधानमंडल इस संबंध में निम्न उपबंध बना सकता है—

1. इस तरह की समितियों की संरचना,
2. इन समितियों के सदस्यों के निर्वाचन का तरीका,
3. इन समितियों की जिला योजना के संबंध में कार्य,
4. इन समितियों के अध्यक्ष के निर्वाचन का ढंग।

इस अधिनियम के अनुसार जिला योजना समिति के 4/5 भाग सदस्य जिला पंचायत और नगरपालिका के निर्वाचित सदस्य द्वारा स्वयं में से चुने जाएंगे। समिति के इन सदस्यों की संख्या जिले की ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या के अनुपात में होनी चाहिए।
इस प्रकार की समितियों का अध्यक्ष, विकास योजनाओं को राज्य सरकार को प्रेषित करेगा।
प्रारूप विकास आयोजना को तैयार करते समय जिला आयोजना समिति निम्नलिखित को ध्यान में रखेगी—

(a) इसके संबंध में—
   (i) पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के बीच साझे हितों के मामले, जैसे—जल तथा अन्य भौतिक तथा प्राकृतिक संसाधनों की हिस्सेदारी, आधारभूत संरचना का समन्वित विकास तथा पर्यावरण संरक्षण।
   (ii) वित्तीय अथवा अन्य प्रकार के उपलब्ध संसाधनों का परिमाण।
(b) ऐसी संस्थाओं एवं सगठनों से परामर्श लेगी जैसा कि राज्यपाल निर्दिष्ट करें।

महानगरीय योजना समिति—प्रत्येक महानगर क्षेत्र में विकास योजना के प्रारूप को तैयार करने हेतु एक महानगरीय योजना समिति होगी। राज्य विधानमंडल इस संबंध में निम्न उपबंध बना सकता है—

1. इस तरह की समितियों की संरचना,
2. इन समिति के सदस्यों के निर्वाचन का तरीका,
3. केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा अन्य संस्थाओं का इन समितियों में प्रतिनिधित्व,
4. महानगरीय क्षेत्रों के लिए योजनाओं तथा समन्वयता के संबंध में इन समितियों के कार्य,
5. इन समितियों में अध्यक्ष के चुनाव का ढंग।

इस अधिनियम के अंतर्गत महानगरीय योजना समिति के 2/3 सदस्य महानगर क्षेत्र में नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों एवं पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा स्वयं में से चुने जाएंगे। समिति के इन सदस्यों की संख्या उस महानगरीय क्षेत्र में नगरपालिकाओं एवं पंचायतों की जनसंख्या के अनुपात में समानुपाती होनी चाहिये।
इस तरह की समितियों का अध्यक्ष, विकास योजना राज्य सरकार को भेजेगा।
प्रारूप विकास योजना तैयार करते समय महानगरीय आयोजना समिति निम्नलिखित का ध्यान रखेगी—

(a) इसके संबंध में—
   (i) महानगरीय क्षेत्र में नगरपालिकाओं एवं पंचायतों द्वारा तैयार योजनाओं का।

TOUCH 'n' PASS

(ii) नगरपालिकाओं एवं पंचायतों के बीच साझे हितों में मामले जैसे—समन्वित आयोजना, जल तथा अन्य भौतिक एवं प्राकृतिक संसाधनों की हिस्सेदारी, आधारभूत सरंचना का समन्वित विकास एवं पर्यावरण संरक्षण।

(iii) भारत सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य एवं प्राथमिकताएँ।

(iv) महानगरीय क्षेत्र में भारत सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा किए जाने वाले निवेश का परिमाण एवं प्रकृति तथा उपलब्ध वित्तीय एवं अन्य संसाधन।

(b) ऐसी संस्थाओं एवं सगठनों से परामर्श प्राप्त करेगी जैसाकि राज्यपाल निर्दिष्ट करें।

वर्तमान विधियों एवं नगरपालिकाओं की निरंतरता—नगरपालिकाओं से संबंधित सभी विधियाँ इस अधिनियम के जारी होने के एक वर्ष बाद तक प्रभावी रहेंगी। दूसरे शब्दों में राज्यों को इस अधिनियम पर आधारित नगरपालिकाओं के नए तंत्र को 1 जून, 1993 से अधिकतम एक वर्ष की अवधि के भीतर अपनाना होगा। यद्यपि इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व अस्तित्व में सभी नगरपालिकाएँ जारी रहेंगी बशर्ते कि राज्य विधानमण्डल उन्हें विघटित न करे।

निर्वाचन सम्बन्धी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक—यह अधिनियम नगरपालिकाओं के चुनाव संबंधी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। यह घोषित करता है कि चुनाव क्षेत्र और इन चुनाव क्षेत्र में सीटों के विभाजन संबंधी मुद्दों की चुनौती को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता। फिर भी राज्य विधानमंडल द्वारा सुझाए तरीकों एवं अधिकारियों को दी गई अर्जी को छोड़कर किसी भी क्षेत्र में चुनाव न होने की स्थिति में न्यायालय में चुनौती पेश नहीं कर सकता है।

12वीं अनुसूची—इसमें नगरपालिकाओं के कार्य क्षेत्र के साथ 18 क्रियाशील विषय-वस्तु समाहित हैं—

1. नगरीय योजना जिसमें नगर की योजना भी है।
2. भूमि उपयोग का विनियमन और भवनों का निर्माण।
3. आर्थिक एवं सामाजिक विकास योजना।
4. सड़कें एवं पुल।
5. घरेलू, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जल प्रदाय।
6. लोक स्वास्थ्य स्वच्छता, सफाई और कूड़ा करकट प्रबंधन।
7. अग्निशमन सेवाएँ।
8. नगर वानिकी, पर्यावरण सरंक्षण एवं पारिस्थितिकी आयामों की अभिवृद्धि।
9. समाज के कमजोर वर्गों के हितों का संरक्षण, जिनमें मानसिक रोगी व विकलांग शामिल हैं।
10. गंदी-बहती सुधार और प्रोन्नयन।
11. नगरीय निर्धनता उन्मूलन।
12. नगरीय सुख-सुविधाओं और सुविधाओं, जैसे—पार्क, उद्यान, खेल के मैदानों की व्यवस्था।
13. सांस्कृतिक, शैक्षिक व सौंदर्य पक्ष आयामों की अभिवृद्धि।
14. शव गाड़ना तथा शवदाह, दाहक्रिया व श्मशान और विद्युत शवदाह गृह।
15. कांजी हाउस: पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण।
16. जन्म व मृत्यु से संबंधित महत्त्वपूर्ण सांख्यिकी।
17. जन-सुविधाएँ जिनमें मार्गों पर विद्युत व्यवस्था, पार्किंग स्थल, बस स्टैंड तथा जन सुविधाएँ सम्मिलित हैं।
18. वधशालाओं और चर्म शोधनशालाओं का विनियमन।

प्र.2. शहरी शासनों के प्रकारों का वर्णन विस्तार से कीजिए।
Describe in detail the types of urban governments.

उत्तर

शहरी शासनों के प्रकार
(Types of urban Governments)

भारत में निम्नलिखित आठ प्रकार के स्थानीय निकाय नगर क्षेत्रों के प्रकाशन के लिए सृजित किए गए हैं—

- नगर निगम
- नगरपालिका

TOUCH 'n PASS

- ♦ अधिसूचित क्षेत्र समिति
- ♦ नगरीय क्षेत्र समिति
- ♦ छावनी बोर्ड
- ♦ टाऊनशिप
- ♦ बन्दरगाह न्याय
- ♦ विशेष उद्देश्य ऐजेन्सी

1. **नगर निगम**—नगर निगम का निर्माण बड़े शहरों, जैसे—दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, हैदराबाद, बंगलुरु तथा अन्य शहरों के लिए है। यह संबंधित राज्य विधानमंडल की विधि द्वारा राज्यों में स्थापित हुईं तथा भारत की संसद के अधिनियम द्वारा केंद्रशासित क्षेत्र में, राज्य के सभी नगर निगमों के लिए एक समान अधिनियम हो सकता है या प्रत्येक नगर निगम के लिए पृथक् अधिनियम भी हो सकता है।
   नगर निगम में तीन प्राधिकरण हैं, जिनमें परिषद, स्थायी समिति तथा आयुक्त आते हैं।
   परिषद निगम की विचारात्मक एवं विधायी शाखा है। इसमें जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित पार्षद होता हैं तथा कुछ नामित व्यक्ति भी होते हैं जिनका नगर प्रशासन में ऊँचा ज्ञान तथा अनुभव होता है। संक्षेप में, परिषद की संरचना अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं का आरक्षण सहित 74वें संविधान अधिनियम द्वारा शासित होती है।
   परिषद का प्रमुख महापौर (मेयर) होता है। उसकी सहायता के लिए उप-महापौर (डिप्टी मेयर) होता है। ज्यादातर राज्यों में उसका चुनाव एक साल के नवीकरणीय कार्यकाल के लिए होता है। वास्तव में वह एक अलंकारिक व्यक्ति होता है तथा निगम का औपचारिक प्रधान होता है। उसका प्रमुख कार्य परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
   स्थायी समिति परिषद् के कार्य को सुगम बनाने के लिए गठित की जाती है, जो कि आकार में बहुत बड़ी है। वह लोक कार्य, शिक्षा, स्वास्थ्य कर निर्धारण, वित्त व अन्य को देखती है। वह अपने क्षेत्रों में निर्णय लेती है।
   नगर निगम आयुक्त परिषद और स्थायी समिति द्वारा लिए निर्णयों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है अत: वह नगरपालिका का मुख्य कार्यकारी अधिकारी है। वह राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और साधारणत: आई.ए.एस. समूह का एक सदस्य होता है।
2. **नगरपालिका**—नगरपालिकाएँ कस्बों और छोटे शहरों के प्रशासन के लिए स्थापित की जाती हैं। निगमों की तरह, यह भी राज्य में राज्य विधानमंडल से संबंधित अधिनियम द्वारा गठित की गई हैं और केंद्रशासित राज्यों में भारत की संसद के द्वारा गठित की गई हैं। यह अन्य नामों, जैसे-नगरपालिका परिषद, नगरपालिका समिति, नगरपालिका बोर्ड, उपनगरीय नगरपालिका, शहरी नगरपालिका तथा अन्य से भी जानी जाती हैं।
   नगर निगम की तरह, नगरपालिका के पास भी परिषद, स्थायी समिति तथा मुख्य कार्यकारी अधिकारी नामक अधिकार क्षेत्र आते हैं।
   परिषद निगम की वैचारिक व विधायी शाखा है। इसमें लोगों द्वारा सीधे निर्वाचित (काउंसलर) शामिल है।
   परिषद का प्रधान अध्यक्ष होता है। उपाध्यक्ष उसका सलाहकार है। वह परिषद की सभा की अध्यक्षता करता है। नगर निगम के महापौर के विपरीत नगर प्रशासन में उसकी महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख भूमिका होती है। परिषद की बैठकों की अध्यक्षता के अलावा यह कार्यकारी शक्तियों का भी उपयोग करना है।
   स्थायी समिति परिषद के कार्य को सुगम बनाने के लिए गठित की जाती है। वह लोक कार्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, कर निर्धारण, वित्त तथा अन्य को देखती है।
   मुख्य कार्यकारी अधिकारी नगरपालिका के दैनिक प्रशासन का जिम्मेदार होता है। वह राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है।
3. **अधिसूचित क्षेत्र समिति**—अधिसूचित क्षेत्र समिति का गठन दो प्रकार के क्षेत्र के प्रशासन के लिए किया जाता है-औद्योगीकरण के कारण विकासशील कस्बा और वह कस्बा जिसने अभी तक नगरपालिका के गठन की आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की हों लेकिन राज्य सरकार द्वारा वह महत्त्वपूर्ण माना जाए। चूँकि इसे सरकारी राजपत्र में प्रकाशित कर अधिसूचित किया जाता है, इसलिए इसे अधिसूचित क्षेत्र समिति के रूप में जाना जाता है। यद्यपि यह राज्य नगरपालिका अधिनियम के ढांचे के अंतर्गत कार्य करता है। अधिनियम के केवल वहीं प्रावधान इसमें लागू होते हैं जिन्हें सरकारी

TOUCH 'n' PASS

राजपत्र में अधिसूचित किया गया है। इसे किसी अन्य अधिनियम के तहत शक्ति प्रयोग के लिए भी उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। इसकी शक्तियाँ लगभग नगरपालिका की शक्तियों के समान हैं। यह पूरी तरह नामित इकाई है, जिसमें राज्य सरकार द्वारा मनोनीत अध्यक्ष के साथ अधिसूचित क्षेत्र समिति के सदस्य हैं। अत: न तो यह निर्वाचित इकाई है और न ही संविधिक निकाय है।

4. **नगर क्षेत्रीय समिति**—नगर क्षेत्रीय समिति छोटे कस्बों में प्रशासन के लिए गठित की जाती है। यह एक उपनगरपालिका आधिकारिक इकाई है और इसे सीमित नागरिक सेवाएं, जैसे—जल निकासी,सड़कें, मार्गों में प्रकाश व्यवस्था और संरक्षणता की जिम्मेदारी दी जाती है। यह राज्य विधानमंडल के एक अलग अधिनियम द्वारा गठित किया जाता है। इसका गठन, कार्य और अन्य मामले अधिनियम द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। इसे पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य सरकार द्वारा निर्वाचित या नामित किया जा सकता है।
5. **छावनी परिषद**—छावनी क्षेत्र में सिविल जनसंख्या के प्रशासन के लिए छावनी परिषद की स्थापना की जाती है। इसे 2006 के छावनी अधिनियम के उपबंधों के तहत गठित किया गया है, यह विधान केन्द्र सरकार द्वारा निर्मित किया गया है। यह केंद्रीय सरकार के रक्षा मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कार्य करता है। अत: ऊपर दी गई स्थानीय शहरी इकाइयों के विपरीत जो कि राज्य द्वारा प्रशासित और गठित की गई हैं, छावनी परिषद केंद्र सरकार द्वारा गठित और प्रशासित की जाती है।

   2006 का छावनी अधिनियम इस आशय से अधिनियमित किया गया था कि छावनी प्रशासन से संबंधित नियमों को संशोधित कर अधिक लोकतांत्रिक बनाया जा सके तथा छावनी क्षेत्र में विकासात्मक गतिविधियों के लिए वित्तीय आधार को और उन्नत किया जा सके। इस अधिनियम द्वारा छावनी अधिनियम 1924 को निरस्त कर दिया गया।

   वर्तमान में (2019) देश भर में 62 छावनी बोर्ड हैं। उन्हें चार कोटियों में नागरिक जनसंख्या के आधार पर बांटा गया है, जो कि निम्न तालिका से स्पष्ट है।

तालिका : छावनी बोर्डों का वर्गीकरण
(Classification of Cantonment Boards)

कोटि	नागरिक जनसंख्या
1	50,000 के ऊपर
2	10,000 से 50,000
3	2,500 से 10,000
4	2,500 से कम

एक छावनी परिषद में आंशिक रूप से निर्वाचित या नामित सदस्य शामिल होते हैं। निर्वाचित सदस्य 3 वर्ष की अवधि के लिए, जबकि नामित सदस्य (पदेन सदस्य) उस स्थान पर लंबे समय तक रहते हैं। सेना अधिकारी जिसके प्रभाव में वह स्टेशन हो, परिषद का अध्यक्ष होता है और सभा की अध्यक्षता करता है। परिषद के उपाध्यक्ष का चुनाव उन्हीं में से निर्वाचित सदस्यों द्वारा 3 वर्ष की अवधि के लिए होता है।

पहली कोटि के छावनी बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होते हैं—

(i) केन्द्र का नेतृत्व करने वाला सैन्य अधिकारी
(ii) छावनी में कार्यरत एक कार्यपालिक अभियंता
(iii) छावनी में कार्यरत एक स्वास्थ्य अधिकारी
(iv) जिलाधिकारी द्वारा नामित एक प्रथम श्रेणी दंडाधिकारी
(v) केन्द्र का नेतृत्व करने वाले सैन्य अधिकारी द्वारा नामित तीन सैन्य अधिकारी
(vi) छावनी क्षेत्र के लोगों द्वारा निर्वाचित आठ सदस्य
(vii) छावनी बोर्ड का मुख्य कार्यकारी अधिकारी।

छावनी परिषद द्वारा किए गए कार्य नगरपालिका के समान होते हैं। यह अनिवार्य कार्यों एवं वैचारिक कार्यों में वैधानिक रूप से श्रेणीबद्ध है। आय के साधनों में दोनों, कर एवं गैर-कर राजस्व शामिल हैं।

TOUCH 'n' PASS

छावनी परिषद के कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा होती है। यह परिषद और इसकी समिति के सारे प्रस्तावों एवं निर्णयों को लागू करता है और इस प्रयोजन हेतु गठित केन्द्रीय कैडर से संबद्ध होता है।

6. **नगरीय क्षेत्र**—इस तरह का शहरी प्रशासन वृहत सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा स्थापित किया जाता है। जो उद्योगों के निकट बनी आवासीय कॉलोनियों में रहने वाले अपने कर्मचारियों को सुविधाएँ प्रदान करती है। यह उपक्रम नगर के प्रशासन की देखरेख के लिए एक नगर प्रशासक नियुक्त करता है। उसे कुछ इंजीनियर एवं अन्य तकनीकी और गैर-तकनीकी कर्मचारियों की सहायता प्राप्त होती है। अत: शहरी प्रशासन के नगरीय रूप में कोई निर्वाचित सदस्य नहीं होते हैं। वास्तव में, यह उपक्रमों की नौकरशाही संरचना का विस्तार है।
7. **न्यास पत्तन**—न्यास पत्तन की स्थापना बंदरगाह क्षेत्रों जैसे-मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और अन्य में मुख्य रूप से दो उद्देश्यों के लिए की जाती है—

(अ) बंदरगाहों की सुरक्षा व व्यवस्था।

(ब) नागरिक सुविधाएँ प्रदान करना।

न्यास पत्तन का गठन संसद के एक अधिनियम द्वारा किया गया है। इसमें निर्वाचित और गैर-निर्वाचित दोनों प्रकार के सदस्य सम्मिलित हैं। इसका एक आधिकारिक अध्यक्ष होता है। इसके नागरिक कार्य काफी हद तक नगरपालिका की तरह होते हैं।

8. **विशेष उद्देश्य हेतु अभिकरण**—इन 7 क्षेत्रीय आधार वाली शहरी इकाइयों (या बहुउद्देशीय इकाइयां) के साथ, राज्यों ने विशेष कार्यों के नियंत्रण हेतु विशेष प्रकार के अभिकरणयों का गठन किया है जो नगर निगमों या नगरपालिकाओं या अन्य स्थानीय शासनों के समूह से संबंधित हों। दूसरे शब्दों में, यह कार्यक्रम पर आधारित हैं न कि क्षेत्र पर। इन्हें एकउद्देशीय', 'व्यापक उद्देशीय' या विशेष उद्देशीय इकाई' या 'स्थानीय कार्यकारी ईकाई' के रूप में जाना जाता है। कुछ इस तरह की इकाइयां इस प्रकार हैं—

(i) नगरीय सुधार न्यास
(ii) शहरी सुधार प्राधिकरण
(iii) जलापूर्ति एवं मल निकासी बोर्ड
(iv) आवासीय बोर्ड
(v) प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड
(vi) विद्युत आपूर्ति बोर्ड
(vii) शहरी यातायात बोर्ड

यह कार्यकारी स्थानीय इकाईया, सांविधिक इकाइयों के रूप में राज्य विधानमंडल या विभागों के अधिनियम द्वारा स्थापित की जाती हैं। यह स्वायत्त इकाई के रूप में कार्य करती हैं और स्थानीय शहरी प्रशासन द्वारा सौंपे गए कार्यों को स्वतंत्र रूप से करती हैं अर्थात् नगर निगम, नगरपालिकाएँ आदि। अत: ये स्थानीय नगरपालिका इकाइयों के अधीनस्थ नहीं हैं।

प्र.3. पंचायती राज के विकास का वर्णन कीजिए।
Describe the development of panchayati raj.

उत्तर

पंचायती राज का विकास
(Development of Panchayati Raj)

पंचायती राज के विकास का क्रम निम्न प्रकार है—

बलवंत राय मेहता समिति
(Balwant Rai Mehta Committee)

जनवरी 1957 में भारत सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा (1953) द्वारा किए गए कार्यों की जांच और उनके बेहतर ढंग से कार्य करने के लिए उपाय सुझाने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति के अध्यक्ष बलवंत राय मेहता थे। समिति ने नवंबर 1957 को अपनी रिपोर्ट सौंपी और 'लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण (स्वायत्तता)' की योजना

TOUCH 'n PASS

की सिफारिश की, जो कि अंतिम रूप से पंचायती राज के रूप में जाना गया। समिति द्वारा दी गई विशिष्ट सिफारिशें निम्नलिखित हैं—

1. तीन स्तरीय पंचायती राज पद्धति की स्थापना–गाँव स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। ये तीनों स्तर आपस में अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा गठन जुड़े होने चाहिये।
2. ग्राम पंचायत की स्थापना प्रत्यक्ष रूप से चुने प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिए, जबकि पंचायत समिति और जिला परिषद का गठन अप्रत्यक्ष रूप से चुने सदस्यों द्वारा होनी चाहिए।
3. सभी योजना और विकास के कार्य इन निकायों को सौंपे जाने चाहिए।
4. पंचायत समिति को कार्यकारी निकाय तथा जिला परिषद को सलाहकारी, समन्वयकारी और पर्यवेक्षण निकाय होना चाहिए।
5. जिला परिषद का अध्यक्ष, जिलाधिकारी होना चाहिए।
6. इन लोकतांत्रिक निकायों में शक्ति तथा उत्तरदायित्व का वास्तविक स्थानांतरण होना चाहिए।
7. इन निकायों को पर्याप्त स्रोत मिलने चाहिए ताकि ये अपने कार्यों और जिम्मेदारियों को संपादित करने में समर्थ हो सकें।
8. भविष्य में अधिकारों के और अधिक प्रत्यायन के लिए एक पद्धति विकसित की जानी चाहिए।

समिति की इन सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा जनवरी 1958 में स्वीकार किया गया। परिषद ने किसी विशिष्ट प्रणाली या नमूने पर जोर नहीं दिया और यह राज्यों पर छोड़ दिया ताकि वे अपनी स्थानीय स्थिति के अनुसार इन नमूनों को विकसित करें। किंतु बुनियादी सिद्धांत और मुख्य आधारभूत विशेषताएँ पूरे देश में समान होनी चाहिए।

राजस्थान देश का पहला राज्य था, जहाँ पंचायती राज की स्थापना हुई। इस योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री प. जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया। इसके बाद आंध्र प्रदेश ने इस योजना को 1959 में लागू किया। इसके बाद अधिकांश राज्यों ने इस योजना को प्रारंभ किया।

यद्यपि 1960 दशक के मध्य तक बहुत-से राज्यों ने पंचायती राज संस्थाएं स्थापित की। फिर भी राज्यों की इन संस्थाओं में स्तरों की संख्या, समिति और परिषद की सापेक्ष स्थिति, उनका कार्यकाल, संगठन, कार्य, राजस्व और अन्य तरीकों में अंतर था। उदाहरण के लिए राजस्थान ने त्रिस्तरीय पद्धति अपनाई जबकि तमिलनाडु ने द्विस्तरीय पद्धति अपनाई। पश्चिमी बंगाल ने चार स्तरीय पद्धति अपनाई। इसके अलावा, राजस्थान, आंध्र-प्रदेश पद्धति में पंचायत समिति मजबूत थी क्योंकि नियोजन और विकास की इकाई ब्लॉक थी, जबकि महाराष्ट्र, गुजरात पद्धति में, जिला परिषद शक्तिशाली थी क्योंकि योजना और विकास की इकाई जिला थी। कुछ राज्यों ने न्याय पंचायत की भी स्थापना की, जो छोटे दीवानी या आपराधिक मामलों के लिए थी।

अध्ययन दल तथा समितियाँ
(Study Groups and Committees)

सन् 1960 से पंचायती राज व्यवस्था की कार्य प्रणाली के विविध पक्षों का अध्ययन करने के लिए अनेक अध्ययन दल, समितियाँ तथा कार्यदल नियुक्त किए जाते रहे हैं। इसका विवरण तालिका 38.1 में दिया जा रहा है।

अशोक मेहता समिति (Ashok Mehta Committee)

दिसंबर 1977 में, जनता पार्टी की सरकार ने अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायती राज संस्थाओं पर एक समिति को गठन किया। इसने अगस्त 1978 में अपनी रिपोर्ट सौंपी और देश में पतनोन्मुख पंचायती राज पद्धति को पुनर्जीवित और मजबूत करने हेतु 132 सिफारिशें कीं। इसकी मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं—

1. त्रिस्तरीय पंचायती राज पद्धति को द्विस्तरीय पद्धति में बदलना चाहिए। जिला परिषद जिला स्तर पर, और उससे नीचे मंडल पंचायत में 15,000 से 20,000 जनसंख्या वाले गाँवों के समूह होने चाहिए।
2. राज्य स्तर से नीचे लोक निरीक्षण में विकेंद्रीकरण के लिए जिला ही प्रथम बिंदु होना चाहिए।
3. जिला परिषद कार्यकारी निकाय होना चाहिए और वह राज्य स्तर पर योजना और विकास के लिए जिम्मेदार बनाया जाए।
4. पंचायती चुनावों में सभी स्तर पर राजनीतिक पार्टियों की आधिकारिक भागीदारी हो।
5. अपने आर्थिक स्रोतों के लिए पंचायती राज संस्थाओं के पास कराधान की अनिवार्य शक्ति हो।

TOUCH 'n PASS

6. जिला स्तर के अभिकरण और विधायिकों से बनी समिति द्वारा संस्था का नियमित सामाजिक लेखा परीक्षण होना चाहिए ताकि यह ज्ञात हो सके कि सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सुभेद्य समूहों के लिए आवंटित राशि उन तक पहुंच रही है अथवा नहीं।
7. राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं का अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। आवश्यक अधिक्रमण करने की दशा में अधिक्रमण के छह महीने के भीतर चुनाव हो जाने चाहिए।
8. 'न्याय पंचायत' को विकास पंचायत से अलग निकाय के रूप में रखा जाना चाहिए। एक योग्य न्यायाधीश द्वारा इनका सभापतित्व किया जाना चाहिए।
9. राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी द्वारा मुख्य चुनाव आयुक्त के परामर्श से पंचायती राज चुनाव कराए जाने चाहिए।
10. विकास के कार्य जिला परिषद को स्थानांतरित होने चाहिए और सभी विकास कर्मचारी इसके नियंत्रण और देखरेख में होने चाहिए।
11. पंचायती राज के समर्थन में लोगों को प्रेरित करने में स्वैच्छिक संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए।
12. पंचायती राज संस्थाओं के मामलों की देखरेख के लिए राज्य मंत्रिपरिषद में एक मंत्री की नियुक्ति होनी चाहिए।
13. उनकी जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए स्थान आरक्षित होना चाहिए।
14. पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी जानी चाहिए। इससे उन्हें उपयुक्त हैसियत (पवित्रता एवं महत्ता) के साथ ही सतत् सक्रियता का आश्वासन मिलेगा।

समिति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व, जनता पार्टी सरकार के भंग होने के कारण, केंद्रीय स्तर पर अशोक मेहता समिति की सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी। फिर भी तीन राज्य कर्नाटक, प० बंगाल और आंध्र प्रदेश ने अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखकर पंचायती राज संस्थाओं के पुनरुद्धार के लिए कुछ कदम उठाए।

वी.के. राव समिति (V.K. Raw Committee)

ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम की समीक्षा करने के लिए मौजूदा प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लिए योजना आयोग द्वारा 1985 में जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि विकास प्रक्रिया दफ्तरशाही युक्त होकर पंचायत राज से विच्छेदित हो गई है। विकास प्रशासन के लोकतंत्रीकरण के विपरीत उसके नौकरशाहीकरण की इस प्रक्रिया के कारण पंचायती राज संस्थाएं कमजोर हो गईं और परिणामस्वरूप इसे 'बिना जड़ की घास' कहा गया। अत: समिति ने पंचायती राज पद्धति को मजबूत और पुनर्जीवित करने हेतु विभिन्न सिफारिशें की, जो इस प्रकार थीं—

1. जिला स्तरीय निकाय, अर्थात् जिला परिषद को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये। यह कहा गया कि "नियोजन एवं विकास की उचित इकाई जिला है तथा जिला परिषद को उन सभी विकास कार्यक्रमों के प्रबंधन के लिए मुख्य निकाय बनाया जाना चाहिये, जो उस स्तर पर संचालित किए जा सकते हैं।"
2. जिला एवं स्थानीय स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं को विकास कार्यों के नियोजन, क्रियान्वयन एवं निगरानी में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जानी चाहिये।
3. प्रभावी जिला नियोजन विकेंद्रीकरण के लिये राज्य स्तर के कुछ नियोजन कार्यों को जिला स्तर पर हस्तांतरित किया जाना चाहिये।
4. एक जिला विकास आयुक्त के पद का सृजन किया जाना चाहिये। इसे जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करना चाहिए तथा उसे जिला स्तर के सभी विकास विभागों का प्रभारी होना चाहिये।
5. पंचायती राज संस्थानों में नियमित निर्वाचन होने चाहिये। यह पाया गया कि 11 राज्यों में एक अथवा अधिक स्तरों के लिए ये चुनाव समय से संपन्न नहीं कराये गए हैं।

इस प्रकार समिति ने विकेन्द्रित क्षेत्रीय प्रशासन की अपनी योजना में पंचायती राज को स्थानीय आयोजना एवं विकास में प्रमुख भूमिका प्रदान की। यहां इसी बिन्दु पर जी.वी.के. राव समिति रिपोर्ट 1986 प्रखंड स्तरीय आयोजना पर दांतेवाला समिति, 1978 तथा जिला आयोजना पर हनुमंत राव समिति रिपोर्ट 1984 से अलग है। दोनों समितियों में यह सुझाया गया था कि मूलभूत विकेन्द्रित आयोजना का कार्य जिला स्तर पर सम्पन्न किया जाना चाहिए। हनुमंत राव समिति ने जिला अधिकारी अथवा किसी मंत्री के अधीन अलग जिला योजना निकायों की वकालत की थी। इन दोनों संदर्शों (मॉडल) में जिलाधिकारी की विकेन्द्रित आयोजना में महत्त्वपूर्ण भूमिका बनती है। हालांकि समिति का कहना था कि विकेन्द्रित आयोजना कि इस प्रक्रिया में पंचायती राज संस्थाओं

TOUCH 'n' PASS

को भी जोड़ा जाए। समिति ने जिला स्तर पर सभी विकासात्मक एवं आयोजना गतिविधियों के लिए जिलाधिकारी को समन्वयक बनाने की अनुशंसा भी। इस प्रकार हनुमंत राव समिति बलवंत राय मेहता समिति, प्रशासनिक सुधार आयोग, अशोक मेहता समिति तथा अंत में जी.वी. में राव समिति से भिन्न अनुशंसाएं भी हैं, जिन्होंने एक जिलाधिकारी की विकासात्मक भूमिका को सीमित करने की अनुशंसा की तथा विकासात्मक प्रशासन में पंचायती राज को महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की।

एल.एम. सिंघवी समिति (L.M. Singhvi Committee)

1986 में राजीव गांधी सरकार ने 'लोकतंत्र व विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं का पुनरुद्धार' पर एक अवधारणा पत्र तैयार करने के लिए एक समिति का गठन एल.एम. सिंहवी की अध्यक्षता में किया। इसने निम्न सिफारिशें दी—

1. पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक रूप से मान्यता देने और उनके संरक्षण की आवश्यकता है। इस कार्य के लिये भारत के संविधान में एक नया अध्याय जोड़ा जाये। इससे उनकी पहचान और विश्वसनीयता अनुलंघनीय होने में महत्त्वपूर्ण मदद मिलेगी। इसने पंचायती राज निकास के नियमित स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के संवैधानिक उपबंध की सलाह भी दी।
2. गाँवों के समूह के लिए न्याय पंचायतों की स्थापना की जाये।
3. ग्राम पंचायतों को ज्यादा व्यवहार बनाने के लिए गाँवों का पुनर्गठन किया जाना। इसने ग्राम सभा की महत्ता पर भी जोर दिया तथा इसे प्रत्यक्ष लोकतंत्र की मूर्ति बताया।
4. गाँव की पंचायतों को ज्यादा आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिये।
5. पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव, उनके विघटन एवं उनके कार्यों से संबंधित जो भी विवाद उत्पन्न होते हैं, उनके निस्तारण के लिये न्यायिक अधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिये।

थुंगन समिति (Thungan Committee)

1988 में, संसद की सलाहकार समिति की एक उप-समिति पी.के. थुंगन की अध्यक्षता में राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे की जांच करने के उद्देश्य से गठित की गयी। इस समिति में पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए सुझाव दिया। इस समिति ने निम्न अनुशंसाएं की थीं—

1. पंचायती राज्य संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्राप्त होनी चाहिए।
2. गाँव प्रखंड तथा जिला स्तरों पर त्रि-स्तरीय पंचायती राज।
3. जिला परिषद को पंचायती राज व्यवस्था की धुरी होना चाहिए। इसे जिले में योजना निर्माण एवं विकास की ऐजेंसी के रूप में कार्य करना चाहिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं का पांच वर्ष का निश्चित कार्यकाल होना चाहिए।
5. एक संस्था के सुपर सत्र की अधिकतम अवधि छह माह होनी चाहिए।
6. राज्य स्तर पर योजना मंत्री की अध्यक्षता में एक योजना निर्माण तथा समन्वय समिति गठित होनी चाहिए।
7. पंचायती राज पर केंद्रित विषयों की एक विस्तृत सूची तैयार करनी चाहिए तथा उसे संविधान में समाहित करना चाहिए।
8. पंचायती राज के तीनों स्तरों पर जनसंख्या के हिसाब से आरक्षण होना चाहिए। महिलाओं के लिए भी आरक्षण होना चाहिए।
9. हर राज्य में एक राज्य वित्त आयोग का गठन होना चाहिए। यह आयोग पंचायती राज संस्थाओं को वित्त के वितरण के पात्रता-बिंदु तथा विधियाँ तय करेगा।
10. जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी पदाधिकारी जिले का कलक्टर होगा।

गाडगिल समिति (Gadgil Committe)

1988 में वी.एन. गाडगिल की अध्यक्षता में एक नीति एवं कार्यक्रम समिति का गठन कांग्रेस पार्टी ने किया था। इस समिति से इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कहा गया कि "पंचायती राज संस्थाओं को प्रभावकारी कैसे बनाया जा सकता है।" इस संदर्भ में समिति ने निम्न अनुशंसाएं (recommendations) की थीं—

1. पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाए।
2. गाँव, प्रखंड तथा जिला स्तर पर त्रि-स्तरीय पंचायती राज होना चाहिए।

TOUCH 'n PASS

3. पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल पांच वर्ष सुनिश्चित कर दिया जाए।
4. पंचायत के सभी तीन स्तरों के सदस्यों का सीधा निर्वाचन होना चाहिए।
5. अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण होना चाहिए।
6. पंचायती राज संस्थाओं की यह जिम्मेदारी होगी कि वे पंचायत क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए योजनाएं बनाएँगे तथा उन्हें कार्यान्वित करेंगे।
7. पंचायती राज संस्थाओं को कर (taxes) तथा (duties) लगाने, वसूलने तथा जमा करने का अधिकार होगा।
8. एक राज्य वित्त आयोग की स्थापना हो जो पंचायतों को वित्त का आवंटन करें।
9. एक राज्य चुनाव आयोग की स्थापना हो जो पंचायतों के चुनाव संपन्न करवाए।

गाडगिल समिति की ये अनुशंसाएं एक संशोधन विधेयक के निर्माण का आधार बनीं। इस विधेयक का लक्ष्य था—पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा तथा सुरक्षा देना।

संवैधानीकरण (Constitutionalization)

राजीव गांधी सरकार
(Rajiv Gandhi Government)

एल.एम. सिंघवी समिति के उपरान्त अनुशंसाओं की प्रतिक्रिया। राजीव गांधी सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं के संवैधानीकरण और उन्हें ज्यादा शक्तिशाली और व्यापक बनाने हेतु जुलाई 1989 में 64वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में पेश किया। यद्यपि अगस्त 1989 में लोकसभा ने यह विधेयक पारित किया, किंतु राज्यसभा द्वारा इसे पारित नहीं किया गया। इस विधेयक का विपक्ष द्वारा जोरदार विरोध किया गया क्योंकि इसके द्वारा संघीय व्यवस्था में केंद्र को मजबूत बनाने का प्रावधान था।

वी.पी. सिंह सरकार (V.P. Singh Government)

नवंबर 1989 में वी.पी. सिंह के प्रधानमंत्रित्व में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने कार्यालय संभाला और शीघ्र ही घोषणा की कि वे पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करेगी। जून 1992 में पंचायती राज संस्थाओं के मजबूत करने संबंधी मामलों पर विचार करने के लिए वी.पी. सिंह की अध्यक्षता में राज्यों के मुख्यमंत्रियों का 2 दिन का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में एक नए संविधान संशोधन विधेयक को पेश करने के प्रस्ताव को मंजूरी दी गई। परिणामस्वरूप, सितंबर 1990 में लोकसभा में एक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया गया। लेकिन सरकार के गिरने के साथ ही यह विधेयक भी समाप्त हो गया।

नरसिम्हा राव सरकार (Narasimha Rao Government)

पी.वी. नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व में कांग्रेस सरकार ने एक बार फिर पंचायती राज के संवैधानिकरण के मामले पर विचार किया। इसने प्रारंभ के विवादस्पद प्रावधानों को हटाकर नया प्रस्ताव रखा और सितंबर 1991 को लोकसभा में एक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। अंतत: यह विधेयक 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के रूप में पारित हुआ और 24 अप्रैल, 1993 को प्रभाव में आया।

प्र.4. 1992 के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम का वर्णन विस्तार से कीजिए।
Explain in detail the 73rd constitutional amendment act of 1992.

उत्तर

1992 का 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम
(73rd Constitutional Amendment Act of 1992)

इस अधिनियम ने भारत के संविधान में एक नया खंड-IX सम्मिलित किया। इसे 'पंचायतें' नाम से इस भाग में उल्लिखित किया गया और अनुच्छेद 243 से 243 'ण' के प्रावधान सम्मिलित किए गए। इस अधिनियम ने संविधान में एक नई 11वीं सूची भी जोड़ी। इस सूची में पंचायतों की 29 कार्यकारी विषय-वस्तुएं हैं। यह अनुच्छेद 243-जी से संबंधित है।

इस अधिनियम ने संविधान के 40वें अनुच्छेद को एक व्यावहारिक रूप दिया, जिसमें कहा गया है कि, 'ग्राम पंचायतों को गठित करने के लिए राज्य कदम उठाएगा और उन्हें उन आवश्यक शक्तियों और अधिकारों से विभूषित करेगा जिससे कि वे स्वशासन की इकाई की तरह कार्य करने में सक्षम हो। यह अनुच्छेद राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों का एक हिस्सा है।'

TOUCH 'n PASS

इस अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक दर्जा दिया और इसे संविधान के अंतर्गत बाद योग्य हिस्से के अधीन लाया। दूसरे शब्दों में इस अधिनियम के उपबंध के अनुसार नई पंचायती राज पद्धति को अपनाने के लिए राज्य सरकारें संवैधानिक रूप से बाध्य हैं। परिणामस्वरूप, पंचायत का गठन और नियमित अंतराल पर चुनाव राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर नहीं हैं।
इस अधिनियम के उपबंधों को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है—अनिवार्य और स्वैच्छिक। अधिनियम के अनिवार्य हिस्से को पंचायती राज व्यवस्था के गठन के लिए राज्य के कानून में शामिल किया जाना आवश्यक है। दूसरे भाग के स्वैच्छिक उपबंधों को राज्यों के स्व-विवेकानुसार सम्मिलित किया जा सकता है। अत: स्वैच्छिक प्रावधान राज्य को नई पंचायती राज पद्धति को अपनाते समय भौगोलिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक तथ्यों को ध्यान में रखकर अपनाने का अधिकार सुनिश्चित करता है।
यह अधिनियम देश में जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। यह प्रतिनिधित्व लोकतंत्र को 'भागीदारी लोकतंत्र' में बदलता है। यह देश में लोकतंत्र को जमीनी स्तर पर तैयार करने की एक क्रांतिकारी संकल्पना है।

प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics)

इस अधिनियम की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—
ग्राम सभा—यह अधिनियम पंचायती राज के ग्राम सभा का प्रावधान करता है। इस निकाय में गाँव स्तर पर गठित पंचायत क्षेत्र में निर्वाचक सूची में पंजीकृत व्यक्ति होते हैं। अत: यह पंचायत क्षेत्र में पंजीकृत मतदाताओं की एक ग्राम स्तरीय सभा है। यह उन शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे कार्य निष्पादित कर सकती है जो राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्धारित किए गए हैं।
त्रिस्तरीय प्रणाली—इस अधिनियम में सभी राज्यों के लिए त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रावधान किया गया है, अर्थात् ग्राम, माध्यमिक और जिला स्तर पर पंचायत। अत: यह अधिनियम पूरे देश में पंचायत राज की संरचना में समरूपता लाता है। फिर भी, ऐसा राज्य जिसकी जनसंख्या 20 लाख से ऊपर न हो, को माध्यमिक स्तर पर पंचायतें को गठन न करने की छूट देता है।
सदस्यों एवं अध्यक्ष का चुनाव—गाँव, माध्यमिक तथा जिला स्तर पर पंचायतों के सभी सदस्य लोगों द्वारा सीधे चुने जाएंगे। इसके अलावा, माध्यमिक एवं जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं में से अप्रत्यक्ष रूप से होगा, जबकि गाँव स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्धारित तरीके से किया जाएगा।
किसी पंचायत के अध्यक्ष (Chairperson) अथवा पंचायत के अन्य सदस्यों, जो कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित हुए हैं, को पंचायत की बैठकों में मत देने का अधिकार होगा।
सीटों का आरक्षण—यह अधिनियम प्रत्येक पंचायत में (सभी तीन स्तरों पर) अनुसूचित जाति एवं जनजाति को उनकी संख्या के कुल जनसंख्या के अनुपात में सीटों पर आरक्षण उपलब्ध कराता है। राज्य विधानमंडल गाँव या अन्य स्तर पर पंचायतों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए अध्यक्ष के पद के लिए आरक्षण भी प्रदान करेगा।
इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि आरक्षण के मसले पर महिलाओं के लिए उपलब्ध कुल सीटों की संख्या (इसमें वह संख्या भी शामिल है, जिसके तहत अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं को आरक्षण दिया जाता है) एक-तिहाई से कम न हो। इसके अतिरिक्त पंचायतों में अध्यक्ष व अन्य पदों के लिए हर स्तर पर महिलाओं के लिए आरक्षण एक-तिहाई से कम नहीं होगा।
यह अधिनियम विधानमंडल को इसके लिए भी अधिकृत करता है कि वह पंचायत अध्यक्ष के कार्यालय में पिछड़े वर्गों के लिए किसी भी स्तर पर आरक्षण की व्यवस्था करे।
अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए पंचायतों में सीटों का आरक्षण तथा अध्यक्ष के कार्यालय का आरक्षण अनुच्छेद 334 में विनिर्धारित समापन अवधि (जो कि वर्तमान में 2020 तक 70 वर्ष है) बीत चुकने के पश्चात् निष्प्रभावी हो जाएगा।
यह भी ध्यान में रखने की बात है कि पंचायतों में (अध्यक्ष एवं सदस्यों, दोनों के लिए) अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण का उक्त प्रावधान अरुणाचल प्रदेश राज्य पर लागू नहीं होता। ऐसा इस कारण कि यह राज्य पूरी तरह मूल निवासी जनजातियों से आबाद है और यहां कोई अनुसूचित जाति नहीं है। यह प्रावधान बाद में 83वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2000 द्वारा जोड़ा गया था।
पंचायतों का कार्यकाल—यह अधिनियम सभी स्तरों पर पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष के लिए निश्चित करता है। तथापि, समय पूरा होने से पूर्व भी उसे विघटित किया जा सकता है। इसके बाद पंचायत गठन के लिए नए चुनाव होंगे। (अ) इसकी 5 वर्ष की अवधि खत्म होने से पूर्व या (c) विघटित होने की दशा में इसके विघटित होने की तिथि से 6 माह खत्म होने की अवधि के अंदर।

परंतु जहाँ शेष अवधि (जिसमें भंग पंचायत काम करते रहती है) छह माह से कम है, वहां इस अवधि के लिए नई पंचायत का चुनाव आवश्यक नहीं होगा।

यह भी है कि एक भंग पंचायत के स्थान पर गठित पंचायत जो भंग पंचायत की शेष अवधि के लिए गठित की गई है। वह भंग पंचायत की शेष अवधि तक ही कार्यरत रहेगी। दूसरे शब्दों में, एक पंचायत जो समय-पूर्व भंग होने पर पुनर्गठित हुई है, वह पूरे पांच वर्ष की निर्धारित अवधि तक कार्यरत नहीं होती, बल्कि केवल बचे हुए समय के लिए ही कार्यरत होती है।

अनर्हताएँ—कोई भी व्यक्ति पंचायत का सदस्य नहीं बन पाएगा यदि वह निम्न प्रकार से अनर्ह होगा—

(अ) राज्य विधानमंडल के लिए निर्वाचित होने के उद्देश्य से संबंधित राज्य में उस समय प्रभावी कानून के अंतर्गत, अथवा

(ब) राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के अंतर्गत लेकिन किसी भी व्यक्ति को इस बात पर अयोग्य घोषित नहीं किया जाएगा कि वे 25 वर्ष से कम आयु का है, यदि वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका है। अयोग्यता संबंधित सभी प्रश्न, राज्य विधान द्वारा निर्धारित प्राधिकारी को संदर्भित किए जाएंगे।

राज्य निर्वाचन आयोग—चुनावी प्रक्रियाओं की तैयारी की देखरेख, निर्देशन, मतदाता सूची तैयार करने पर नियत्रंण और पंचायतों के सभी चुनावों को संपन्न कराने की शक्ति राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगी। इसमें राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य चुनाव आयुक्त सम्मिलित हैं। उसकी सेवा शर्तें और पदावधि भी राज्यपाल द्वारा निर्धारित की जाएंगी। इसे राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिए निर्धारित तरीके के अलावा अन्य किसी तरीके से नहीं हटाया जाएगा। उसकी नियुक्ति के बाद उसकी सेवा शर्तों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा जिससे उसका नुकसान हो।

पंचायतों के चुनाव संबंधित सभी मामलों पर राज्य विधान कोई भी उपबंध बना सकता है।

शक्तियाँ और कार्य—राज्य विधानमंडल पंचायतों को आवश्यकतानुसार ऐसी शक्तियाँ और अधिकार दे सकता है, जिससे कि वह स्वशासन संस्थाओं के रूप में कार्य करने में सक्षम हों। इस तरह की योजना में उपयुक्त स्तर पर पंचायतों के अंतर्गत शक्तियाँ और जिम्मेदारिया प्रत्यापित की जाएं जो निम्नलिखित से संबंधित हैं—

(अ) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को तैयार करने से।

(ब) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के सौंपे जाएं कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना, जिसमें 11वीं अनुसूची के 29 मामलों के सूत्र भी सम्मिलित हैं।

वित्त—राज्य विधानमंडल निम्न अधिकार रखता है—

(अ) पंचायत को उपयुक्त कर, चुंगी, शुल्क लगाने और उनके संग्रहण के लिए प्राधिकृत कर सकता है।

(ब) राज्य विधानमंडल राज्य सरकार द्वारा आरोपित और संगृहीत कर, चुंगी, मार्ग कर और शुल्क पंचायतों को सौंपे जा सकते हैं।

(स) राज्य की समेकित निधि से पंचायतों को अनुदान सहायता देने के लिए उपबंध करता है।

(द) निधियों के गठन का उपबंध करेगा, जिसमें पंचायतों को दिया गया सारा धन जमा होगा।

वित्त आयोग—राज्य का राज्यपाल प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्यपाल को निम्न सिफारिशें करेगा—

1. सिद्धांत जो नियंत्रित करेंगे—
   (अ) राज्य सरकार द्वारा लगाए गए कुल करों, चुंगी, मार्ग कर एवं एकत्रित शुल्कों का राज्य और पंचायतों का बंटवारा और सभी स्तरों पर पंचायतों के बीच शेयरों का आवंटन।
   (ब) करों, चुंगी, मार्ग कर और शुल्कों का निर्धारण, जो पंचायतों को सौंपे गए हैं।
   (स) राज्य की समेकित निधि कोष से पंचायतों को दी जाने वाली अनुदान सहायता।
2. पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक उपाय।
3. राज्यपाल द्वारा आयोग को सौंपा जाने वाला कोई भी मामला जो पंचायतों के मजबूत वित्त के लिए हो।

राज्य विधानमंडल आयोग की बनावट, इसके सदस्यों की आवश्यक अर्हता तथा उनके चुनने के तरीके को निर्धारित कर सकता है। राज्यपाल आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को की गई कार्यवाही रिपोर्ट के साथ राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

केंद्रीय वित्त आयोग भी राज्य में पंचायतों के पूरक स्रोतों में वृद्धि के लिए राज्य की समेकित विधि आवश्यक उपायों के बारे में सलाह देगा। (राज्य वित्त आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों के आधार पर)।

TOUCH 'n' PASS

लेखा परीक्षण—राज्य विधान मंडल पंचायतों के खातों (accounts) की देखरेख और उनके परीक्षण के लिए प्रावधान बना सकता है।

संघीय क्षेत्रों पर लागू होना—इस भाग के प्रावधान संघीय क्षेत्रों पर लागू होते हैं। लेकिन राष्ट्रपति निदेशित कर सकते हैं कि ये प्रावधान किन्हीं अपवादों तथा संशोधनों सहित किसी संघीय क्षेत्र पर लागू होंगे, जैसा कि वे निर्धारित करें।

छूट प्राप्त राज्य व क्षेत्र—यह कानून, नागालैंड, मेघालय, मिजोरम और कुछ अन्य विशेष क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। इन क्षेत्रों के अंतर्गत (अ) उन राज्यों के अनुसूचित आदिवासी और क्षेत्रों में (ब) मणिपुर के उन पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ जिला परिषद अस्तित्व में हो। (स) प. बंगाल को दार्जिलिंग जिला जहाँ पर दार्जिलिंग गोरखा हिल, परिषद अस्तित्व में है।

इस प्रावधान के अंतर्गत संसद ने 'पंचायतों' के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्र तक विस्तारित), अधिनियम, 1996, जो पेसा कानून (PESA Act), अथवा विस्तार कानून के नाम से जाना जाता है, को अधिनियमित किया।

हालांकि, संसद चाहे तो इस अधिनियम को ऐसे अपवादों और संशोधनों के साथ अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजाति क्षेत्रों में लागू कर सकती है, जो वह उचित समझे।

वर्तमान कानून की निरंतरता एवं पंचायतों का अस्तित्व—पंचायतों से संबंधित राज्य के सभी कानून प्रभावी रूप से इस अधिनियम के आरंभ होने से 1 वर्ष की अवधि खत्म होने तक लागू रहेंगे। दूसरे शब्दों में, कोई भी राज्य नए पंचायती राज कार्यक्रम को 24 अप्रैल, 1993 के बाद अधिकतम 1 वर्ष की अवधि के अंदर अपनाए जो कि इस अधिनियम के शुरुआत की तारीख है। फिर भी यह कानून लागू होने से पूर्व बनी पंचायत अपनी अवधि खत्म होने तक कार्यकाल पूरा कर सकती है यदि वह राज्य विधान उससे पूर्व शीघ्र ही विघटित न कर दी जाएं।

इसके परिणामस्वरूप 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के अनुसार नई व्यवस्था अपनाने के लिए अधिकांश राज्यों ने 1993 एवं 1994 पंचायती राज अधिनियम पारित किए।

चुनावी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक—यह अधिनियम पंचायत के चुनावी मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। इसमें कहा गया है कि निर्वाचन क्षेत्र और इन निर्वाचन क्षेत्र में सीटों के आवंटन संबंधी मुद्दों को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता। इसमें यह भी कहा गया है कि किसी भी पंचायत के चुनावों को राज्य विधानमंडल द्वारा निर्धारित प्राधिकारी अथवा तरीके के अलावा चुनौती नहीं दी जाएगी।

11वीं अनुसूची—इसमें पंचायतों के कानून क्षेत्र के साथ 29 प्रकार्यात्मक विषय-वस्तु समाहित हैं—

1. कृषि, जिसमें कृषि विस्तार सम्मिलित है।
2. भूमि-विकास, भूमि सुधार लागू करना, भूमि संगठन एवं भूमि संरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और नदियों के मध्य भूमि विकास।
4. पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय तथा मत्स्यपालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. वन-जीवन तथा कृषि खेती (वनों में)।
7. लघु वन उत्पत्ति।
8. लघु उद्योग, जिसमें खाद्य उद्योग सम्मिलित है।
9. खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग।
10. ग्रामीण विकास।
11. पीने वाला पानी।
12. ईंधन तथा पशु चारा।
13. सड़कें, पुलों, तटों, जलमार्ग तथा अन्य संचार के साधन।
14. ग्रामीण विधुत जिसमें विधुत विभाजन समाहित है।
15. गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संबंधी विद्यालय।
18. यांत्रिक प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा।
19. वयस्क एवं गैर-वयस्क औपचारिक शिक्षा।

TOUCH 'n' PASS

20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक कार्य।
22. बाजार एवं मेले।
23. स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य संबंधी संस्थाएँ जिनमें अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा दवाखाने शामिल हैं।
24. पारिवारिक समृद्धि।
25. महिला एवं बाल विकास।
26. सामाजिक समृद्धि, जिसमें विकलांग व मानसिक रोगियों की समृद्धि निहित है।
27. कमजोर वर्ग की समृद्धि, जिसमें विशेषकर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग शामिल हैं।
28. लोक विभाजन पद्धति।
29. सार्वजनिक संपत्ति की देखरेख।

अनिवार्य एवं स्वैच्छिक प्रावधान
(Compulsory and Voluntary Provisions)

अब, हम संविधान के भाग 11 या 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनिवार्य (बाध्यकारी) एवं स्वैच्छिक (विवेकाधीन या वैकल्पिक) उपबंधों प्रावधानों का पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे—

अ. अनिवार्य प्रावधान

1. एक गाँव या गावों के समूह में ग्राम सभा का गठन।
2. गाँव स्तर पर पंचायतों, माध्यमिक स्तर एवं जिला स्तर पर पंचायतों की स्थापना।
3. तीनों स्तरों पर सभी सीटों के लिये प्रत्यक्ष चुनाव।
4. माध्यमिक और जिला स्तर के प्रमुखों के लिये अप्रत्यक्ष चुनाव।
5. पंचायत के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों का मताधिकार।
6. पंचायतों में चुनाव लड़ने के लिये न्यूनतम आयु 21 वर्ष होनी चाहिये।
7. सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति एवं जनजातियों (सदस्य एवं प्रमुख दोनों के लिये) के लिये आरक्षण।
8. सभी स्तरों पर (सदस्य एवं प्रमुख दोनों के लिये) एक-तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित।
9. पंचायतों के साथ ही मध्यवर्ती एवं जिला निकायों का कार्यकाल पांच वर्ष होना चाहिये तथा किसी पंचायत का कार्यकाल समाप्त होने के छह माह की अवधि के भीतर नये चुनाव हो जाने चाहिये।
10. पंचायती राज संस्थानों में चुनाव कराने के लिये राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना।
11. पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिये प्रत्येक पाँच वर्ष बाद एक राज्य वित्त आयोग की स्थापना की जानी चाहिये।

ब. स्वैच्छिक प्रावधान

1. ग्रामसभा को ग्राम स्तर पर शक्ति एवं प्रकार्यों से युक्त करना।
2. ग्राम पंचायत के अध्यक्ष के निर्वाचन के तरीके को निर्धारित करना।
3. ग्राम पंचायतों के अध्यक्षों को मध्यवर्ती पंचायतों में प्रतिनिधित्व देना, और जहाँ मध्यवर्ती पंचायतें नहीं हैं, वहां जिला पंचायतों में प्रतिनिधित्व देना।
4. मध्यवर्ती पंचायतों के अध्यक्षों को जिला पंचायतों में प्रतिनिधित्व देना।
5. विधानसभाओं एवं संसदीय के निर्वाचन क्षेत्र विशेष के अंतर्गत आने वाली सभी पंचायती राज संस्थाओं में संसद और विधानमण्डल (दोनों सदन) के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना।
6. पंचायत के किसी भी स्तर पर पिछड़े वर्ग के लिये (सदस्य एवं प्रमुख दोनों के लिये) स्थानों का आरक्षण।
7. पंचायतें स्थानीय सरकार के रूप में कार्य कर सकें, इस हेतु उन्हें अधिकार एवं शक्तियाँ देना (संक्षेप में, इन्हें स्वायत्त निकाय बनाने के लिये)।

TOUCH 'n' PASS

8. पंचायतों को सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के लिये योजनाएं तैयार करने के लिए शक्तियों और दायित्वों का प्रत्यायन और संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची के 29 कार्यों में से सभी अथवा कुछ को संपन्न करना।
9. पंचायतों को वित्तीय अधिकार देना, अर्थात् उन्हें उचित कर, पथकर और शुल्क आदि के आरोपण और संग्रहण के लिए प्राधिकृत करना।
10. राज्य सरकार द्वारा संगृहीत कर, शुल्क, पथकर, फीस आदि के लिए पंचायत को अधिकृत करना।
11. राज्य की निधि से पंचायतों को अनुदान सहायता प्रदान करना
12. पंचायतों में निधि का गठन करना, जिसमें पंचायत का धन जमा किया जाए।

प्र.5. 1996 के पेसा अधिनियम या विस्तार अधिनियम की विवेचना कीजिए।
Discuss the PESA act or extension act of 1996.

उत्तर

1996 का पेसा अधिनियम (विस्तार अधिनियम)
[PESA Act of 1996 (Extension Act)]

1996 का पेसा अधिनियम (विस्तार अधिनियम) पंचायतों से संबंधित संविधान का भाग-9 पाँचवीं अनुसूची में वर्णित क्षेत्रों पर लागू नहीं होता। हालाँकि संसद इन प्रावधानों को कुछ अपवादों तथा संशोधनों सहित उक्त क्षेत्रों पर लागू कर सकती है। इस प्रावधान के अंतर्गत संसद ने पंचायत के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तारित) अधिनियम 1996 पारित किया, जिसे पेसा एक्ट अथवा विस्तार अधिनियम कहा जाता है।

वर्तमान (2019) में दस राज्यों में पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र आते हैं आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा और राजस्थान। इन दस राज्यों में अपने पंचायती राज अधिनियमों में संशोधन कर अपेक्षित अनुपालन कानून अधिनियमित किए हैं।

पेसा अधिनियम के उद्देश्य (Objectives of PESA Act)

पेसा अधिनियम के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. संविधान के भाग 9 के पंचायतों से जुड़े प्रावधानों को जरूरी संशोधनों के साथ अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तारित करना।
2. जनजातीय जनसंख्या को स्वशासन प्रदान करना।
3. सहयात्री लोकतंत्र के तहत ग्राम प्रशासन स्थापित करना तथा ग्राम सभा को सभी गतिविधियों का केन्द्र बनाना।
4. पारंपरिक परिपाटियों की सुसंगता में उपयुक्त प्रशासनिक ढांचा विकसित करना।
5. जनजातीय समुदायों की परम्पराओं एवं रिवाजों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना।
6. जनजातीय लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त स्तरों पर पंचायतों को विशिष्ट शक्तियों से युक्त करना।
7. उच्च स्तर पर पंचायतों को निचले स्तर की ग्राम सभा की शक्तियों एवं अधिकारों के छिनने से रोकना।

पेसा अधिनियम की विशेषताएँ (Characteristics of PESA Act)

पेसा अधिनियम की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों पर राज्य विधायन वहां के प्रथागत कानूनों, सामाजिक एवं धार्मिक प्रचलनों तथा सामुदायिक संसाधनों के पारंपरिक प्रबंधन परिपाटियों के अनुरूप होगा।
2. एक गाँव के अंतर्गत एक समुदाय का वासस्थल अथवा वास स्थलों का एक समूह अथवा एक टोला अथवा टोलों का समूह होगा, जहाँ वह समुदाय अपनी परंपराओं एवं रिवाजों के अनुसार अपना जीवनयापन कर रहा हो।
3. प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा होगी जिसमें ऐसे लोग होंगे जिनके नाम ग्राम स्तर पर पंचायत के लिए निर्वाचक सूची में दर्ज हों।
4. प्रत्येक ग्राम सभा अपने लोगों की परंपराओं एवं प्रथाओं, उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक संसाधन तथा विवाद निवारण के परंपरागत तरीकों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए सक्षम होंगी।
5. प्रत्येक ग्राम सभा—
   (i) सामाजिक एवं आर्थिक विकास के कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं को स्वीकृति देगी, इसके पहले कि वे ग्राम स्तरीय पंचायत द्वारा कार्यान्वयन के लिए हाथ में लिए जाएं।

TOUCH 'n' PASS

(ii) गरीबी उन्मूलन एवं अन्य कार्यक्रमों के लाभार्थियों की पहचान के लिए जिम्मेदार होंगी।

6. प्रत्येक पंचायत उपरोक्त योजनाओं, कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के लिए निधि में उपयोग संबंधी प्रमाण–पत्र ग्राम सभा से प्राप्त करेगी।
7. प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित क्षेत्रों में सीटों का आरक्षण उन समुदायों की जनसंख्या के अनुपात में होगा, जिनके लिए संविधान में भाग 9 में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। हालांकि अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण कुल सीटों के आधे (one-half) से कम नहीं होगा। इसके अतिरिक्त पंचायतों के हर स्तर पर अध्यक्षों की सभी सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित होंगी।
8. जिन अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व मध्यवर्ती स्तर की पंचायत या जिला स्तर की पंचायत में नहीं है उन्हें सरकार द्वारा नामित किया जाएगा। किन्तु नामित सदस्यों की संख्या पंचायत में निर्वाचित कुल सदस्यों की संख्या के 1/10वें भाग से अधिक नहीं होंगी।
9. अनुसुचित क्षेत्रों में विकास परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण के पहले अथवा अनुसूचित क्षेत्रों में इन परियोजनाओं से प्रभावित व्यक्तियों के पुनर्स्थापन अथवा पुनर्वास के पहले ग्राम सभा अथवा उपयुक्त स्तर की पंचायत से सलाह की जाएगी। हालांकि परियोजनाओं की आयोजना एवं कार्यान्वयन अनुसूचित क्षेत्रों में राज्य स्तर पर समन्वीकृत किया जाएगा।
10. अधिसूचित क्षेत्रों में लघु जल स्रोतों के लिए आयोजना एवं प्रबंधन की जिम्मेदारी उपयुक्त स्तर के पंचायत को दी जाएगी।
11. अधिसूचित क्षेत्रों में छोटे स्तर पर खनिजों का खनन संबंधी लाइसेंस अथवा खनन पट्टा प्राप्त करने के लिए ग्राम सभा अथवा उपयुक्त स्तर की पंचायत की अनुशंसा प्राप्त करना अनिवार्य होगा।
12. छोटे स्तर पर खनिजों की नीलामी द्वारा दोहन के लिए रियायत प्राप्त करने के लिए ग्राम सभा अथवा उपयुक्त स्तर की पंचायत की पूर्व अनुशंसा अनिवार्य होगी।
13. जबकि अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए अधिभार सम्पन्न बनाया जा रहा है, राज्य विधायिका यह सुनिश्चित करेगी कि उपयुक्त स्तर पर पंचायत तथा ग्राम सभा को—
    (i) किसी नशीले पदार्थ की बिक्री अथवा उपयोग को रोकने अथवा नियमित करने अथवा प्रतिबंधित करने का अधिकार होगा।
    (ii) छोटे स्तर पर वन उपज पर स्वामित्व होगा।
    (iii) अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि से अलगाव को रोकने की शक्ति होगी। साथ ही किसी अनुसूचित जनजाति की गैर–कानूनी ढंग से बेदखली के पश्चात् वापस भूमि प्राप्त करने के लिए आवश्यक कार्रवाई का अधिकार होगा।
    (iv) ग्रामीण हाट–बाजारों के प्रबंधन की शक्ति होगी।
    (v) अनुसूचित जनजातियों को पैसा उधार देने के मामले में नियंत्रण रखने की शक्ति होगी।
    (vi) सभी सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं एवं पदाधिकारियों पर नियंत्रण रखने की शक्ति होगी।
    (vii) स्थानीय आयोजनाओं तथा ऐसी आयोजनाओं, जिनमें जनजातीय उप–आयोजनाएं शामिल हैं, पर नियंत्रण की शक्ति होगी।
14. राज्य विधायन के अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था होगी जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि उच्च स्तर की पंचायतें निचले स्तर की किसी पंचायत या ग्राम सभा के अधिकारों का हनन अथवा उपयोग नहीं कर रही हैं।
15. अनुसूचित क्षेत्रों में जिला स्तर पर प्रशासकीय व्यवस्था बनाते समय राज्य विधायिका संविधान की छठी अनुसूची का अनुसरण करेगी।
16. अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों से संबंधित किसी कानून का कोई प्रावधान यदि इस अधिनियम की संगति में नहीं है तो वह राष्ट्रपति द्वारा इस अधिनियम की स्वीकृति प्राप्त होने की तिथि के एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् लागू होने से रह जाएगा। हालांकि उक्त तिथि के तत्काल पहले अस्तित्व में रहीं सभी पंचायतें अपने कार्यकाल की समाप्ति तक चलती रहेंगी बशर्ते कि उन्हें राज्य विधायिका द्वारा पहले ही भंग न कर दिया जाए।

TOUCH 'n PASS

प्र.6. पंचायत समिति से आप क्या समझते हैं? इसके कार्यों तथा शक्तियों का भी वर्णन कीजिए।
What do you understand by panchayat samiti? Also, describe the functions and powers of it.

उत्तर

पंचायत समिति
(Panchayat Samiti)

पंचायती राज एक तीन स्तरीय प्रणाली है, इसमें पंचायत समिति मध्यवर्ती स्तर है। इसकी स्थापना खण्ड (Block) तालुक (Taluk) या मंडल (Mandal) स्तर पर की गई है और यह ग्राम पंचायत तथा जिला परिषद् के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य सम्पन्न करती है। इसका नाम सर्वत्र एक नहीं है। आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा, पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश में इसे पंचायत समिति कहते हैं जबकि कर्नाटक तथा गुजरात में इसे तालुक पंचायत के नाम से जाना जाता है। मध्य-प्रदेश में जनपद, के दल में ब्लॉक पंचायत, असम में आंचलिक पंचायत तमिलनाडु में पंचायत यूनियन कौंसिल, उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय पंचायत तथा अरूणाचल प्रदेश में इसे आंचल समिति के नाम से पुकारा जाता है। बलवन्त राय मेहता समिति की रिपोर्ट के अनुसार पंचायत समिति ग्रामीण क्षेत्र में एक मात्र प्रतिनिधि होती है जो वहाँ होने वाली सभी विकास गतिविधियों की जिम्मेदारी अपने ऊपर एक लोकतान्त्रिक संस्था के रूप में लेती है। यह स्थानीय सरकार की पंचायतीराज प्रणाली का माध्यम, मुख्य तथा अभिन्न परिवर्तनकारी इकाई होती है। साधारणत: यह ग्राम पंचायत तथा जिला परिषद् से भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली निकत्य होती है।

पंचायत समिति की संरचना (Structure of Panchayat samiti)—हरियाणा पंचायती राज अधिनियम 1994 की धारा 55 के अनुसार पंचायत समिति की रचना में निम्नलिखित व्यक्ति शामिल होते हैं—

1. हरियाणा में पंचायत समिति के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 10 से 30 तक होती है। जिस पंचायत समिति के क्षेत्र की जनसंख्या 40 हजार तक होती है वहाँ 4 हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य चुना जाता है और उस क्षेत्र की पंचायत समिति के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 10 से कम नहीं हो सकती। जिस पंचायत समिति क्षेत्र की जनसंख्या 40 हजार से अधिक है वहाँ 5 हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य तथा निर्वाचित सदस्यों की संख्या 10 तथा 30 सदस्यों के बीच होती है।
2. आरक्षित स्थान (Reserved place)—73वें संविधान संशोधन के अनुसार अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन जातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपालन से आरक्षण देने की व्यवस्था की गई है। अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित किए स्थानों में से एक-तिहाई स्थान अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं।
   (i) निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या का एक-तिहाई स्थान महिलाओं (इनमें अनुसूचित जाति की महिलाएँ भी सम्मिलित हैं) के लिए आरक्षित किए गए हैं।
   (ii) प्रत्येक पंचायत समिति में एक सीट पिछड़े वर्गों (Backward Classes) के लिए आरक्षित की गई है।
3. **सहायक सदस्य** (Associate Members)—पंचायत समिति के क्षेत्र में से विधानसभा में चुने गए सदस्य पंचायत समिति के सहायक सदस्य होते हैं। इन्हें समिति की बैठकों में भाग लेने तथा अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है और 73वें संशोधन के अनुसार इन सदस्यों को मतदान का अधिकार भी प्राप्त है।

पदेन सदस्य (Ex-officio Members)—सब-डिविजनल मैजिस्ट्रेट या अधिकारी (S.D.M. or S.D.O.) तथा खण्ड एवं पंचायत अधिकारी (B.D.O.) इसके पदेन सदस्य होते हैं। इन सदस्यों को भी सहायक सदस्यों की भाँति बोलने आदि का अधिकार तो है, परन्तु मतदान का नहीं है।

सदस्यों की योग्यताएँ (Qualifications of Members)—पंचायत समिति का सदस्य चुने जाने या संयोजित (Co-opt.) किए जाने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निश्चित हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,
3. वह किसी सरकारी लाभदायक पद पर न हो,
4. यह पागल या दिवालिया न हो,
5. वह किसी न्यायालय द्वारा अयोग्य घोषित न किया गया हो।

TOPSETT PAGES

अवधि (Term)—पंचायत समिति की अवधि पाँच साल है। सरकार अवधि पूरी होने से पहले भी पंचायत समिति को भंग कर सकती है।

अध्यक्ष (Chairman)—पंचायत समिति के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को चुनते हैं। जिले की पंचायत समितियों के अध्यक्षों के पद अनुसूचित जातियों और महिलाओं के लिए अतिरिक्त उपायुक्त के द्वारा आरक्षित किए जाते हैं। महिलाओं के लिए आरक्षित पद लॉटरी द्वारा तय किए जाते हैं। इनकी अवधि भी पाँच साल होती है। परन्तु उसे कार्यकाल से पहले भी दो-तिहाई सदस्यों द्वारा भी हटाए जाने की व्यवस्था है।

कार्यकारी अधिकारी (Executive Officer)—खण्ड विकास तथा पंचायत अधिकारी (B.D.O.) पंचायत समिति का कार्यकारी अधिकारी होता है। पंचायत समिति का दैनिक शासन उसी के द्वारा चलाया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई कर्मचारी होते हैं जिनमें तकनीकी विशेषज्ञ भी शामिल होते हैं।

बैठकें (Meetings)—पंचायत समिति की बैठकें अध्यक्ष द्वारा बुलाई जाती हैं। पंचायत समिति की साधारण बैठकें एक वर्ष में कम-से-कम 6 बार बुलाई जाती हैं। पंचायत समिति के एक-तिहाई सदस्य यदि लिखकर दें तो पंचायत समिति की विशेष बैठक बुलाई जा सकती है। साधारण बैठक एक महीने में एक बार अवश्य बुलाई जाती है।

पंचायत समिति के कार्य तथा शक्तियाँ
(Functions and Powers of Panchayat Samiti)

पंचायत समिति पंचायती राज व्यवस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है। पंचायत समिति निम्नलिखित कार्य करती है—

1. **प्रशासकीय कार्य** (Administrative Functions)—
   (i) अपने क्षेत्र में आने वाली ग्राम पंचायतों के प्रबन्धकीय कार्यों का निरीक्षण करना तथा उन पर नियन्त्रण करना।
   (ii) ग्राम पंचायतों की वार्षिक योजनाओं पर विचार करना तथा उन्हें जिला परिषद् के पास भेजना।
   (iii) सरकारी अथवा जिला परिषद् द्वारा निर्धारित वार्षिक योजनाओं को तैयार करना।
   (iv) अपने क्षेत्र में आने वाली ग्राम पंचायतों द्वारा विकास कार्यों को लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान करती है।
   (v) ब्लॉक के बजट को तैयार करके जिला परिषद् को भेजना।
   (vi) सरकार द्वारा निश्चित किए गए कार्य करना।
   (vii) ग्राम पंचायत की सहमति से पंचायत समिति अपने प्रत्यक्ष प्रशासकीय नियन्त्रण के अधीन किसी भी विषय सम्बन्धी जैसे—सम्पत्ति के निर्माण, देखभाल तथा विकास सम्बन्धी कार्य करना है।
2. **कृषि सम्बन्धी कार्य** (Functions relating to Agriculture)—
   (i) उन्नत बीजों का विकास करना, किसानों को उनकी जानकारी देना तथा इनको किसानों में वितरित करना।
   (ii) किसानों को उन्नत एवं वैज्ञानिक कृषि यन्त्रों की जानकारी देना।
   (iii) रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों का वितरण करना।
   (iv) कृषि के लिए वित्तीय सहायता जैसे—ऋण आदि उपलब्ध कराना।
   (v) दलदल या बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना।
   (vi) भू-संरक्षण (Soil Conservation) या भूमि कटाव पर रोक लगाना।
   (vii) खाद्यान्न उत्पादन की नई विधियों की जानकारी देना।
   (viii) प्राकृतिक अथवा देसी खाद को कृषि के लिए बढ़ावा देना, विशेषत: हरी और गली-सड़ी खाद (farm yard manure) में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।
   (ix) पेड़-पौधों की सुरक्षा सम्बन्धी उपायों की जानकारी देना।
   (x) कृषि कार्यों में अधिक शक्ति का प्रबन्ध करना।
   (xi) फलों और सब्जियों की खेती को बढ़ावा देना।
   (xii) वृक्षारोपण (Afforestation) को बढ़ावा देना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्ष लगाने पर बल देना।
   (xiii) कृषि मेलों, प्रदर्शनियों आदि की व्यवस्था करना।
   (xiv) कृषि के विकास के लिए सिंचाई के साधनों में सरकार और जिला परिषद् की मदद करना।

TOUCH 'n' PASS

(xv) राज्य सरकार द्वारा चलाए जाने वाले भूमि सुधार तथा भू-संरक्षण (Land reformation and soil conservation) कार्यक्रमों में राज्य सरकार तथा जिला परिषद् की सहायता करना।
(xvi) व्यक्तिगत तथा सामूहिक सिंचाई सम्बन्धी कार्यक्रम लागू करना।

3. **पशु पालन** (Animal Husbandry)—
(i) पशु चिकित्सा और पशु पालन सेवाओं की व्यवस्था करना।
(ii) पशुओं, मुर्गियों तथा अन्य पालतू जीवों की नस्ल सुधारना।
(iii) पालतू पशुओं और पक्षियों आदि को महामारी से बचाना।
(iv) दुग्ध उत्पादन के लिए डेयरियों को बढ़ावा देना। इसके अतिरिक्त मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, सुअर पालन, मछली पालन इत्यादि को प्रोत्साहित करना।

4. **शिक्षा** (Education)—
(i) अपने क्षेत्र में शिक्षा के विकास की ओर ध्यान देना।
(ii) प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को बढ़ावा देना।
(iii) प्राथमिक विद्यालयों के लिए भवन निर्माण, मरम्मत तथा देख-रेख करना।
(iv) युवा केन्द्रों तथा महिला मण्डलों द्वारा सामाजिक शिक्षा का प्रसार करना।
(v) प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा को बढ़ावा देना।
(vi) ग्रामीण कारीगरों, शिल्पियों आदि को व्यावसायिक व तकनीकी प्रशिक्षण देना।
(vii) पुस्तकालयों, वाचनालयों (reading rooms) इत्यादि का निर्माण, देख-रेख और विकास करना।

5. **स्वास्थ्य और परिवार कल्याण** (Health and Family welfare)—
(i) अपने क्षेत्र की सफाई और स्वास्थ्य का उचित प्रबन्ध करना।
(ii) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
(iii) बीमारियों की रोकथाम के लिए टीकाकरण तथा अन्य उपाय करना।
(iv) महिलाओं तथा शिशुओं के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों तथा टीकाकरण के कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
(v) प्रसूति गृह तथा बाल-कल्याण केन्द्र स्थापित करना।
(vi) स्त्रियों और बाल-कल्याण कार्यक्रमों में स्वयंसेवी संगठनों को उत्साहित करना।
(vii) स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
(viii) मेलों तथा उत्सवों आदि सार्वजनिक प्रदर्शनियों में सफाई का विशेष ध्यान रखना।
(ix) जन्म, मृत्यु और शादियों का पंजीकरण करना।
(x) अनाथालयों का प्रबन्ध करना।
(xi) लावारिस लाशों का दाह संस्कार करना।

6. **पीने का पानी** (Drinking Water)—
(i) स्वच्छ और पीने योग्य पानी की व्यवस्था करना।
(ii) पानी को प्रदूषित होने से बचाना तथा जल प्रदूषण के खतरों से अवगत कराना।
(iii) ग्रामीण जल संशोधन योजनाएँ लागू करना।
(iv) ग्रामीण क्षेत्रों में जलापूर्ति योजनाओं को लागू करना और उनकी देख-रेख करना।

7. **वृक्षारोपण** (Afforestation)—
(i) वनों व पेड़ों के विकास के लिए नर्सरियों (nursaries) का विकास करना।
(ii) वृक्षारोपण के कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।
(iii) अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले राज मार्गों के किनारे पेड़ लगवाना तथा उनकी देख-रेख करना।
(iv) ईंधन तथा चारे के लिए वृक्ष लगवाना।

TOUCH 'n' PASS

8. **कमजोर वर्गों का कल्याण** (Welfare of the Weaker Sections)—
   (i) अनुसूचित जातियों, जन-जातियों व पिछड़ी श्रेणियों और समाज के अन्य दुर्बल वर्ग के लोगों को सामाजिक अन्याय व शोषण से बचाना।
   (ii) अपाहिजों, अनाथों, दिमागी तौर पर असंतुलित व्यक्तियों के कल्याण के लिए कार्यक्रम बनाना।
   (iii) अनुसूचित जातियों, जन-जातियों और समाज के अन्य कमजोर वर्गों के लोगों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम लागू करना।
   (iv) वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन व अपंगों के लिए पेंशन या आर्थिक मदद करना।
   (v) दहेज व अन्य सामाजिक कुरीतियों को रोकना।
   (vi) गन्दे और खतरनाक व्यापार तथा प्रथाओं पर रोक लगाना।
9. **सामूहिक सम्पत्ति, सहकारिता तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली** (Community assets, Co-operatives and Public Distribution System)—
   (i) सरकारी सम्पत्ति का प्रबन्ध तथा उसकी देखभाल करना।
   (ii) सामूहिक सम्पत्तियों सामुदायिक केन्द्रों आदि की देखभाल करना।
   (iii) सहकारी समितियों को प्रोत्साहन देना।
   (iv) सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत आवश्यक वस्तुओं का वितरण।
10. **विकासात्मक कार्य** (Development Functions)—
   (i) लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देना।
   (ii) सामुदायिक विकास कार्यक्रमों (Community development projects) को लागू करना।
   (iii) अपने क्षेत्र के विकास के लिए ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोतों को बढ़ावा देना।
   (iv) लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए सम्मेलन, गोष्ठियाँ तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों का आयोजन करवाना।
   (v) कृषि औद्योगिक प्रदर्शनियाँ लगवाना।
   (vi) मकानों के लिए प्लाटों के आबंटन तथा गृह निर्माण कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना।
   (vii) ग्रामीण जल प्रदूषण रोकना तथा ग्रामीण स्वच्छता परियोजनाओं को लागू करना।
   (vi) अपने क्षेत्र में सड़कों, पुलों, नालों, जलमार्गों तथा आवागमन के अन्य साधनों इत्यादि का निर्माण, देख-रेख व मरम्मत करना।
   (ix) सार्वजनिक नौका घाटों का प्रबन्ध करना।
   (x) यातायात के साधनों का प्रबन्ध करना।
   (xi) पंचायत समिति सार्वजनिक हित के लिए सम्पत्ति के अधिग्रहण का अधिकार भी रखती है।
11. **मनोरंजन खेल-कूद कला और संस्कृति** (Entertainment, Games, Art and Culture)—
   (i) पंचायत समिति लोगों के मनोरंजन के लिए सर्कस, चल-चित्र, नाटक, मेलों, दंगल प्रदर्शनियों आदि का आयोजन करती है।
   (ii) उत्सवों का आयोजन करना।
   (iii) खेलों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न खेल-कूद कार्यक्रमों का आयोजन करना तथा खेल सामग्री वितरित करना।
   (iv) मनोरंजन केन्द्रों, थियेटरों, मंचों आदि की व्यवस्था करना।
   (v) कलाकारों को प्रोत्साहन देना।
   (vi) कला तथा संस्कृति के विकास के लिए अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करना।
   (vi) परम्परागत ग्रामीण खेल को लोकप्रिय बनाना।
12. **आपात् सेवाएँ** (Emergency Services)—
   (i) अकाल, बाढ़ व आग लगने जैसी विकट स्थितियों में सहायता करना।
   (ii) आपात् अग्निशमन सेवा प्रदान करना।

TOUCH 'n' PASS

(iii) महामारियों की रोकथाम के लिए प्रभावी कदम उठाना।

13. **ग्रामीण विद्युतीकरण** (Rural Electrification)—
   (i) ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण को प्रोत्साहित करना।
   (ii) ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यक स्थानों पर रोशनी की व्यवस्था करना।
14. **अन्य कार्य** (Other Functions)—उपर्युक्त कार्यों के अलावा पंचायत समिति उन सब कार्यों को भी करती है जो समय-समय पर राज्य सरकार इसको सौंपती है। यदि ऐसे कार्य करने के लिए पंचायत समिति को अतिरिक्त धनराशि खर्च करनी पड़ती है तो उसको राज्य सरकार वहन करेगी।
15. **उप-नियम बनाने सम्बन्धी शक्तियाँ** (Powers to makes Bye-laws)—पंचायत समिति को निम्नलिखित विषयों में उप-नियम बनाने का अधिकार प्राप्त है—
   (i) बस अड्डों पर नियन्त्रण।
   (ii) सड़कों और गलियों को नुकसान तथा अवैध कब्जों से बचाना।
   (iii) राज्य सरकार द्वारा सौंपी गई सम्पत्ति तथा पंचायत समिति की सम्पत्ति को नुकसान और हस्तक्षेप से बचाना।
   (iv) किसी औद्योगिक या व्यापारिक प्रदर्शनी, मेले आदि की सीमा निर्धारित करना, उसका प्रबन्ध करना तथा सफाई बनाए रखना।
   (v) क्रीड़ा स्थलों, मनोरंजन स्थलों तथा व्यायामशालाओं का प्रबन्ध करना।
   (vi) मोटर गाड़ियों या बैलगाड़ियों के अलावा गाड़ियों का पंजीकरण करना, लाईसेंस देना और गाड़ियों के यातायात का प्रबन्ध करना।
   (vii) चरागाहों का प्रबन्ध और देख-रेख करना।
   (viii) स्वच्छ हवादार मकान बनाने की व्यवस्था करना।
   (ix) खाने-पीने के सामान की बिक्री के सम्बन्ध में।
   (x) तालाबों, झीलों, झरनों आदि की सफाई और देख-रेख करना।
   (xi) पशुशालाओं का प्रबन्ध और निरीक्षण।
   (xii) पशुओं के स्वास्थ्य का ध्यान रखना, उनकी नस्ल सुधारना तथा उन्हें रोगों आदि से बचाना।
   (xiii) सार्वजनिक प्रदर्शनियों, मेलों, मण्डियों आदि में पशुओं की बिक्री दर्ज करने के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति और उनके द्वारा लगाए जाने वाला शुल्क निर्धारित करना।
   (xiv) पागल और आवारा कुत्तों को मारना, चूहों, टिड्डियों एवं अन्य कीड़े-मकौड़ों को खत्म करना।
   (xv) प्लेग, हैजा, इत्यादि विरोधी उपाय करना तथा छूत के रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए आवास का प्रबन्ध करना।
   (xvi) पंचायत समिति के क्षेत्र में घूमने वाले आवारा और लावारिस पशुओं का निवारण करना।
   (xvii) पंचायत समिति के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत लगाई जाने वाली चुँगी कर, शुल्क आदि का निर्धारण और एकत्रिकरण करना।
   (xviii) सरायों, आरामगृहों, होटलों, बेकरियों, धोबी घाटों, बूचड़खानों, धुआँ रहित चूल्हों इत्यादि का निरीक्षण और सही व्यवस्था करना।
   (xix) मलेरिया के बचाव के लिए उपाय करना।
   (xx) श्मशान घाटों और कब्रिस्तानों का प्रबन्ध व देख-रेख करना।

उल्लेखनीय है कि यदि कोई व्यक्ति पंचायत समिति द्वारा बनाए इन उप-नियमों का उल्लंघन करता है तो उस पर ₹ 500 जुर्माना किया जा सकता है।

1. अस्पताल, औषधालय, स्कूल, धर्मशाला, विश्राम गृह तथा अन्य लोक संस्थाओं के प्रयोग के बदले में ली गई फीस,
2. पानी की सप्लाई प्रदान करने पर लिया गया पानी कर,
3. दलदल, मिट्टी, कीचड़ आदि का पुनरुद्धार करने पर फीस,
4. खेती-बाड़ी से तथा उद्योग से सम्बन्धित आयोजित प्रदर्शनियों से प्राप्त आय,
5. सरकार की स्वीकृति से समय-समय पर लगाए गए कर; जैसे व्यवस्था कर, सम्पत्ति कर व मार्ग कर,

TOUCH 'n' PASS

6. समिति की सम्पत्तियों से प्राप्त आय,
7. समिति की भूमि व आय सम्पत्तियों से प्राप्त किराया,
8. सरकार से लिया गया ऋण,
9. भारत सरकार द्वारा शुरू की गई रोजगार आश्वासन योजना के तहत दी जाने वाली राशि में से अपने हिस्से की 15 प्रतिशत प्राप्त राशि। विदित है कि शेष धनराशि पंचायत तथा जिला-परिषद् (70 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत) को आबंटित की जाती है,
10. भारत सरकार के वित्त आयोग द्वारा दिया जाने वाला पंचायती राज संस्था अनुदान,
11. राज्य सरकार द्वारा सामुदायिक विकास व अन्य कार्यों के लिए दिया जाने वाला अनुदान।

प्र.7. जिला परिषद् का संगठन तथा संरचना की व्याख्या कीजिए एवं इसके कार्य तथा आय के साधनों का वर्णन कीजिए।
Explain the organization and structure of zila parishad and describe its functions and sources of income.

उत्तर

जिला परिषद्
(Zila Parishad)

जिला परिषद् भारत के ग्रामीण स्थानीय स्व शासन की पंचायती राज व्यवस्था का शिखर है। इसकी स्थापना सभी राज्यों में जिला स्तर पर की गई है। इससे पहले प्रत्येक जिले में बोर्ड होते थे जो ग्रामीण क्षेत्रों के स्थानीय मामलों की देख रेख या निपटारा करते थे। परन्तु वर्तमान समय में जिला बोर्डों के स्थान पर जिला परिषद् कार्यरत हैं। जिला परिषद् को विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, उड़ीसा, सिक्किम, असम, आन्ध्रप्रदेश, मणिपुर, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा मध्यप्रदेश में इसे जिला परिषद् कहते हैं। उत्तर प्रदेश, गोवा तथा कर्नाटक में जिला पंचायत जबकि केरल, तमिलनाडु तथा गुजरात में इसे डिस्ट्रिक्ट पंचायत (District Panchayat) के नाम से पुकारा जाता है।

आरक्षण (Reservation)

जिला-परिषद के चुनाव में निम्नलिखित प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था की गई है—

1. **अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए आरक्षण** (Reservation for Scheduled Castes and Scheduled Tribes)—जिला-परिषद् की कुल सीटों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए उनके जिले में जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से आरक्षण किया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि उनकी जनसंख्या एवं अन्य जातियों की संख्या में और जिला-परिषद् की कुछ सीटों की संख्या और उनके लिए आरक्षित सीटों की संख्या में एक समान अनुपात होगा। इन आरक्षित सीटों में से एक-तिहाई सीटें इस जाति की महिलाओं के लिए आरक्षित की जाएंगी।
2. **महिलाओं के लिए आरक्षण** (Reservation of Women)—जिला-परिषद के प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा भरी जाने वाली कुछ सीटों में से 1/3 सीटें (इनमें अनुसूचित जाति की महिलाएँ भी सम्मिलित हैं) महिलाओं हेतु आरक्षित की जाएंगी। इन सीटों का विभाजन क्रमवार (By rotation) किया जाएगा।
3. **पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण** (Reservation for Backward Classes)—ज़िला-परिषद् में कम-से-कम एक सीट पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षित की गई है। यह सीट उस वार्ड में से भरी जाएगी जिसमें पिछड़ी जातियों (BC) की जनसंख्या सबसे ज्यादा है।
4. **अध्यक्ष के पद का आरक्षण** (Reservation of the office of Chairman)—जिला-परिषद् के अध्यक्ष के पद का भी आरक्षण किया गया है। राज्य के कुल जिला-परिषद् अध्यक्ष में से 1/3 स्थान महिलाओं के लिए (SC महिलाएँ भी शामिल हैं) एवं जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जातियों के लिए भी स्थान आरक्षित किए गए हैं।

जिला-परिषद् की सभाएँ (Meetings of Zila Parishad)

जिला-परिषद् के सदस्यों के औपचारिक चुनाव हो जाने की प्रक्रिया की सूचना राज्य चुनाव आयुक्त या उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी के द्वारा प्रकाशित की जाती है। जिला-परिषद् का औपचारिक गठन हो जाने के बाद चार सप्ताह के भीतर प्रथम बैठक का आयोजन किया जाता है। जिसमें जिला-परिषद् के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। जिला-परिषद की एक वर्ष में 6 बैठकें बुलानी आवश्यक होती हैं और दो बैठकों के बीच का समय दो माह से ज्यादा नहीं होना

TOUCH 'n' PASS

चाहिए। जिला-परिषद का अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष बैठकें बुलाए जाने की तिथि, स्थान व कार्यसूची का निर्णय करता है। जिला-परिषद् की बुलाई गई बैठकों की सूचना प्रत्येक सदस्य को साधारण बैठक शुरू होने से 10 दिन पहले और विशेष बैठक शुरू होने से 4 दिन पहले दी जाती है। जिला परिषद् का अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में कार्यकारी अधिकारी, यदि आवश्यक समझें तो जिला-परिषद् के 1/3 सदस्यों के आग्रह पर विशेष बैठक आमन्त्रित कर सकते हैं।
प्रत्येक बैठक की अध्यक्षता जिला-परिषद के अध्यक्ष द्वारा तथा उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष द्वारा एवं उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सदस्यों के द्वारा चुने गए किसी एक सदस्य के द्वारा की जाती है। सभा में निर्णय सदस्यों के बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं और यदि किसी विषय पर मत बराबर पड़ें तो सभा के अध्यक्ष को निर्णायक मत (Casting Vote) का अधिकार प्राप्त होता है। परन्तु अध्यक्ष के चुनाव व हटाने की विधि के दौरान उसे निर्णायक मत का अधिकार प्राप्त नहीं होता। जिला-परिषद् के द्वारा लिए गए किसी अन्तिम निर्णय को तब तक बैठक में दोबारा प्रस्तुत (Reconsideration) नहीं किया जाएगा जब तक कि परिषद् के 3/4 सदस्यों की स्वीकृति न मिल जाए या सरकार ऐसा कोई आदेश (Order) न दे।
जिला-परिषद् की प्रत्येक बैठक की कार्रवाइयों (Minutes of Proceedings of Meeting) का रिकॉर्ड (Record) रखा जाता है। जिसका निरीक्षण कोई भी सदस्य कर सकता है। जिला परिषद में पारित किए गए प्रस्ताव की प्रति (Copy) 3 दिन के भीतर सरकार को भेजी जाती है।

गणपूर्ति (Quorum)

जिला-परिषद् की कार्रवाई चलाने के लिए आवश्यक गणपूर्ति इस प्रकार निश्चित की गई है—

1. साधारण बैठक के लिए कुल सदस्यों में से 1/3 सदस्यों की उपस्थिति एवं
2. विशेष बैठक के लिए कुल सदस्यों में से 1/2 सदस्यों की उपस्थिति।

जिला-परिषद् की कोई भी बैठक 1/2 सदस्यों की स्वीकृति से किसी आगामी दिनांक तक स्थगित की जा सकती है। आगामी बैठक, में, स्थगित की गई बैठक के अनिर्णीत विषय पर विचार नहीं किया जाएगा।

जिला परिषद् के कार्य (Function of Zila Parishad)

1. **पंचायत समितियों का निरीक्षण** (Supervison over Panchayat Samities)—सभी राज्यों में जिला परिषदों पंचायत समिति की कार्य शैली के निरीक्षण (Supervision) के लिए उत्तरदायी (Responsible) हैं। समितियों को समय-समय पर पारित सभी प्रस्तावों की नकल जिला परिषदों को सौंपनी होती है। जिला परिषद् से आशा की जाती है कि वह इन प्रस्तावों का पर्यवेक्षण (Screen) करके यह देखने की कोशिश करें कि कहीं पंचायत समिति अपनी सीमा रेखा से बाहर तो नहीं आ गई, उन्होंने अपने अधिकारों का दुरुपयोग तो नहीं किया और कोई अनियमितता (Irregularity) तो नहीं की। पंजाब और हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ राज्यों में बने कानूनों के अनुसार पंचायत समिति के लिए अनिवार्य है कि वह जिला परिषद् के निर्देशों का पालन करे। जिला परिषद् पंचायत समिति के बजट की जाँच भी करती हैं और उसे स्वीकृति भी देती है यह पंचायत समिति का कोई भी रिकार्ड, वक्तव्य (Statement) या जानकारी मँगवा सकती है। यह पंचायत समिति द्वारा की गई किसी भी अनियमितता (Irregularity) की रिपोर्ट कलैक्टर य डिविजनल कमिश्नर को भेज सकती है।
2. **परामर्श सम्बन्धी कार्य** (Advisory Functions)—पंचायत समितियों को सलाह देने के साथ-साथ वह जिले में होनेवाले सभी कार्यों के सम्बन्ध में राज्य सरकार को भी परामर्श देती है। यह राज्य सरकार को जिले में पंचायत समितियों और पंचायतों के बीच के बंटवारे के बारे में मंत्रणा भी देती है।
3. **समन्वयशील कार्य** (Co-ordinative Functions)—जिला परिषद् का एक महत्त्वपूर्ण काम पंचायत समितियों और समिति तथा पंचायत के बीच समन्वय (Co-ordination) स्थापित करना है। यह पंचायत समितियों द्वारा तैयार विकास योजनाओं के लिए सहयोग भी देती हैं और उन्हें दृढ़ भी करती है। यह इन योजनाओं या अन्य स्कीमों या प्रयोजनाओं को पूरा करने में मदद करती है जो दो या दो से अधिक पंचायत समितियों से सम्बन्धित हों।
4. **प्रशासकीय कार्य** (Administrative Functions)—उन राज्यों में भी जहाँ पंचायत समिति केन्द्रीय भूमिका निभाती है, जिला परिषदों को कुछ प्रशासकीय कार्य दिए गए हैं। आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में जहाँ समितियाँ अधिक शक्तिशाली हैं, जिला परिषदों को निम्नलिखित विकास कार्यों जैसे कृषि, सिंचाई, शिक्षा, संचार आदि दिए गए हैं। इसके

TOUCH 'n PASS

अतिरिक्त इन राज्यों में जिला परिषदों को राज्य सरकार और भी प्रशासनिक कार्य सौंप सकती है। उत्तर प्रदेश में जिला परिषद् इन कार्यों से सम्बन्धित हैं—प्राथमिक स्तर (Primary Stage) से ऊपर शिक्षा का प्रबन्ध, पुस्तकालयों की स्थापना, अध्यापकों के प्रशिक्षण (Teacher's training) का इन्तजाम, सार्वजनिक सड़कों, पुलों को बनाना, मरम्मत करना तथा देखभाल करना, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के प्रशिक्षण के लिए केन्द्र, गरीबों के लिए आवास गृह, पागलखाने और अनाथालय खोलना और उनका प्रबन्ध करना, समिति की योजनाओं के पर्यवेक्षण (Review) के अतिरिक्त जिले के लिए योजना बनाना। महाराष्ट्र और गुजरात में जहाँ विकास एवं योजना के लिए जिला परिषद् मुख्य इकाई है यह विकास सम्बन्धी सभी कार्यों जैसे कृषि, पशु-पालन, वन, सामाजिक शिक्षा, समाज कल्याण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, संचार, आवास, ग्राम्य उद्योग और सामुदायिक विकास आदि के प्रति उत्तरदायी है।

5. **विविध कार्य** (Miscellaneous Functions)—कुछ राज्यों में जिला परिषदों को उप नियम बनाने; प्रस्ताव पास करने, यहाँ तक कि अपील सुनने के भी अधिकार हैं। आखिरी मामले में यह पंचायत समितियों या दो ग्राम पंचायतों या पंचायत समिति एवं ग्राम पंचायतों के विवाद (Disputes) निपटाती है। यह ग्राम पंचायतों पर निरीक्षण (Supervisory) करने या प्रशासनिक नियन्त्रण (Control) भी रखती है। एक जिला परिषद अपने अधिकार अध्यक्ष (Chairman), उपाध्यक्ष (Vice-Chairman) या सेक्रेटरी (Secretary) को हस्तांतरित (Delegate) कर सकती है। यह जिले के स्थानीय अधिकारियों के कार्यकलापों के आँकड़े भी इकट्ठे करती है। यह ऐसे अधिकार या कार्य करती है जिन्हें राज्य सरकार इसे समय-समय पर सौंपती है।

जिला परिषद् की आय के साधन
(Sources of Income of Zila Parishad)

जिला-परिषद् की आय के साधन निम्नलिखित हैं—

1. राज्य सरकार की स्वीकृति से समय-समय पर जिला परिषद् द्वारा लगाए गए कर,
2. गन्दगी, गोबर, कूड़ा-करकट के बेचने से प्राप्त आय,
3. राज्य सरकार द्वारा विकास व पंचायत विभाग की योजनाओं के तहत 5% से 10% तक आबंटित फण्ड,
4. राज्य सरकार द्वारा लिया गया ऋण,
5. जिला-परिषद् की सम्पत्तियों से प्राप्त किराया,
6. कुटीर उद्योग तथा लघु उद्योग की उन्नति के लिए अखिल भारतीय संस्थाओं द्वारा दिए गए अनुदान,
7. पंचायत समितियों द्वारा दिए गए अनुदान,
8. राज्य सरकार की स्वीकृति से पंचायत समितियों के लिए स्वीकृति धन में से ली गई धनराशि,
9. भारत सरकार द्वारा आरम्भ की गई रोजगार आश्वासन योजना कुल राशि में से 10% हिस्से में आई धनराशि, शेष राशि पंचायतों व पंचायत समितियों में वितरित की जाती है,
10. केन्द्रीय वित्त आयोग द्वारा दिया गया अनुदान,
11. अस्पताल, स्कूल, औषधालय के प्रयोग के बदले में ली गई फीस,
12. दलदल, मिट्टी, कीचड़ आदि का पुनरुद्धार करने पर ली गई फीस,
13. खेती-बाड़ी व उद्योग धन्धों पर दिखाई गई प्रदर्शनी पर ली गई फीस।

❑

PUCHH PASS

UNIT-IV

निर्वाचन
Elections

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के गुणों को बताइए।
State the merits of direct election system.

उत्तर 1. प्रत्यक्ष चुनाव का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे लोग अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में सचेत हो जाते हैं।
2. इसमें मतदाताओं में राजनीतिक जागरूकता की भावना का भी उदय होता है।
3. वे अपनी नीति और योजना मतदाताओं के सामने रखते हैं।
4. यह प्रणाली अधिक लोकतंत्रात्मक है क्योंकि मतदाताओं को सीधा अपना प्रतिनिधि चुनने का अवसर मिल जाता है तथा
5. इसमें प्रतिनिधि मतदाताओं से अपना संपर्क बनाए रख सकते हैं। जनता भी अपने प्रतिनिधियों के काम की निगरानी कर सकती है।

प्र.2. प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के दोष लिखिए।
Write the demerits of direct election system.

उत्तर परंतु प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति की कुछ विद्वानों ने कड़ी आलोचना की है। इन आलोचकों का कहना है कि सब मतदाता अपने मताधिकार को उचित रीति से प्रयोग करने की आवश्यक योग्यता नहीं रखते। साधारण मतदाता पर मतदान करते समय अनेक प्रकार का दबाव डाला जा सकता है और डाला जाता है क्योंकि उसमें योग्य व्यक्ति को निर्वाचित करने की योग्यता नहीं होती। धर्म, जाति, संप्रदाय तथा आर्थिक हित की दुहाई देकर भोले-भाले मतदाताओं को बहकाया जाता है। परिणाम यह होता है कि अवांछनीय उम्मीदवार निर्वाचन में सफल हो जाते हैं।

परंतु **लॉर्ड ब्रोघम** (Lord Brougham) का कहना है कि, "यदि साधारण जनता इस योग्य है कि वह उन लोगों का चुनाव कर सके जो वास्तविक प्रतिनिधियों का निर्वाचन करेंगे, तो उसे इस योग्य भी समझना चाहिए कि वह स्वयं वास्तविक प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें।"

प्र.3. निर्वाचन प्रणाली को परिभाषित कीजिए।
Define election system.

उत्तर साधारणतया निर्वाचन के दो रूप हैं—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष।

प्रत्यक्ष निर्वाचन उसे कहते हैं जहाँ मतदाता अपने प्रतिनिधियों को स्वयं निर्वाचित करते हैं। वे प्रतिनिधियों के चुनाव में स्वयं मत देते हैं। इसके विपरीत अप्रत्यक्ष प्रणाली में मतदाता प्रतिनिधियों के चुनाव में स्वयं भाग नहीं लेते बल्कि कुछ ऐसे लोगों को चुनते हैं जो उसके बदले में प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं अर्थात् प्रतिनिधियों का निर्वाचन मतदाता द्वारा निर्वाचित एक निर्वाचक मंडल (Electoral College) द्वारा होता है, स्वयं मतदाता द्वारा नहीं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष निर्वाचन में एक बार मतदाता निर्वाचक मंडल का निर्वाचन करते हैं और दूसरी बार निर्वाचक मंडल का सदस्य प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं। उदाहरणस्वरूप भारत में लोकसभा तथा राज्य की विधानसभाओं के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष प्रणाली से होता है। जनता स्वयं चुनाव में भाग लेती है और प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है। इसके विपरीत राज्य सभा और राज्य की विधानसभा के प्रतिनिधियों का चुनाव अप्रत्यक्ष प्रणाली से होता है। जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति इसके चुनाव में भाग लेते हैं, स्वयं जनता नहीं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. अलगाववाद की राजनीति क्या है?
What is the politics of separatism?

उत्तर अलगाववाद की एक व्यापक परिभाषा यह है कि यह किसी बड़े समूह से सांस्कृतिक, जातीय, आदिवासी, धार्मिक, नस्लीय, सरकारी या लैंगिक अलगाव की स्थिति की माँग है। अत: जो लोग देश के किसी हिस्से को उससे अलग करना चाहते हैं, उन्हें अलगाववादी कहा जाता है।

प्र.5. अलगाव और एकीकरण की क्या अवधारणा है?
What is the concept of separation and integration?

उत्तर अवलोकन सामाजिक अलगाव "सामाजिक संबंधों में एक शर्त है जो कम डिग्री के एकीकरण या सामान्य मूल्यों और व्यक्तियों के बीच या किसी व्यक्ति के बीच या समुदाय या कार्य वातावरण में लोगों के समूह के बीच अलगाव या अलगाव की उच्च डिग्री से दर्शाती है।" यह कई शास्त्रीय और समकालीन सिद्धांतकारों द्वारा विकसित एक सामाजिक अवधारणा है।

प्र.6. भारत में चुनाव व्यवस्था को बताइए।
State the election arrangement in India.

उत्तर भारत में चुनावों का आयोजन भारतीय संविधान के तहत बनाए गए भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है। यह एक अच्छी तरह स्थापित परम्परा है कि एक बार चुनाव प्रक्रिया शुरू होने के बाद कोई भी अदालत चुनाव आयोग द्वारा परिणाम घोषित किए जाने तक किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।

प्र.7. मतदान व्यवहार का क्या अर्थ है?
What is the meaning of voting behaviour?

उत्तर मतदान व्यवहार को निर्वाचक व्यवहार के रूप में भी जाना जाता है। वह राजनीतिक व्यवहार का ही एक रूप है। इसका आशय किसी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में चुनाव के संदर्भ में मतदाताओं के व्यवहार से है।
मतदान व्यवहार (या मतदान व्यवहार का अध्ययन) को निम्नलिखित तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है—
प्लानो एण्ड रिग्स—"सार्वजनिक चुनाव में लोग किस प्रकार वोट देते हैं, इससे संबंधित अध्ययन क्षेत्र ही मतदान व्यवहार है और इसमें वे कारण भी शामिल हैं कि लोग मतदान उसी प्रकार क्यों करते हैं।"
गार्डन मार्शल—"मतदान व्यवहार का अध्ययन उन निर्धारकों पर एकाग्र होता है कि लोग एक खास तरीके से क्यों मतदान करते हैं तथा इस बारे में लिए गए निर्णय तक कैसे पहुंचते हैं।"

प्र.8. चुनाव स्थान से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by polling station?

उत्तर जिस स्थान पर चुनाव होता है, उसे चुनाव-स्थान कहते हैं। चुनाव के पहले ही स्थान निश्चित कर दिया जाता है और इसकी सूचना मतदाताओं को दे दी जाती है। यहाँ पर चुनाव की देख-रेख करने वाले बहुत से पदाधिकारी होते हैं। समस्त निर्वाचन क्षेत्र की देख-रेख करने वाले पदाधिकारी को चुनाव-अधिकारी (Returning officer) कहा जाता है। निर्वाचन-संबंधी आदेश उसी के नाम पर जारी होते हैं।

प्र.9. निर्वाचन आयोग को परिभाषित कीजिए।
Define election commission.

उत्तर संविधान के अनुच्छेद 324 में चुनाव की व्यवस्था के लिए चुनाव आयोग का उल्लेख किया गया है। चुनाव आयोग में मुख्य चुनाव आयुक्त (Chief election commissoner) तथा दो अन्य चुनाव आयुक्त होंगे जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करें। राष्ट्रपति मुख्य चुनाव आयुक्त तथा अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति करते समय संसद द्वारा पारित कानूनों का ध्यान रखेगा। राष्ट्रपति चुनाव आयुक्त के परामर्श पर आवश्यक क्षेत्रीय आयुक्तों की नियुक्ति करेगा। ये क्षेत्रीय आयुक्त चुनाव आयुक्त की सहायता करेंगे।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के गुण व दोषों का उल्लेख कीजिए।
Mention the merits and demerits of indirect election system.

उत्तर

अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के गुण
(Merits of Indirect Election System)

अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के पक्षपोषकों का कथन है कि निर्वाचन को अप्रत्यक्ष बनाकर ही सार्वजनिक मताधिकार (Universal franchise) और भीड़ तंत्र (Mob fule) के दोषों से छुटकारा मिल सकता है। इस पद्धति में वास्तविक प्रतिनिधियों को निर्वाचन करने का अधिकार निर्वाचन मंडल (Electoral College) के थोड़े चुनिंदा आदमियों के हाथ में होता है, जो अपेक्षाकृत बुद्धिमान और जिम्मेदार होते हैं तथा जिनका राजनीतिक ज्ञान अच्छा होता है तो प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते समय वे अधिक उत्तरदायी ढंग से अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति में निर्वाचन के प्रचार और राजनीतिक दलों की दौड़-धूप का भी महत्त्व कम हो जाता है और इस प्रकार दलबंदी के दोष कम हो जाते हैं।
गिलक्राइस्ट के शब्दों में "अप्रत्यक्ष पद्धति के कारण निर्वाचन में विलंब होता है और अप्रत्यक्ष निर्वाचन एक छलनी की भाँति काम करता है जिससे होकर निर्वाचन का ज्वर निकलता रहता है।" अंत में अप्रत्यक्ष निर्वाचन की पद्धति का प्रयोग उन देशों के लिए अत्यंत लाभकारी है, जहाँ की जनता पर्याप्त रूप से शिक्षित तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से व्यवस्थित नहीं है।

अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के दोष
(Demerits of Indirect Election System)

1. अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के दोष वही हैं जो प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के गुण हैं। यह पद्धति लोकतंत्रवाद के विरुद्ध है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति का राजनीतिक महत्त्व कम हो जाता है। उनको अपने प्रतिनिधि के निर्वाचन में प्रत्यक्ष रूप में भाग लेने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है।
2. इसका परिणाम यह होता है कि मतदाता देश की राजनीतिक समस्याओं में आवश्यक दिलचस्पी नहीं लेता और सार्वजनिक कार्यों के प्रति उदासीन हो जाता है। इसके द्वारा नागरिकों का राजनीतिक शिक्षण नहीं होता।
3. इसके द्वारा मतदाता और प्रतिनिधि में संपर्क पैदा नहीं होता इसलिए प्रतिनिधि भी बहुधा उनके हितों के प्रति उदासीन हो जाता है।
4. अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति में दलबंदी के दोष भी कम नहीं होते। वस्तुत: इस पद्धति में राजनीतिक दलों की स्थल-पुथल और अधिक बढ़ जाती है तथा जहाँ पर राजनीतिक दल सुव्यवस्थित अवस्था में है वहाँ पर अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति नाम मात्र की रह जाती है और निर्वाचन वस्तुत: प्रत्यक्ष होता है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति का निर्वाचन संविधान के अनुसार अप्रत्यक्ष होता है, परंतु राजनीतिक दलों के कारण प्रत्येक मनुष्य जानता है कि यह निर्वाचन प्रत्यक्ष होता है।

प्र.2. मतदान व्यवहार के महत्त्व को समझाइए।
Explain the importance of voting behaviour.

उत्तर

मतदान व्यवहार का महत्त्व
(Importance of Voting Behaviour)

सेफोलॉजी अर्थात् चुनाव विश्लेषण राजनीतिक विज्ञान की एक शाखा है जिसमें मतदान व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह एक नई शब्दावली है जिसे अमेरिकी राजनीति विज्ञानियों तथा राजनीतिक समाजशास्त्रीयों ने लोकप्रिय बनाया है।
मतदान का अभिलेखित इतिहास ग्रीक पोलिस तक जाता है। मतदान व्यवहार के लिए आधुनिक शब्द सेफोलॉजी की उत्पत्ति भी शास्त्री ग्रीक सेफोस (Psephos) से हुई है जिसका अर्थ ऐसे मृदभांडों से है जिन पर कतिपय मत उत्कीर्णित रहते थे, विशेष तौर पर राज्य के लिए खतरनाक वस्तुओं से संबंधित।
निम्नलिखित कारणों से मतदान व्यवहार का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है—

1. यह राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया को समझने में सहायक होता है।
2. यह अभिजात्य के साथ-साथ आमजनों में भी लोकतंत्र के अंतस्थिकरण की जांच करने में सहायक होता है।

Toppers PAS

3. यह क्रांतिकारी मत पेटी के वास्तविक प्रभाव का महत्त्व बताता है।
4. यह इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि चुनावी राजनीति किस हद तक अतीत से जुड़ी है या विच्छेदित है।
5. यह राजनीतिक विकास के संदर्भ में आधुनिकता अथवा प्राचीनता को मापने में सहायता करता है।

एनजीएस किनी के अनुसार मतदान व्यवहार को ऐसे समझ सकते हैं—

1. लोकतांत्रिक शासन को वैधता प्रदान करने का एक तरीका।
2. राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता का समावेश कर राजनीतिक समुदाय को एकजुट रखना।
3. निर्णय निर्माण की क्रिया को दर्शाना।
4. एक विशेष प्रकार की राजनीतिक संस्कृति में विनयस्त एक निश्चित राजनीतिक उन्मुखीकरण को संबद्ध करते हुए एक भूमिका अख्तियार करना, अथवा
5. एकल नागरिक का औपचारिक सरकार से सीधे संबंध स्थापित होना।

प्र.3. चुनाव सुधार से सम्बन्धित समितियों का उल्लेख कीजिए।
Mention the committees related to electoral reforms.

उत्तर

चुनाव सुधार से संबंधित समितियाँ
(Committees Related to Electoral Reforms)

विभिन्न समितियों एवं आयोगों ने हमारी चुनाव प्रणाली एवं चुनाव मशीनरी के साथ-साथ चुनाव प्रक्रिया की जांच की है और सुधार के सुझाव दिए हैं। इन समितियों और आयोगों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

1. चुनाव कानूनों में संशोधन पर संयुक्त संसदीय समिति (1971-72)।
2. तारकुंडे समिति का गठन जयप्रकाश नारायण ने अपने संपूर्ण क्रांति आंदोलन के दौरान 1974 में किया था। इस गैर-सरकारी समिति ने 1975 में अपनी रिपोर्ट दी थी।
3. चुनाव सुधार के लिए दिनेश गोस्वामी समिति (1990)।
4. अपराध और राजनीति के बीच के सांठगांठ की जांच करने के लिए वोहरा समिति (1993)।
5. चुनाव सुधार पर भारत के निर्वाचन आयोग की सिफारिशें (1998)।
6. चुनाव खर्च सरकार द्वारा वहन करने पर इंद्रजीत गुप्ता समिति (1998)।
7. चुनाव कानूनों में सुधार पर भारत की विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट (1999)।
8. संविधान के कामकाज की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग (2000-2002)। एम.एन. वेंकटचलैया इस आयोग के अध्यक्ष थे।
9. प्रस्तावित चुनाव सुधारों पर भारत का चुनाव आयोग, की रिपोर्ट (2004)।
10. शासन में नैतिकता के सवाल पर भारत सरकार के दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट (2007)। वीरप्पा मोइली इस आयोग के अध्यक्ष थे।
11. चुनाव कानूनों एवं चुनाव सुधारों से जुड़े तमाम सवालों को देखने के लिए 2010 में गठित तनखा समिति (कोर समिति)।
12. आपराधिक कानून में संशोधन पर जे.एस. वर्मा समिति की रिपोर्ट (2013)।
13. भारतीय विधि आयोग की निर्वाचन निरर्हताएँ पर 244वीं रिपोर्ट (2014)।
14. चुनाव सुधार (2015) पर भारत के 255वें विधि आयोग की रिपोर्ट।

उपरोक्त समितियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं के आधार पर चुनाव प्रणाली, चुनाव मशीनरी और चुनाव प्रक्रिया में कई सुधार किए गए। निम्नलिखित चार भागों में बाँटकर इनका अध्ययन किया जा सकता है—

1. 1996 के पहले के चुनाव सुधार
2. 1996 का चुनाव सुधार
3. 1996 के बाद के चुनाव सुधार
4. 2010 से अब तक के चुनाव सुधार।

TOUCH 'n PASS

प्र.4. अनेक मत प्रणाली या बहुमत प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसके गुण एवं दोष का भी उल्लेख कीजिए।
What do you understand by weighted or plural vote system? Also, mention the merits and demerits of it.

उत्तर

अनेक मत प्रणाली
(Weighted Voting System)

वयस्क मताधिकार का आधुनिक लोकतंत्रीय स्वरूप यह है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को, जो राज्य के निर्वाचन संबंधी कानूनों के अनुसार मतदाता है, एक और केवल एक मतदान करने का अधिकार होना चाहिए। अर्थात् एक वोटर और एक वोट (मत) के नियम (One man one vote system) का पालन होना चाहिए। इसको एक मत प्रणाली (Single vote system) कहते हैं। परंतु कुछ राज्यों में इस प्रणाली के विरुद्ध कुछ मतदाताओं को एक से अधिक मत देने का अधिकार होता है। इसको अनेक मत या बहुमत प्रणाली (Plural or weighted or differential vote system) कहते हैं। बहुमत प्रणाली का आधार **गिलक्राइस्ट** (Gilchrist) के शब्दों में यह माना जाता है कि उन मनुष्यों को एक से अधिक मतदान करने का अधिकार होता है, जिनका राज्य में अधिक हित हो या जो अपेक्षाकृत मताधिकार का प्रयोग करने के अधिक योग्य हों। बेल्जियम में 1893 के संशोधित संविधान के अनुसार प्रत्येक 25 वर्षीय पुरुष को एक मत देने का अधिकार था। परंतु प्रत्येक ऐसे पुरुष को जिसकी अवस्था 25 वर्ष हो, नियमित विवाह द्वारा जिसकी संतान मौजूद हो और राज्य को 5 फ्रेंक टैक्स प्रतिवर्ष देता हो, दो मत देने का अधिकार था तथा ऐसे 25 वर्षीय पुरुष को, जिसके पास किसी विश्वविद्यालय की सनद हो या वह किसी सार्वजनिक पद पर रह चुका हो, तीन मत देने का अधिकार था। परंतु तीन मत से अधिक मत देने का किसी को भी अधिकार नहीं था। बेल्जियम के अतिरिक्त अन्य देशों में भी अतिरिक्त या बहुमत प्रणाली को अपनाया गया। भारत में नये संविधान के अंतर्गत ग्रेजुएट और हायर सेकेंडरी (उच्चतर माध्यमिक) स्कूलों तथा उनसे ऊपर के शिक्षणालयों के अध्यापकों को दो मत प्राप्त हैं।

अनेक मत प्रणाली के गुण (Merits of Weighted Voting System)

बहुमत या अनेक मत प्रणाली के पक्ष में सर्वप्रथम युक्ति दी जाती है कि इसके द्वारा सार्वजनिक मताधिकार (Universal franchise) के दोषों को कम किया जा सकता है। सार्वजनिक मताधिकार के द्वारा अशिक्षित और अज्ञानी मनुष्यों को मताधिकार प्राप्त हो जाता है, जिनको पेशेवर पोलिटिशियन सरलता से पथभ्रष्ट कर देते हैं। अनेक मत प्रणाली के द्वारा मनुष्यों को एक से अधिक मतदान करने का अधिकार देकर इस दोष को दूर किया जा सकता है जो मताधिकार का प्रयोग करने की अपेक्षाकृत अधिक योग्यता रखते हैं या जिनको राज्य की व्यवस्था से अपेक्षाकृत अधिक हित संबद्ध है। दूसरे, **जॉन स्टुअर्ट मिल** के अनुसार मनुष्य को मताधिकार से वंचित रखना अन्याय हो सकता है, परंतु साथ ही प्रत्येक मनुष्य के मत को समान महत्त्व देना भी अन्याय ही है। एक सुशिक्षित और एक मूर्ख के मत को समान महत्त्व देना असंगत, अन्याययुक्त और अनुचित नहीं तो और क्या है? राज्य में अशिक्षित मनुष्यों के मत को संतुलित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षित मनुष्यों को अतिरिक्त मतदान करने का अधिकार प्रदान किया जाए। **मिल** कहता है कि, "मतों की गणना नहीं होनी चाहिए वरन् उनका वजन किया जाना चाहिए।"

अनेक मत प्रणाली के दोष
(Demerits of Weighted Voting System)

आधुनिक काल में राजनीतिज्ञों की प्रवृत्ति एक मत प्रणाली की ओर है।

1. इसका प्रथम कारण यह है कि अनेक मत प्रणाली लोकतंत्रवाद के विरुद्ध है। इसके द्वारा अल्पसंख्यक लोगों को बहुसंख्यक जनता की इच्छा के विरुद्ध प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रथा के अनुसार उस राजनीतिक दल को राजशक्ति हस्तगत करने का अधिकार प्राप्त होता है जो संपत्तिशाली एवं शिक्षित मध्यवर्ग के अनुकूल हो।
2. यह निर्णय करना सरल नहीं है कि मताधिकार का उचित प्रयोग करने की किसमें अधिक योग्यता है। यह गारंटी के साथ नहीं कहा जा सकता कि एक मामूली ग्रेजुएट एक कारखाने में काम करने वाले चतुर कारीगर से अधिक योग्य है। संपत्ति को अतिरिक्त मताधिकार का आधार बनाना शासन-सूत्र को धनिक वर्ग के हाथ में सुपुर्द करना है।
3. अंत में अनेक मत प्रणाली समानता के सिद्धांत के प्रतिकूल है, जो लोकतंत्र का एक सुनिश्चित आधार है।

TOUCH n PASS

प्र.5. चुनाव आयोग के कार्यों का वर्णन कीजिए।
Describe the functions of the election commission.

उत्तर

चुनाव आयोग के कार्य
(Functions of the Election Commission)

चुनावों से संबंधित समस्त व्यवस्था करना चुनाव आयोग का कार्य है। इस संबंध में प्रमुख रूप से उसके निम्नांकित कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है—

1. **चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन या सीमांकन**—चुनाव आयोग का सर्वप्रथम कार्य चुनाव क्षेत्रों का सीमांकन होता है। प्रथम आम चुनाव में निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950' के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए आदेश के आधार पर किया गया था। लेकिन यह व्यवस्था संतोषजनक नहीं पायी गई। अत: संसद ने 'परिसीमन आयोग अधिनियम 1952' पारित किया। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि दस वर्ष बाद होने वाली प्रत्येक जनगणना के उपरांत निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन किया जाना चाहिए। मुख्य चुनाव आयुक्त इस परिसीमन आयोग का अध्यक्ष होता है। आयोग की सहायता के लिए प्रत्येक राज्य से 2 से लेकर 7 तक सहायक सदस्यों का प्रावधान है।
2. **मतदाता सूचियाँ तैयार करना**—चुनाव आयोग के द्वारा लोकसभा या विधानसभा के प्रत्येक चुनाव या मध्यावधि चुनाव के पूर्व मतदाता सूचियाँ तैयार करवायी जाती हैं और इस कार्य के संपन्न होने पर ही चुनाव होते हैं। मतदाता सूची तैयार करने का कार्य इस उद्देश्य से किया जाता है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति मताधिकार से वंचित न रहे जो मताधिकार की योग्यता रखता है।
3. **विभिन्न राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करना**—चुनाव आयोग का एक महत्त्वपूर्ण कार्य विभिन्न राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करना है। इस संबंध में आयोग के द्वारा कोई आधार निश्चित किया जा सकता है। चुनाव आयोग द्वारा मान्यता प्रदान किए जाने के आधार में समय-समय पर परिवर्तन किए जा सकते हैं और किए जाते रहे हैं। वर्तमान नियम के अनुसार राष्ट्रीय दलों के रूप में किसी दल को मान्यता तभी प्राप्त हो सकती है, जबकि अन्य चुनाव में उसे कम-से-कम चार राज्यों में 4 प्रतिशत मत मिले हों।
4. **राजनीतिक दलों को आरक्षित चुनाव चिह्न प्रदान करना**—आयोग मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को आरक्षित चुनाव चिह्न प्रदान करता है। यदि चुनाव चिह्न के प्रश्न पर दो राजनीतिक दलों के बीच कोई विवाद उत्पन्न हो जाए तो इस स्थिति में आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष और न्यायिक ढंग से विवाद का निपटारा करेगा।
5. **अर्द्ध न्यायिक कार्य**—संविधान के द्वारा आयोग को कुछ अर्द्ध न्यायिक कार्य भी सौंपे गए हैं जिसमें दो उल्लेखनीय है। अनुच्छेद 103 के अंतर्गत राष्ट्रपति संसद के सदस्यों की अयोग्यताओं के संबंध में परामर्श कर सकता है तथा 192वें अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य विधानमंडल के सदस्यों के संबंध में यह अधिकार राज्यों के राज्यपालों को दिया गया है।
6. **अन्य कार्य**—आयोग को उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी सौंपे गए हैं जो इस प्रकार हैं—

(क) राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता तैयार करना।
(ख) राजनीतिक दलों को आकाशवाणी पर चुनाव प्रचार की सुविधाएँ दिलवाना।
(ग) उम्मीदवारों द्वारा किए जाने वाले कुछ व्यय की राशि निश्चित करना।
(घ) मतदाताओं को राजनीतिक प्रशिक्षण देना।
(ङ) चुनाव याचिकाओं आदि के संक्षेप में सरकार को आवश्यक परामर्श देना।

इन सबके अतिरिक्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समय-समय पर सरकार को अपने कार्यों के संबंध में प्रतिवेदन देता रहेगा और चुनाव प्रक्रिया के सुधार के लिए सुझाव देता रहेगा। चुनाव आयोग मतदान की तिथियों की घोषणा करता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत के संविधान में वर्णित निर्वाचन व्यवस्था से सम्बन्धित उपबंधों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Explain in detail the provisions relating to the electoral system mentioned in the constitution of India.

उत्तर

निर्वाचन व्यवस्था
(Electoral System)

संविधान के भाग-XV में अनुच्छेद 324 से 329 तक में हमारे देश के निर्वाचन से संबंधित अग्र उपबंधों का उल्लेख है—

TOUCH 'n' PASS

1. संविधान (अनुच्छेद 324) देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की व्यवस्था करता है। संसद, राज्य विधायिका, राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति के चुनावों के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण की शक्ति निर्वाचन आयोग में निहित है वर्तमान समय में निर्वाचन आयोग में एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा दो निर्वाचन आयुक्त हैं।
2. संसद तथा प्रत्येक राज्य विधायिका के चुनाव के लिए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में केवल एक मतदाता सूची होनी चाहिए। इस प्रकार संविधान ने सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा अलग मतदाता सूची की उस व्यवस्था को खत्म कर दिया है जो देश के विभाजन को बढ़ावा देती है।
3. कोई व्यक्ति मतदाता सूची में नामित होने के लिए केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर अपात्र नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र की मतदाता सूची में केवल धर्म, नस्ल, जाति, अथवा लिंग अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर दावा नहीं कर सकता। इस प्रकार संविधान ने मतदान में प्रत्येक नागरिक की समानता को स्वीकार किया है।
4. लोकसभा तथा राज्य विधानसभा के लिए निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति जो भारतीय नागरिक है तथा 18 वर्ष की आयु का है, निर्वाचन में मत देने का अधिकार प्राप्त कर लेता है यदि वह संविधान के उपबंधों अथवा उपयुक्त विधायिका (संसद अथवा राज्य विधायिका) द्वारा निर्मित के अधीन अनिवास, चित्तवृत्ति, अपराध या भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर अन्यथा निहित नहीं कर दिया जाता है।
5. संसद उन सभी व्यवस्थाओं का उपबंध कर सकती है जो संसद तथा राज्य विधायिकाओं के निर्वाचन मतदाता सूची की तैयारियों, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा सभी मामले जो संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।
6. राज्य विधायिका भी स्वयं के निर्वाचन से संबंधित सभी मामलों में, मतदाता सूची की तैयारियों के संबंध में तथा संबंधित संवैधानिक व्यवस्थाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक सभी मामलों में उपबंध बना सकती है। परन्तु वे केवल उन्हीं मामलों में उपबंध बना सकते हैं, जो संसद के कार्यक्षेत्र में नहीं आते हैं। दूसरे शब्दों में, वे केवल संसदीय विधि के अनुपूरक हो सकते हैं और उस पर अभिभावी नहीं हो सकते।
7. संविधान घोषणा करता है कि निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन अथवा इन निर्वाचन क्षेत्रों के लिए आवंटित स्थानों से संबंधित विधियों पर न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। परिणामस्वरूप परिसीमन आयोग द्वारा पारित आदेश अंतिम होते हैं तथा उन्हें किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
8. संविधान के अनुसार संसद अथवा राज्य विधायिका के निर्वाचन पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता, केवल एक निर्वाचन याचिका के जो ऐसे प्राधिकारों के समक्ष ऐसे तरीके से प्रस्तुत की जाए जिसका उपबंध उपयुक्त विधायिका ने किया हो। 1966 से चुनावी याचिका पर सुनवाई अकेले उच्च न्यायालय करता है किंतु अपील का अधिकार क्षेत्र केवल उच्चतम न्यायालय में है।

अनुच्छेद 323 ख विधायिका (संसद अथवा विधायिका) को निर्वाचन विवादों के निर्णय के लिए अधिकरण के गठन की शक्ति प्रदान करता है। ये ऐसे विवादों को सभी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों से (उच्चतम न्यायालय के विशेष अवकाश अपील अधिकार क्षेत्र को छोड़कर) बाहर रखने का भी उपबंध करता है। अभी तक ऐसे किसी अधिकरण का गठन नहीं किया गया है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि चंद्रकुमार मामले (1997) में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि यह उपबंध असंवैधानिक है। यदि किसी समय ऐसा कोई अधिकरण गठित किया जाता है तो इसके निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

निर्वाचन से सम्बन्धित अधिकारी
(Officers Related to Election)

निर्वाचन से सम्बन्धित आयोग एवं अधिकारी निम्न प्रकार हैं—

भारत का निर्वाचन आयोग (ई.सी.आई.)—भारत के संविधान के अनुच्छेद 324 के अंतर्गत भारत के निर्वाचन आयोग को लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं के चुनावों का अधीक्षण निर्देशन तथा नियंत्रण का अधिकार प्राप्त है। भारत का निर्वाचन आयोग एक तीन सदस्यीय निकाय है जिसमें एक मुख्य चुनाव आयुक्त तथा दो चुनाव आयुक्त होते हैं। भारत के राष्ट्रपति मुख्य चुनाव आयुक्त तथा चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति करते हैं।

मुख्य निर्वाचन अधिकारी (सी.ई.ओ.)—किसी राज्य/संघीय क्षेत्र का मुख्य चुनाव अधिकारी उस राज्य अथवा संघीय क्षेत्र में चुनाव कार्यों का पर्यवेक्षण करने को अधिकृत है, जिसका निर्वाचन आयोग अधीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण करता है। निर्वाचन

आयोग राज्य सरकार/संघीय क्षेत्र की सरकार के किसी अधिकारी को राज्य सरकार। संघीय क्षेत्र प्रशासन के परामर्श से मुख्य चुनाव अधिकारी नामित करता है।

जिला निर्वाचन अधिकारी (डी.ई.ओ.)—मुख्य निर्वाचन अधिकारी के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण में जिला निर्वाचन अधिकारी जिले में चुनाव कार्य का पर्यवेक्षण करता है। भारत का निर्वाचन आयोग राज्य सरकार के किसी अधिकारी को राज्य सरकार की सलाह पर जिला निर्वाचन अधिकारी नामित अथवा पद नामित करता है।

चुनाव अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) (आर.ओ.)—किसी संसदीय अथवा विधान सभा क्षेत्र के चुनाव कार्य के संचालन के लिए चुनाव अधिकारी उत्तरदायी होता है। भारत का निर्वाचन आयोग राज्य सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकार के किसी पदाधिकारी को राज्य सरकार/संघीय क्षेत्र प्रशासन के परामर्श से प्रत्येक विधान सभा एवं संसदीय चुनाव क्षेत्र में एक चुनाव पदाधिकारी को नामित करता है। इसके अतिरिक्त भारत का निर्वाचन आयोग प्रत्येक विधान सभा तथा संसदीय चुनाव क्षेत्र में चुनाव अधिकारी के कार्यों में सहयोग देने के लिए एक या अधिक सहायक चुनाव अधिकारी भी नियुक्त करता है।

चुनाव निबंधन पदाधिकारी (इलेक्टॉरल रजिस्ट्रेशन ऑफिसर) (ई.आर.ओ.)—संसदीय चुनाव क्षेत्र में मतदाता सूची आदि को तैयार करने के लिए चुनाव पंजीकरण अधिकारी उत्तरदायी होता है। भारत का निर्वाचन आयोग राज्य/संघीय शासन के परामर्श से सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकार में किसी अधिकारी को चुनाव पंजीकरण अधिकारी नियुक्त करता है। चुनाव पंजीकरण अधिकारी के सहयोग के लिए भारत का निर्वाचन आयोग एक या अधिक सहायक चुनाव पंजीकरण अधिकारियों की नियुक्ति कर सकता है।

पीठासीन अधिकारी (प्रिजाइडिंग ऑफिसर) (पी.ओ.)—पीठासीन अधिकारी मतदान अधिकारियों के सहयोग से मतदान केन्द्र पर मतदान कार्य सम्पन्न कराता है। जिला निर्वाचन अधिकारी पीठासीन अधिकारियों एवं मतदान अधिकारियों की नियुक्ति करता है। संघीय क्षेत्रों के मामले में चुनाव अधिकारी ऐसी नियुक्तियां करता है।

पर्यवेक्षक—भारत का चुनाव आयोग संसदीय तथा राज्य विधायिकाओं के चुनाव के लिए सरकारी अधिकारियों का मनोनयन करता है। ये पर्यवेक्षक कई प्रकार के होते हैं—

1. **सामान्य पर्यवेक्षक**—आयोग चुनावों को सुचारू रूप में संपन्न कराने के लिए सामान्य पर्यवेक्षक नियुक्त करता है। इन्हें स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के लिये चुनाव प्रक्रिया के हर चरण पर ध्यान रखना पड़ता है।
2. **व्यय पर्यवेक्षक**—केंद्रीय सरकार सेवा से व्यय पर्यवेक्षक नियुक्त किए जाते हैं, जिनका काम होता है—उम्मीदवारों के चुनाव खर्च पर कड़ी निगरानी रखना। इन्हें यह भी देखना है कि वोटरों को पूरी चुनाव प्रक्रिया के दौरान कोई लालच तो नहीं दिया जा रहा है।
3. **पुलिस पर्यवेक्षक**—आयोग भारतीय पुलिस सेवा के अफसरों को पुलिस पर्यवेक्षकों के रूप में राज्य तथा जिला स्तर पर तैनात करता है। यह चुनाव क्षेत्र की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है। ये पर्यवेक्षक पुलिस की तैनाती से संबंधित सभी प्रतिविधियों कानून और व्यवस्था की स्थिति पर नजर रखते हैं। ये पर्यवेक्षक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के लिए नागरिक तथा पुलिस प्रशासन में समन्वय बनाता है।
4. **जागरूकता पर्यवेक्षक**—पहली बार 16वें लोकसभा चुनाव (2014) में आयोग ने केंद्रीय जागरूकता पर्यवेक्षक बहाल किये जिन्हें फील्ड स्तर पर चुनाव प्रक्रिया के कुशल तथा प्रभावकारी प्रबंधन को देखना था। खासकर वोटरों में जागरूकता को लेकर जागरूकता पर्यवेक्षकों को लगाया जाता है कि वे चुनावी मशीनरी द्वारा किये जा रहे हस्तक्षेप की निगरानी करे कि अधिक-से-अधिक लोग चुनाव प्रक्रिया में भाग लें। वे RPAct, 1951 मीडिया संबंधी पक्षों को निगरानी करेंगे। ये जिला स्तर पर पेड न्यूज की समस्या से निबटने के लिए आयोग द्वारा तैयार किये गए उपाय का पर्यवेक्षण करें।
5. **लघुस्तरीय पर्यवेक्षक**—सामान्य पर्यवेक्षक के अलावा आयोग लघुस्तरीय पर्यवेक्षक भी बहाल करता है। इनका काम है कि चुने हुए पोलिंग स्टेशनों पर चुनाव के दिन वोटिंग प्रक्रिया का पर्यवेक्षण करें। ये केंद्र सरकार या केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों के अधिकारियों में से चुने जाते हैं। ये पर्यवेक्षक पोलिंग स्टेशनों पर BMF को जांचते हैं और चुनाव शुरू होने के पूर्व उसे प्रभाजित करते हैं। वे पोलिंग के दिन पोलिंग स्टेशनों के कार्यों का पर्यवेक्षण करते हैं। यह प्रक्रिया चुनाव अभ्यास से शुरू होकर पोलिंग की समाप्ति तक चलती है। वे EVM को सील एवं दूसरे दस्तावेजों को सील करते हैं यह सुनिश्चित करने के लिए कि आयोग के सारे निर्देश का पालन पोलिंग पार्टियों तथा पोलिंग ऐजेंटों द्वारा हो रहा है। वे इसके अलावा अपने पोलिंग स्टेशनों के अंदर पोल प्रक्रिया में गड़बड़ी का सीधे सामान्य पर्यवेक्षकों को सूचित करते हैं।

TOUCH 'n PASS

6. **सहायक व्यय पर्यवेक्षक**—व्यय पर्यवेक्षकों के अलावा सहायक व्यय पर्यवेक्षक भी हरेक विधानसभा क्षेत्र में नियुक्त किये जाते हैं। यह इस बात को सुनिश्चित करने के लिए सभी प्रमुख चुनाव प्रचार की घटना की वीडियोग्राफी हो और चुनावी अनियमितता की शिकायतों का तुरंत ही निवारण हो।

प्र.2. चुनाव प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन कीजिए।
Explain the election process in detail.

उत्तर

चुनाव प्रक्रिया
(Election Process)

चुनाव का समय—लोकसभा तथा प्रत्येक राज्य विधानसभा के हर पांच वर्ष पर चुनाव होते हैं। राष्ट्रपति पाँच वर्ष पूरा होने के पहले भी लोकसभा को भंग कर सकते हैं, अगर सरकार लोकसभा में बहुमत खो देती है तथा किसी वैकल्पिक सरकार की संभावना नहीं होती है।

चुनाव कार्यक्रम (शेड्यूल ऑफ इलेक्शन)—जब पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा हो जाता है अथवा विधायिका को भंग कर दिया जाता है और नये चुनाव की घोषणा होती है तब निर्वाचन आयोग चुनाव कराने के लिए अपने तंत्र को उपयोग में लाता है। संविधान यह उल्लेख करता है कि भंग लोकसभा के अंतिम सत्र तथा नई लोकसभा के गठन के बीच छह माह से अधिक का अंतराल नहीं होगा। इसलिए चुनाव इसी बीच करा लेना होगा।

आमतौर पर निर्वाचन आयोग चुनाव प्रक्रिया की शुरूआत के कुछ सप्ताह पहले एक संवाददाता सम्मेलन में नये चुनाव की घोषणा करता है। इस घोषणा के उपरांत उम्मीदवारों एवं राजनीतिक दलों पर चुनाव आचार संहिता तत्काल लागू हो जाती है।

(i) इससे मतगणना की प्रक्रिया आसान और द्रुत हो जाती है।
(ii) इसके उपयोग से कागज की खपत बहुत कम हो जाती है जिसका सीधा पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव होता है।
(iii) इससे छपाई की लागत बहुत कम हो जाती है क्योंकि इस प्रक्रिया में प्रत्येक मतदान केन्द्र में केवल एक मतपत्र की ही आवश्यकता रह जाती है।

चुनावों का पर्यवेक्षण—चुनाव आयोग बड़ी संख्या में पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करता है जो यह सुनिश्चित करते हैं कि मतदान स्वतंत्र और निष्पक्ष ढंग से कराए गए और लोगों ने अपनी पसंद का उम्मीदवार चुना। चुनाव खर्च पर्यवेक्षक उम्मीदवार और दल के चुनाव खर्च की निगरानी करते हैं।

मतगणना—जब मतदान सम्पन्न हो जाता है चुनाव अधिकारी तथा पर्यवेक्षक की देखरेख में मतगणना की प्रक्रिया आरंभ होती है। मतगणना समाप्त होने के पश्चात् चुनाव अधिकारी सबसे अधिक मत पाने वाले उम्मीदवार का नाम विजयी उम्मीदवार के रूप में घोषित करते हैं।

लोकसभा चुनाव 'फर्स्ट पास्ट दि पोस्ट' पद्धति के अनुसार कराए जाते हैं। देश को चुनाव क्षेत्रों के रूप में अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है। मतदाता एक उम्मीदवार के लिए एक मत देते हैं और सबसे अधिक मत पाने वाला उम्मीदवार विजयी घोषित किया जाता है।

राज्य विधान सभा चुनाव भी लोकसभा चुनावों की तर्ज पर ही होते हैं जिनमें राज्यों और संघ शासित प्रदेशों को एकल-सदस्य चुनाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है।

जन-माध्यमों में कवरेज—चुनावी प्रक्रिया को अधिक से अधिक पारदर्शी बनाने के लिए जन-माध्यमों (मीडिया) को चुनाव प्रक्रिया के कवरेज के लिए प्रोत्साहित किया जाता है तथापि मतदान की गोपनीयता को बनाए रखा जाता है। मीडिया कर्मियों को मतदान केन्द्रों तक पहुंचने के लिए विशेष पास दिए जाते हैं ताकि वे मतदान प्रक्रिया का कवरेज करें तथा मतगणना पत्रों में भी मतगणना पूरी प्रक्रिया का संज्ञान लें।

चुनाव याचिका—कोई भी चुनावकर्ता अथवा उम्मीदवार चुनाव याचिका दायर कर सकता है यदि उसे यह विश्वास हो कि चुनाव में कदाचार हुआ है। चुनाव याचिका एक सामान्य सिविल याचिका नहीं होती बल्कि इसमें पूरा चुनाव क्षेत्र संलग्न होता है। चुनाव याचिका की सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय में सुनवाई होती है, यदि शिकायत सही पाई गई तो निर्वाचन क्षेत्र में दोबारा चुनाव कराए जा सकते हैं।

चुनाव प्रचार—प्रचार वह अवधि है, जबकि राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों को सामने लाते हैं तथा अपने दल तथा उम्मीदवारों के पक्ष में मत डालने के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करने के लिए एक सप्ताह का समय

TOUCH 'n' PASS

मिलता है। नामांकन पत्रों की जाँच चुनाव अधिकारी करते हैं। नामांकन पत्र सही नहीं पाये जाने पर एक सुनवाई के पश्चात् उन्हें अस्वीकृत कर दिया जाता है। वैध नामांकन वाले उम्मीदवार नामांकन पत्र जांच के दो दिन के अंदर अपना नामांकन वापस ले सकते हैं। औपचारिक चुनाव प्रचार उम्मीदवारों की सूची के प्रकाशन से मतदान समाप्त होने के 48 घंटे पूर्व कम से कम दो सप्ताह चलता है।

चुनाव प्रचार के दौरान चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों तथा राजनीतिक दलों से यह अपेक्षा की जाती है कि निर्वाचन आयोग द्वारा राजनीतिक दलों की आम सहमति के आधार पर तैयार की गई आदर्श आचार संहिता का वे पालन करेंगे। आचार संहिता में ऐसे मार्ग-निर्देश दिए हुए हैं कि राजनीतिक दलों तथा उम्मीदवारों को चुनाव प्रचार के दौरान किस प्रभार का व्यवहार करना चाहिए। इसका उद्देश्य चुनाव प्रचार में स्वस्थ तरीकों का इस्तेमाल करना, राजनीतिक दलों एवं उम्मीदवारों अथवा उनके समर्थकों के बीच संघर्षों एवं झगड़ों को रोकना तथा शांति व्यवस्था तब तक बनाए रखना है जब तक कि परिणाम घोषित न कर दिए जाएं। आचार संहिता केन्द्र अथवा राज्य में सत्तारूढ़ दल के लिए भी मार्ग-निर्देश तय करती है, जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि चुनाव बराबरी के आधार पर लड़ा गया और ऐसी कोई शिकायत सामने नहीं आई, जिसमें कि सत्तारूढ़ दल को चुनाव प्रचार के दौरान अपनी सरकारी स्थिति का उपयोग किया हो।

एक बार जब चुनावों की घोषणा हो जाती है, विभिन्न दल अपने चुनाव घोषणा-पत्र जारी करना शुरू कर देते हैं, जिनमें उन कार्यक्रमों की जानकारी होती है जिन्हें वे चुनाव जीतकर सरकार बनाने के पश्चात् लागू करना चाहते हैं। इनमें दल अपने नेताओं के सामर्थ्य एवं विरोधी दलों एवं उनके नेताओं की कमियों एवं विफलताओं की चर्चा की जाती है। दलों एवं मुद्दों की पहचान के लिए नारों का इस्तेमाल किया जाता है ,मतदाताओं के बीच इश्तहार एवं पोस्टर आदि वितरित किए जाते हैं। पूरे निर्वाचन क्षेत्र में रैलियां की जाती हैं, जिनमें उम्मीदवार अपने समर्थकों को उत्साहित करते हैं और विरोधियों की आलोचना करते हैं। व्यक्तिगत अपील और वादे भी उम्मीदवार मतदाताओं से करते हैं जिससे कि उन्हें अधिक से अधिक संख्या में अपने समर्थन में लाया जा सके।

मतदान दिवस—अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों के लिए सामान्यतया मतदान की तिथियां अलग-अलग होती हैं। ऐसा सुरक्षा प्रबंधों को प्रभावी बनाने तथा मतदान की व्यवस्था में लगे लोगों को अनुश्रवण का पूरा अवसर देने और यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि चुनाव स्वतंत्र एवं निष्पक्ष हैं।

मतपत्र एवं चुनाव चिह्न—जब उम्मीदवारों के नामांकन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है, चुनाव अधिकारी द्वारा चुनाव लड़ रहे उम्मीदवारों की एक सूची बनाई जाती है तथा मतदान पत्र छपवाए जाते हैं। मतपत्रों पर उम्मीदवारों के नाम (चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित की गई भाषाओं में) तथा उन्हें आवंटित चुनाव चिह्न छपे रहते हैं। मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवारों को उनके दल का चुनाव चिह्न आवंटित किया जाता है।

मतदान प्रक्रिया—मतदान गुप्त होता है। सार्वजनिक स्थलों पर मतदान केन्द्र स्थापित किए जाते हैं, जैसे—विद्यालय या सामुदायिक भवन आदि अधिक-से-अधिक मतदाता मताधिकार का प्रयोग करें, यह सुनिश्चित करने के लिए निर्वाचन आयोग यह सुनिश्चित करने की कोशिश करता है कि प्रत्येक मतदाता से मतदान केन्द्र की दूरी 2 किमी से अधिक नहीं हो साथ ही किसी भी मतदान केन्द्र में 1500 से अधिक मतदाता नहीं आए।

मतदान केन्द्र में प्रवेश करते ही मतदाता का नाम मतदाता सूची में देख-मिलाकर उसे एक मतदान पत्र प्रदान किया जाता है। मतदाता अपने पसंद के उम्मीदवार के चुनाव चिह्न पर या उसके पास मुहर लगाता है। यह कार्यवाही मतदान केन्द्र में ही एक अलग छोटे-से कक्ष में होती है। मुहर लगाने के बाद मतदाता मतपत्र को मोड़कर एक साझी मतपेटी में पीठासीन अधिकारी तथा मतदान ऐजेंटों के सामने डालता है। चिह्न लगाने की इस प्रक्रिया से मतपत्रों को मतपेटी से वापस निकाले जाने की संभावना जाती रहती है।

1998 से निर्वाचन आयोग मतपत्रों के स्थान पर अधिक से अधिक इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ई.वी.एम) का उपयोग कर रहा है। 2003 में सभी राज्य चुनावों और उप-चुनावों में ई.वी.एम का उपयोग किया गया। इस प्रयोग की सफलता से उत्साहित होकर निर्वाचन आयोग ने 2004 में लोकसभा चुनावों में केवल ई.वी.एम का उपयोग किया। 10 लाख ई.वी.एम. इसके लिए उपयोग में लाए गए।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ई.वी.एम.)—यह एक सरल इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है। मतपत्रों के स्थान पर मतों को रिकॉर्ड करने के लिए उपयोग किया जाता है। पारम्परिक मतपत्रों की प्रणाली की तुलना में ई.वी.एम के निम्नलिखित लाभ हैं—

1. ई.वी.एम. से अवैध और संदेहास्पद मतों की संभावना समाप्त होती है, जो कि चुनाव से जुड़े विवादों तथा चुनाव याचिकाओं का प्रमुख कारण रहा है।

औपचारिक चुनाव प्रक्रिया चुनाव अधिसूचना जारी होने के साथ ही आरंभ हो जाती है। ज्यों ही अधिसूचना जारी होती है उम्मीदवार जिस चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ना चाहते हैं अपना नामांकन दाखिल कर सकते हैं। नामांकन की अंतिम तारीख से एक सप्ताह पश्चात् नामांकनों की जांच संबंधित चुनाव क्षेत्र के चुनाव अधिकारी करते हैं। जांच के बाद दो दिनों के अंदर वैध उम्मीदवार नाम वापस लेकर चुनाव से हट सकते है। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को चुनाव अभियान के लिए मतदान की तिथि के पहले दो हफ्ते का समय मिलता है।

मतदाताओं की भारी संख्या एवं बहुत बड़े पैमाने पर की जाने वाली चुनावी कार्यवाही को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय चुनाव के लिए कई दिनों मतदान कराया जाता है। मतगणना के लिए एक अलग तिथि निर्धारित की जाती है तथा प्रत्येक चुनाव क्षेत्र के लिए संबंधित चुनाव अधिकारी द्वारा परिणाम घोषित किए जाते हैं।

आयोग निर्वाचित सदस्यों की सूची बनाता है तथा सदन के गठन के लिए उपयुक्त अधिसूचना जारी करता है। इसी के साथ चुनाव की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है तथा लोकसभा के मामले में राष्ट्रपति तथा विधानसभाओं के लिए संबंधित राज्यों के राज्यपाल सदन/सदनों का सत्र आहूत करते हैं।

शपथ ग्रहण—किसी भी उम्मीदवार के लिए निर्वाचन आयोग द्वारा अधिकृत अधिकारी के समक्ष शपथ लेनी पड़ती है। मुख्यत: चुनाव अधिकारी तथा सहायक चुनाव अधिकारी चुनाव आयोग द्वारा इस उद्देश्य के लिए अधिकृत किए जाते हैं। ऐसे उम्मीदवारों के लिए जो बंदी हों अथवा जिन्हें निरुद्ध किया गया हो संबंधित कारा अधीक्षक अथवा अवरोधन शिविर (Detention camp) के समादेष्टा (Commandent) को शपथ ग्रहण से अधिकृत किया जाता है। ऐसे उम्मीदवारों के लिए जो कि अस्पताल में हों और बीमार हों तब अस्पताल के प्रभारी चिकित्सा अधीक्षक अथवा चिकित्सा अधिकारी को इसके लिए अधिकृत किया जाता है। यदि कोई उम्मीदवार भारत के बाहर हो तब भारत के राजदूत अथवा उच्चायुक्त अथवा उनके द्वारा अधिकृत राजनयिक कॉन्सलर के समक्ष शपथ ली जाती है। उम्मीदवार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह नामांकन पत्र दाखिल करने के फौरन बाद शपथ-पत्र प्रस्तुत करेगा या कम-से-कम नामांकन-पत्र जांच की तारीख से एक दिन पहले तक अवश्य जमा कर देगा।

प्र.3. चुनाव से सम्बन्धित कानूनों का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
Give a detailed analysis of the laws relating to elections.

उत्तर

चुनाव कानून
(Election Laws)

चुनाव कानून से सम्बन्धित अधिनियम निम्न प्रकार हैं—

जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 (Representation of the People Act, 1950)

संविधान के अनुच्छेद 81 तथा 170 में संसद तथा राज्यों की विधानसभाओं में अधिकतम सीटों की संख्या संबंधी प्रावधान दिए गए हैं, साथ ही उन सिद्धांतों का भी उल्लेख किया गया है, जिनके आधार पर लोकसभा तथा राज्यों की विधान सभाओं में सीटों का आवंटन किया जाता है लेकिन ऐसी सीटों का वास्तविक आवंटन छोड़ दिया गया है, जो कि कानून द्वारा प्रदान किया जाता है।

उसी प्रकार, अनुच्छेद 171 किसी राज्य की विधान परिषद् में अधिकतम एवं न्यूनतम सीटों का प्रावधान करता है, और उन विधियों का भी उल्लेख करता है जिनका उपयोग कर सीटें भरी जाएंगी। लेकिन यहाँ भी ऐसी प्रत्येक विधि से वास्तव में कितनी सीटें भरी जाएंगी यह कानून पर छोड़ दिया गया है।

इस प्रकार जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 का अधिनियमन लोकसभा के साथ-साथ राज्यों की विधानसभाओं तथा विधान परिषदों में सीटों के आवंटन के उद्देश्य से किया गया।

अधिनियम राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान करता है कि वे चुनाव आयोग से परामर्श करके लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं एवं विधान परिषदों की सीटें भरने के लिए विभिन्न चुनाव क्षेत्रों की संख्या को सीमित कर सकते हैं।

अधिनियम पुन: लोकसभा चुनाव क्षेत्रों तथा विधानसभा एवं विधान परिषद् चुनाव क्षेत्रों के निर्वाचकों के निबंधन का प्रावधान करता है और ऐसे निबंधन के लिए योग्यताओं एवं अयोग्यताओं का भी।

अंत में, अधिनियम चुनाव के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान करता है—

1. लोकसभा, राज्यों की विधानसभाओं एवं विधान परिषदों में सीटों का आवंटन
2. संसदीय, विधानसभा एवं विधान परिषद् निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन
3. निर्वाचन अधिकारी, जैसे- मुख्य निर्वाचन अधिकारी, जिला निर्वाचन अधिकारी, निर्वाचन निबंधन अधिकारी आदि
4. संसदीय, विधानसभा एवं विधान परिषद् निर्वाचन क्षेत्रों के लिए मतदाता सूची

5. राज्य सभा में संघीय क्षेत्रों के प्रतिनिधियों द्वारा भरी जाने वाली सीटों के बारे में प्रक्रिया का निर्धारण
6. राज्य विधान परिषद् के चुनाव के उद्देश्य से स्थानीय प्राधिकारी
7. दीवानी न्यायालयों (सिविल कोर्ट) को छोड़ देना

जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (Representation of the People Act, 1950)

जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 में चुनावों से संबंधित सभी प्रावधान नहीं थे, बल्कि इसमें लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं के लिए सीटों के आवंटन की तथा चुनाव क्षेत्रों के सीमांकन की व्यवस्था की गई थी। इसके अलावा मतदाता की अर्हता तथा मतदाता सूचियों के निर्माण का भी प्रावधान किया गया था।

संसद के दोनों सदनों तथा प्रत्येक राज्य की विधानसभा एवं विधान परिषद् के चुनाव, इन सदनों के लिए अर्हता एवं अयोग्यता, भ्रष्ट आचरण तथा अन्य चुनाव संबंधी प्रावधान तथा चुनाव संबंधी विवादों पर निर्णय—ये सब बाद में अपनाए जाने वाले उपायों पर छोड़ दिया गया। इसलिए इन बिन्दुओं पर प्रावधान करने के लिए जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 अधिनियमित किया गया।

मोटे तौर पर यह अधिनियम निम्नलिखित चुनावी विषयों से संबंधित हैं—

1. संसद तथा राज्य विधायिकाओं के लिए अर्हताएँ एवं अयोग्यताएँ
2. आम चुनावों की अधिसूचना
3. चुनाव संचालन के लिए प्रशासनिक मशीनरी
4. राजनीतिक दलों का निबंधन
5. चुनाव संचालन
6. मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवारों के लिए कुछ सामग्री की नि:शुल्क आपूर्ति
7. चुनाव संबंधी विवाद
8. भ्रष्ट आचरण एवं चुनावी अपराध
9. सदस्यों की अयोग्यता सम्बन्धी जाँच से सम्बन्धित निर्वाचन आयोग की शक्तियाँ,
10. उप-चुनाव तथा रिक्तियां भरने की समय सीमा
11. चुनाव से जुड़े अन्यान्य प्रावधान
12. दीवानी न्यायालयों को छोड़कर चुनाव कराने में निम्नलिखित विषय शामिल हैं—
    (क) उम्मीदवार का नामांकन
    (ख) उम्मीदवार और उनके ऐजेंट
    (ग) चुनाव की सामान्य प्रक्रिया
    (घ) मतदान
    (च) मतगणना
    (छ) अनेक स्थानों पर चुनाव
    (ज) चुनाव परिणामों का प्रकाशन और मनोनयन/नामांकन
    (झ) सम्पत्तियों एवं देनदारियों की घोषणा
    (ट) चुनाव खर्च

कानूनी प्रावधान, जो चुनाव के दौरान विवाद से जुड़े निम्नलिखित मामलों में सम्बन्धित हैं—

1. उच्च न्यायालय में चुनाव सम्बन्धी याचिका का प्रस्तुतिकरण
2. चुनाव याचिका का मुकदमा
3. चुनाव याचिकाओं को वापस लेना
4. सर्वोच्च न्यायालय में अपील
5. लागत के लिए लागत और प्रतिभूति/जमानत (Costs and Security for costs)

परिसीमन अधिनियम, 2002 (Delimilation Act, 2002)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 82 तथा 170 प्रत्येक राज्य को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों (संसदीय निर्वाचन क्षेत्र एवं विधानसभा क्षेत्रों) में बंटवारे तथा पुनर्स्थापन का प्रावधान करते हैं और इसका आधार जनगणना, 2001 है। ऐसे प्राधिकार द्वारा जैसा कि संसद कानून द्वारा निर्धारित करे।

TOUCH 'n' PASS

साथ ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 330 तथा 332 लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या का पुनर्निधारण का प्रावधान जनगणना, 2001 के आधार पर करते हैं।
वर्तमान में संसदीय एवं विधानसभाई क्षेत्रों का सीमांकन 1971 की जनगणना पर आधारित है। विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में देश के विभिन्न भागों में असमान जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ किसी एक ही राज्य में लोगों/मतदाताओं का एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर सतत् अप्रवास, विशेषकर गाँवों से शहरों की ओर, का परिणाम यह हुआ है कि एक ही राज्य में निर्वाचन क्षेत्रों के आकार में भारी अंतर है।
इस प्रकार, परिसीमन अधिनियम, 2002 का अधिनियम एक सीमांकन आयोग के गठन के लिए किया गया जिसका उद्देश्य 2001 की जनगणना के आधार पर सीमांकन को प्रभावी बनाया जाना था जिससे कि उपरिलिखित निर्वाचन क्षेत्रों के आकार में एकरूपता स्थापित की जा सके। प्रस्तावित सीमांकन आयोग 2001 की जनगणना के आधार पर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या को पुनर्निधारित भी करेगा, लेकिन 1971 की जनगणना के आधार पर निर्धारित सीटों की कुल संख्या को बिना प्रभावित किए।
अधिनियम इस बारे में कुछ दिशा-निर्देश देता है कि ऐसा परिसीमन किस तरीके से संभव बनाया जाए। अधिनियम में नये परिसीमन आयोग को यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह संसदीय एवं विधानसभाई निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन करे। विशेष रूप से यह भी प्रावधान किया गया कि आयोग अपना कार्य 31 जुलाई, 2008 के पहले अवश्य पूर्ण कर ले।
प्रस्तावित सीमांकन प्रत्येक आम चुनाव पर लागू होगा—लोकसभा तथा विधानसभाओं के लिए जबकि आयोग के अंतिम आदेश प्रकाशित हो जाएं। यह इन आम चुनावों के बाद होने वाले उप-चुनावों पर भी लागू होगा।

चुनाव संबंधी अन्य अधिनियम
(Other Acts Related to Election)

1. संसद (अयोग्यता निरोधक) अधिनियम, 1959 यह घोषणा करता है कि सरकार के अंतर्गत कतिपय लाभ के पद पदधारक के संसद सदस्य चुने जाने के लिए अयोग्यता नहीं बनेंगे।
2. अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की सूची में समावेशन एवं बहिष्करण का प्रावधान करता है। कतिपय जातियों एवं जनजातियों का, ताकि संसदीय एवं विधानसभाई निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व का पुनर्समायोजन संभव हो सके।
3. संघशासित क्षेत्र अधिनियम, 1963
4. दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार अधिनियम, 1991
5. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति चुनाव अधिनियम, 1952 राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव से संबंधित मामलों का नियमन करता है।

चुनाव से संबंधित नियमावली
(Manuals Related to Election)

1. निर्वाचक का निबंधन नियमावली, 1960 मतदाता सूची के निर्माण एवं प्रकाशन का प्रावधान करती है।
2. चुनाव संचालन नियमावली, 1961 निष्पक्ष तथा स्वतंत्र संसदीय एवं विधानसभा चुनाव संचालन को सुसाध्य बनाती है।
3. समकालिक सदस्यता निषेध नियमावली, 1950 (Prohibition of Simultaneous Membership Rules, 1950)
4. लोकसभा सदस्य (दल-बदल के आधार पर अयोग्यता) नियमावली, 1985
5. राज्यसभा सदस्य (दल-बदल के आधार पर अयोग्यता) नियमावली, 1985
6. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति चुनाव नियमावली, 1974
7. लोकसभा सदस्य (संपत्तियों एवं देनदारियों की घोषणा) नियमावली, 2004
8. राज्यसभा सदस्य (संपत्तियों एवं देनदारियों की घोषणा) नियमावली, 2004

चुनाव से संबंधित आदेश (Directives Related to Election)

1. चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) आदेश, 1968 संसदीय एवं विधानसभा क्षेत्रों से संबंधित राजनीतिक दलों की मान्यता के लिए चुनाव चिन्हों के ब्यौरे, आरक्षण, विकल्प तथा आवंटन का प्रावधान करता है।

TOUCH 'n' PASS

2. राजनीतिक दलों का निबंधन (अतिरिक्त जानकारी प्रस्तुतीकरण) आदेश, 1992 विभिन्न संघों, अथवा भारतीय नागरिकों के निकायों द्वारा अतिरिक्त जानकारियां प्रस्तुत करने के लिए प्रावधान करता है जो कि राजनीतिक दल के रूप में चुनाव आयोग से साथ निबंधित होना चाहते हैं।

प्र.4. भारत में चुनावों के अभी तक हुए सुधारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed account of the electoral reforms in India so for.

उत्तर

1996 के पहले के चुनाव सुधार
(Electoral Reforms before 1996)

वोट देने की आयु घटाना—1988 के 61वें संविधान संशोधन अधिनियम के जरिए लोकसभा के साथ-साथ विधानसभाओं के चुनाव में वोट डालने की उम्र को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। प्रतिनिधित्व से वंचित देश के युवाओं को अपनी भावनाओं को प्रकट करने का अवसर प्रदान करने और चुनाव प्रक्रिया का हिस्सा बनने में मदद करने के उद्देश्य से ऐसा किया गया।

चुनाव आयोग में प्रतिनियुक्ति—1988 में प्रावधान किया गया कि चुनावों के लिए मतदाता सूची बनाने, पुनरीक्षण एवं संशोधन करने के काम में जो पदाधिकारी एवं कर्मचारी कार्यरत रहेंगे उन्हें यह काम करते रहने की अवधि तक चुनाव आयोग में प्रतिनियुक्त माना जाएगा। इस अवधि के दौरान ये कर्मचारी चुनाव आयोग के नियंत्रण, देखरेख एवं अनुशासन के अधीन रहेंगे।

प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि—1988 में, राज्यसभा एवं राज्यों के विधान परिषदों के चुनाव के लिए नामांकन-पत्रों पर प्रस्तावक के रूप में हस्ताक्षर करने वाले निर्वाचकों की संख्या बढ़ाकर चुनाव क्षेत्र के कुल निर्वाचकों का दस प्रतिशत या ऐसे दस निर्वाचक, जो कम हों, कर दिया गया। ऐसा व्यर्थ के उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए किया गया।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन—1989 में चुनावों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) के इस्तेमाल की व्यवस्था की गई। प्रयोग के तौर पर पहली बार ईवीएम का इस्तेमाल 1998 में राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली विधानसभा के चुनाव में हुआ। 1999 के गोवा विधानसभा चुनाव में पहली बार ईवीएम का पूरे राज्य में इस्तेमाल हुआ।

बूथ कब्जा—1989 में बूथ कब्जा होने पर चुनाव स्थगित करने या रद्द करने का प्रावधान किया गया। बूथ कब्जे में शामिल हैं—(i) मतदान केंद्र पर कब्जा कर लेना और अधिकारियों से मतपत्र या वोटिंग मशीन सरेंडर करा लेना, (ii) मतदान केंद्र को अपने कब्जे में ले लेना और सिर्फ अपने समर्थकों को वोट डालने की इजाजत देना, (iii) किसी भी मतदाता को मतदान केंद्र पर जाने को लेकर धमकाना और रोकना, तथा (iv) मतगणना केंद्र पर कब्जा कर लेना।

मतदाता फोटो पहचान पत्र (EPIC)—चुनाव आयोग द्वारा मतदाता फोटो पहचान पत्र के उपयोग से निश्चित ही चुनाव प्रक्रिया सरल, सुचारू और त्वरित होगी। चुनावों में फर्जी मतदाता और किसी के बदले मत डालने की प्रथा को रोकने के लिए देशभर में मतदाताओं को फोटो पहचान पत्र जारी करने के लिए वर्ष 1993 में चुनाव आयोग द्वारा एक निर्णय लिया गया था। पंजीकृत मतदाताओं को ईपीआईसी जारी करने के लिए मतदाता सूची आधार होता है। सामान्यतया हर वर्ष पहली जनवरी को इस मतदाता सूची को संशोधित किया जाता है क्योंकि यह तिथि विशेष तिथि होती है। प्रत्येक भारतीय नागरिक जिसकी आयु उक्त तिथि से 18 या इससे अधिक है वह मतदाता सूची में शामिल होने और इसके लिए आवेदन करने का पात्र होता है। एक बार इस सूची में पंजीकृत होने के बाद वह ईपीआईसी पाने का पात्र होगा। इसलिए, ईपीआईसी का जारी करने की योजना लगातार चलने वाली सतत् प्रक्रिया है जिसे पूरा करने के लिए किसी समय सीमा का निर्धारण नहीं किया जा सकता है क्योंकि मतदाता का पंजीकरण एक सतत् और चलने वाली प्रक्रिया है (नामकरण दर्ज करने की अंतिम तिथि और मतदान प्रक्रिया पूरी होने के बीच की अवधि को छोड़कर), इसमें 18 वर्ष की आयु पूरी करने वाले अधिक से अधिक लोगों को मतदान का अधिकार दिया जाता है। यह चुनाव आयोग की उन मतदाताओं को ईपीआईसी देने का सतत प्रयास है जो पिछले अभियान में छूट गए और नए मतदाता के रूप में जोड़े जाने हैं।

1996 के चुनाव सुधार (Electoral Reforms of 1996)

1990 में वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने तत्कालीन कानून मंत्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में चुनाव सुधार समिति का गठन किया। समिति से चुनाव प्रणाली का विस्तार से अध्ययन करने और प्रणाली की कमियों को दूर करने के लिए अपने सुझाव देने को कहा गया। समिति ने 1990 में ही अपनी रिपोर्ट दे दी और चुनाव सुधार के कई सुझाव दिए। इनमें से कुछ अनुशंसाएं 1996 में लागू की गई। इनके बारे में नीचे बताया गया है—

TOUCH 'n' PASS

उम्मीदवारों के नामों को सूचीबद्ध करना—उम्मीदवारों के नामों को सूचीबद्ध करने के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को तीन वर्गों में बांटा जाएगा। ये वर्ग हैं—

1. मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवार,
2. पंजीकृत गैर-मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवार और
3. अन्य (निर्दलीय) उम्मीदवार।

चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की सूची और मतपत्र में उनके नाम अलग-अलग उपरोक्त क्रम में रहेंगे तथा सभी वर्गों में नामों को वर्णक्रमानुसार रखा जाएगा।

राष्ट्रीय गौरव का अनादर करने पर अयोग्य घोषित करने का कानून—राष्ट्रीय गौरव अपमान निरोधक अधिनियम, 1971 के तहत निम्नलिखित अपराधों के लिए सजा प्राप्त व्यक्ति छह साल तक लोकसभा और राज्य विधानसभा का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य होगा—

1. राष्ट्रीय झंडे के अनादर का अपराध;
2. भारत के संविधान का अनादर करने का अपराध, और;
3. राष्ट्रगान गाने से रोकने का अपराध।

शराब बिक्री पर प्रतिबंध—मतदान खत्म होने की अवधि के 48 घंटे पहले तक मतदान केंद्र के इलाके में किसी दुकान, खाने की जगह, होटल या किसी भी सार्वजनिक या निजी स्थल में किसी तरह के शराब या नशीले पेय नहीं बेचा या बांटा जा सकता। इस कानून का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति 6 माह के कैद या 2000 रुपये के जुर्माने या दोनों सजा का भागी होगा।

प्रस्तावकों की संख्या—लोकसभा या विधानसभा का चुनाव लड़ने वाला व्यक्ति अगर किसी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल का उम्मीदवार नहीं है तो उसके नामांकन-पत्र पर क्षेत्र के दस पंजीकृत मतदाताओं के हस्ताक्षर प्रस्तावक के रूप में होने चाहिए। अगर उम्मीदवार किसी मान्यता प्राप्त दल का है तो सिर्फ एक प्रस्तावक की जरूरत होगी। ऐसा व्यर्थ के लोगों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए किया गया था।

उम्मीदवार की मृत्यु—चुनाव लड़ रहे किसी उम्मीदवार का निधन मतदान के पूर्व हो जाने पर पहले चुनाव रद्द कर दिया जाता था और उसके बाद उस क्षेत्र में फिर से चुनाव प्रक्रिया शुरू होती थी। लेकिन अब मतदान के पूर्व चुनाव लड़ रहे किसी उम्मीदवार का निधन हो जाने पर चुनाव रद्द नहीं होता। हालांकि मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल के उम्मीदवार का निधन होने की स्थिति में उस दल को सात दिनों के अंदर दूसरा उम्मीदवार देने का विकल्प दिया जाता है।

उप-चुनाव की समय सीमा—संसद या राज्य विधानमंडल के किसी सदन की सीट खाली होने के छह महीने के अंदर उप-चुनाव कराना होगा। लेकिन यह व्यवस्था दो स्थितियों में लागू नहीं होती है—

1. जिस सदस्य की खाली जगह भरी जानी है, उसका कार्यकाल अगर एक साल से कम अवधि का बचा हुआ हो, या
2. जब चुनाव आयोग केंद्र सरकार से सलाह-मशविरा कर यह सत्यापित करे कि निर्धारित अवधि के अंदर उप-चुनाव कराना कठिन है।

मतदान के दिन कर्मचारियों का अवकाश—किसी भी व्यवसाय, व्यापार, उद्योग या अन्य संस्थान में कार्यरत पंजीकृत मतदाता को मतदान के दिन वैतनिक अवकाश मिलेगा। यह नियम दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों पर भी लागू होगा। इसका उल्लंघन करने वाले नियोजक को ₹ 500 तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। हालांकि यह नियम वैसे मतदाताओं पर नहीं लागू होगा जिसकी अनुपस्थिति से वह जिस रोजगार में लगा है उसे खतरा या अत्यधिक नुकसान होता हो।

दो से अधिक चुनाव क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध—एक साथ हो रहे आम चुनाव या उप-चुनाव में कोई उम्मीदवार लोकसभा या विधानसभा की दो से अधिक सीटों से चुनाव नहीं लड़ सकता। ऐसा ही प्रतिबंध राज्यसभा और राज्यों के विधान परिषद के द्वि-वार्षिक या उप-चुनाव पर भी लागू होता है।

हथियार पर रोक—किसी मतदान केंद्र के आसपास किसी तरह के हथियार के साथ जाना संज्ञेय अपराध है। ऐसा करने पर दो साल की सजा या जुर्माना या दोनों दंड दिया जा सकता है। इसके अलावा कानून की अवहेलना करने वाले व्यक्ति का हथियार जब्त कर लिया जाएगा और उसका लाइसेंस रद्द कर दिया जाएगा। लेकिन यह व्यवस्था निर्वाचन पदाधिकारी, मतदान पदाधिकारी, किसी पुलिस अधिकारी या मतदान केंद्र पर शांति-व्यवस्था कायम करने के लिए बहाल किसी अन्य व्यक्ति पर लागू नहीं होता।

चुनाव प्रचार की अवधि में कमी—नामांकन वापस लेने की आखिरी तिथि और मतदान की तिथि के बीच का न्यूनतम अंतराल 20 दिनों से घटाकर 14 दिन कर दिया गया है।

TOUCH 'n PASS

1996 के बाद के चुनाव सुधार
(Electoral Reforms After 1996)

राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति का चुनाव—1977 में राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए प्रस्तावक एवं समर्थक निर्वाचकों की संख्या 10 से बढ़ाकर 50 कर दी गई। इसी तरह उप-राष्ट्रपति पद के लिए यह संख्या 5 से बढ़ाकर 20 कर दी गई। साथ ही निरर्थक उम्मीदवारों को रोकने के लिए दोनों पदों का चुनाव लड़ने के लिए जमानत की राशि ₹ 2500 से बढ़ाकर ₹ 15,000 कर दी गई।

चुनाव ड्यूटी के लिए कर्मचारियों को बुलाना—1998 में यह व्यवस्था की गई कि स्थानीय शासन, राष्ट्रीयकृत बैंकों, विश्वविद्यालयों, जीवन बीमा निगम, लोक उपक्रमों, एवं सरकारी सहायता पाने वाले दूसरे संस्थानों के कर्मचारियों को चुनाव ड्यूटी पर तैनात करने के लिए बुलाया जा सकता है।

डाक मतपत्र के जरिए वोट डालना—1999 में कुछ खास तरह के मतदाताओं के लिए डाक मतपत्र के जरिए वोट देने की व्यवस्था की गई। चुनाव आयोग सरकार के साथ सलाह-मशविरा कर किसी भी श्रेणी के व्यक्ति को इस सुविधा के लिए अधिसूचित कर सकता है और इस तरह अधिसूचित व्यक्ति अपने चुनाव क्षेत्र में डाक मतपत्र के जरिए वोट डालेगा। वह किसी अन्य तरीके से वोट नहीं दे सकता।

प्रॉक्सी के जरिए वोट देने की सुविधा—2003 में सशस्त्र सेना में कार्यरत वोटरों और ऐसे सशस्त्र बल में कार्यरत लोगों को, जहाँ सेना अधिनियम लागू होता है, को प्रॉक्सी के जरिए वोट देने का विकल्प चुनने की सुविधा उपलब्ध कराई गई। ऐसे वोटर जो प्रॉक्सी के जरिए वोट डालना चाहते हैं उन्हें निर्धारित प्रपत्र में अपना प्रॉक्सी नियुक्त करना होगा और इसकी सूचना अपने निर्वाचन क्षेत्र के चुनाव अधिकारी को देनी होगी।

उम्मीदवारों द्वारा आपराधिक इतिहास,संपत्ति आदि की घोषणा—2003 में चुनाव आयोग ने संसद या राज्य विधानमंडल का चुनाव लड़ने के इच्छुक उम्मीदवारों को अपने नामांकन-पत्र के साथ निम्नलिखित जानकारियां उपलब्ध कराने का आदेश जारी किया—

1. क्या उम्मीदवार को पहले कभी किसी आपराधिक मामले में सजा मिली है, या निर्दोष करार दिया गया है या रिहा किया गया है? क्या उसे कैद की सजा या जुर्माना हुआ है?
2. नामांकन-पत्र दाखिल करने के छह महीने पहले, क्या उम्मीदवार किसी लंबित मामले का अभियुक्त है, जिसमें दो साल या इससे अधिक अवधि की कैद की सजा हो सकती है और उस मामले में अभियोग दाखिल हो चुका है या कोर्ट द्वारा संज्ञान लिया गया है? अगर ऐसा है तो इसका विवरण दाखिल करें।
3. उम्मीदवार, उसकी पत्नी/पति और आश्रितों की संपत्ति (अचल, चल, बैंकों में जमा राशि आदि) का विवरण।
4. देनदारी, अगर हो, खासकर क्या किसी सरकारी वित्तीय संस्थान या सरकार का बकाया है।
5. उम्मीदवार की शैक्षणिक योग्यता।

शपथ पत्र में कोई गलत जानकारी देना अब चुनावी अपराध है। इसके लिए छह माह तक के लिए कैद की सजा या जुर्माना या दोनों हो सकता है।

राज्यसभा चुनाव में बदलाव—2003 में राज्यसभा चुनाव से संबंधित निम्नलिखित बदलाव किए गए—

1. राज्यसभा चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार की आवासीय अर्हता हटा ली गई। इसके पहले, उम्मीदवार को जिस राज्य से निर्वाचित होना होता था, उसे वहाँ का मतदाता होना जरूरी होता था। अब उसका देश के किसी संसदीय क्षेत्र का वोटर होना पर्याप्त होगा।
2. राज्यसभा चुनाव में गुप्त मतदान की जगह खुला मतदान शुरू किया गया। ऐसा राज्य सभा चुनाव के दौरान क्रॉस वोटिंग पर रोक लगाने एवं पैसे के खेल को समाप्त करने के लिए किया गया। नयी व्यवस्था में राजनीतिक दल के निर्वाचक को मतपत्र पर मुहर लगाने के बाद अपनी पार्टी के नामित ऐजेंट को मतपत्र दिखाना होता है।

यात्रा व्यय की छूट—2003 के प्रावधान के अनुसार राजनीतिक दल का चुनाव प्रचार करने वाले नेताओं का यात्रा व्यय उम्मीदवार के चुनाव खर्च में शामिल नहीं किया जाएगा।

मतदाता सूची आदि की नि:शुल्क आपूर्ति—2003 के प्रावधान के अनुसार सरकार लोकसभा तथा विधानसभा चुनाव में मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों को मतदाता सूची की प्रति तथा आवश्यक सामग्री नि:शुल्क उपलब्ध कराएगी। साथ ही

TOUCH 'n PASS

चुनाव आयोग को संबंधित चुनाव क्षेत्र के मतदाताओं या मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों को निर्धारित सामग्री उपलब्ध करानी होगी।

राजनीतिक दलों को चंदा लेने की स्वतंत्रता—2003 में राजनीतिक दलों को किसी व्यक्ति या सरकारी कंपनी छोड़कर बाकी किसी कंपनी से कोई भी राशि स्वीकार करने की स्वतंत्रता थी। अब आयकर में राहत का दावा करने के लिए उन्हें ₹ 20,000 से अधिक के हर चंदे की जानकारी चुनाव आयोग को देनी होगी। साथ ही चंदे के रूप में दी गई रकम पर कंपनी को भी आयकर में छूट मिलेगी।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर समय का आवंटन—2003 के प्रावधान के तहत किसी मुद्दे को दिखाने या प्रचारित करने या जनता को संबोधित करने के लिए चुनाव आयोग राजनीतिक दलों को केबल टेलीविजन नेटवर्क तथा दूसरे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर समान रूप से समय आवंटित करेगा। यह आवंटन पिछले चुनाव में मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों की उपलब्धियों के आधार पर होगा।

ईवीएम में ब्रेल (Braille Signage) लिपि को शुरू करना—आयोग को दृष्टिहीन मतदाताओं द्वारा किसी सहायक के बिना मतदान करने के लिए उन्हें सुविधा प्रदान करने हेतु ब्रेल लिपिबद्ध ईवीएम को शुरू करने के लिए दृष्टिहीनों के विभिन्न संघों से अभ्यावेदन प्राप्त हुआ है। आयोग ने विस्तृत रूप में इस प्रस्ताव पर विचार किया और वर्ष 2004 में हुए आंध्र प्रदेश की असिफनगर विधान सभा में उप-चुनाव के दौरान ईवीएम में ब्रेल फीचर डालने की कोशिश की। वर्ष 2005 में, बिहार, झारखंड और हरियाणा के विधानसभा चुनावों के दौरान एक विधानसभा क्षेत्र में इसका प्रयास किया गया था। वर्ष 2006 में, विधानसभा चुनावों के दौरान असम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, पुडुचेरी और केरल राज्यों के एक विधानसभा क्षेत्र में इसका प्रयास किया गया था। वर्ष 2008 में, विधानसभा चुनावों के दौरान राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में भी इसका प्रयास किया गया था।

आयोग ने पंद्रहवें लोक सभा चुनावों (2009) और साथ ही साथ कतिपय राज्यों में विधानसभा चुनावों के दौरान इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों में ऐसा ही ब्रेल फीचर डाला था।

2010 से लेकर अब तक के चुनाव सुधार
(Electoral Reforms from 2010 Till Now)

एक्जिट पोल पर प्रतिबंध—2009 के प्रावधान के अनुसार लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव के दौरान एक्जिट पोल करने और उसके परिणामों को प्रकाशित करने पर रोक लग गई है। इस तरह चुनाव आयोग द्वारा अधिसूचित अवधि के दौरान कोई व्यक्ति कोई एक्जिट पोल नहीं कर सकता तथा प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या किसी और तरीके से उस पोल के परिणामों को प्रकाशित-प्रचारित नहीं कर सकता। इस प्रावधान का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति दो साल तक के कैद, या जुर्माना या दोनों का भागी होगा।

'एक्जिट पोल' का मतलब जनमत सर्वेक्षण है कि वोटरों ने किस तरह वोट किया है या फिर चुनाव में सभी वोटरों ने किसी राजनीतिक दल या उम्मीदवार के बारे में क्या सोचा है।

अयोग्य घोषित कराने के लिए मामला दर्ज कराने की समय सीमा—2009 में भ्रष्ट तरीका अपनाने वाले व्यक्ति को अयोग्य करार देने की प्रक्रिया सरल बनाने का प्रावधान किया गया। इसमें भ्रष्ट तरीका अपनाने का दोषी पाये गए व्यक्ति को अयोग्य करार देने के लिए उसके मामले को तीन माह के अंदर राष्ट्रपति के पास पेश करने का समय अधिकृत अधिकारी को दिया गया है।

भ्रष्ट तरीके के घेरे में सभी अधिकारी—2009 में सभी अधिकारियों, चाहे वे सरकारी सेवा में हों या चुनाव आयोग द्वारा चुनाव संचालित कराने के लिए प्रतिनियुक्त किए गए हों, को किसी उम्मीदवार से चुनाव में उसकी जीत की संभावनाएं बढ़ाने के लिए किसी तरह की मदद लेने पर भ्रष्ट तरीका अपनाने के घेरे में लेने का प्रावधान किया गया।

जमानत की राशि में बढोतरी—2009 में लोकसभा चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों द्वारा जमा की जाने वाली जमानत की राशि सामान्य कोटि के उम्मीदवारों के लिए दस हजार से बढ़ाकर 25 हजार और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए पाँच हजार से बढ़ाकर बारह हजार रुपए कर दी गई। इसी तरह राज्य विधानसभा का चुनाव लड़ने वाले सामान्य कोटि के उम्मीदवारों की जमानत राशि पाँच हजार से बढ़ाकर दस हजार और अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए ढाई हजार से पाँच हजार रुपए कर दी गई। ऐसा अगंभीर उम्मीदवारों की संख्या बढ़ने से रोकने के लिए किया गया।

जिले में अपीलीय अधिकारी—2009 में मतदाता निबंधन पदाधिकारी के किसी आदेश के खिलाफ सुनवाई के लिए जिले में अपीलीय अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। पहले ऐसी शिकायतों की सुनवाई राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी किया करते थे। इस तरह मतदाता सूची को अद्यतन करने के क्रम में किसी क्षेत्र के मतदाता निबंधन पदाधिकारी के किसी आदेश के

खिलाफ जिला दंडाधिकारी, या अतिरिक्त जिला दंडाधिकारी या कार्यपालक दंडाधिकारी या जिला समाहर्ता या समान स्तर के किसी अन्य अधिकारी के पास अपील की जाएगी। इसके आगे जिला दंडाधिकारी या अतिरिक्त जिला दंडाधिकारी के किसी आदेश के खिलाफ राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी के पास अपील होगी।

विदेशों में रहने वाले भारतीयों को वोट का अधिकार—2010 में विभिन्न कारणों से विदेशों में रहने वाले भारतीयों को वोट का अधिकार प्रदान करने का प्रावधान किया गया। इसके अनुसार भारत का हर नागरिक—(i) जिसका नाम मतदाता सूची में शामिल नहीं है, (ii) जिसने किसी दूसरे देश की नागरिकता नहीं ग्रहण की है, और (iii) जो नौकरी, शिक्षा या किसी अन्य कारणों से भारत के अपने सामान्य निवास के बजाए विदेश में रहा है (चाहे अस्थायी रूप से या नहीं)—अपना नाम अपने संसदीय/विधानसभा क्षेत्र , जो उसके पासपोर्ट में अंकित है, की मतदाता सूची में दर्ज करा सकता है।

मतदाता सूची में ऑनलाइन नामांकन—वर्ष 2013 में, मतदाता सूची में नामांकन के लिए ऑनलाइन फाइलिंग के लिए एक प्रावधान किया गया था। इस उद्देश्य के लिए केन्द्र सरकार ने चुनाव आयोग से परामर्श कर नियम बनाएं जिन्हें मतदाता पंजीकरण (संशोधन) नियम, 2013 के नाम से जाना जाता है। इन नियमों ने मतदाता पंजीकरण नियम, 1960 में कतिपय संशोधन किया।

नोटा (NOTA) विकल्प शुरू करना—उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसार चुनाव आयोग ने उपर्युक्त में से 'कोई नहीं के लिए' मतदाता पत्रों/ ईवीएम मशीनों में प्रावधान किया ताकि मतदान केन्द्र तक आने वाले मतदाता चुनाव में खड़े हुए किसी भी उम्मीदवारों में से किसी को चुनने का फैसला न करने वाले अपने मतदान की गोपनीयता को बनाए रखते हुए ऐसे उम्मीदवारों को मत नहीं डालने के अपने अधिकार का प्रयोग कर सके। नोटा के लिए प्रावधान को 2013 में छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, मिजोरम, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और राजस्थान के राज्य विधानसभाओं के आम चुनाव से ही लागू कर दिया गया और सोलहवीं लोक सभा (2014) के लिए आम चुनावों के साथ वर्ष 2014 में आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, ओडिशा और सिक्किम के राज्य विधानसभा चुनावों में जारी रहा।

उम्मीदवार को जमानत राशि लौटाने के उद्देश्य से नोटा (NOTA) के विरुद्ध मत देने वाले मतदाताओं को उम्मीदवार को मिले हुए वैध मतदाताओं में नहीं गिना जाता। अगर नोटा के पक्ष में मत देने वाले मतदाताओं की संख्या किसी भी उम्मीदवार को मिले मतों से अधिक है तब भी जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक मत मिले, उसे ही निर्वाचित घोषित किया जाएगा।

2001 में चुनाव आयोग ने भारत सरकार को तटस्थ मतों (neutral vote) का प्रावधान रखने के लिए कानून में संशोधन का प्रस्ताव भेजा था, उनके लिए जो किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में मत देना नहीं चाहते। 2004 में पीयूसीएल (People's Union for Civil Liberties) ने नोट नहीं देने के अधिकार के संरक्षण के लिए मतपत्र एवं ईवीएम में आवश्यक गोपनीय प्रावधान के लिए याचिका दायर की। सर्वोच्च न्यायालय ने 2013 में चुनाव आयोग को ईवीएम एवं मतपत्र में 'उपरोक्त में से कोई नहीं' (None of the Above, NOTA) का प्रावधान करने का आदेश दिया।

मतदाता निरीक्षण पेपर ऑडिट ट्रायल (Voter verifiable Paper Audit Trial, VVPAT) की शुरुआत—वीवीपीएटी ईवीएम से जुड़ी एक स्वतंत्र प्रणाली है, जो मतदाताओं को अनुमति देती है कि वे यह सत्यापित कर सकते हैं कि उनका मत उक्त उम्मीदवार को पड़ा है जिसके पक्ष में उन्होंने मत डाला था। जब मत पड़ता है तो एक स्लिप मुद्रित होती है और सात सेकंड के लिए एक पारदर्शी खिड़की उम्मीदवार की क्रम संख्या, नाम तथा चुनाव चिन्ह उजागर होता है। इसके पश्चात् स्लिप कटकर मुहरबंद वीवीपीएटी ड्रॉप बॉक्स में गिर जाती है। यह प्रणाली मतदाता को पेपर रसीद के आधार पर अपने मत को चुनौती देने की सुविधा प्रदान करती है। नियमों के अनुसार, मतदान केन्द्र के प्रिसाइडिंग ऑफिसर को मतदाता की असहमति दर्ज करनी होती है और मतगणना के समय उसका हिसाब रखा जाता है, अगर चुनौती असत्य पाई जाती है।

वीवीपीएटी (VVPAT) के उपयोग के लिए नियम में संशोधन 2013 में किया गया। 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने वीवीपीएटी को चरणों में शुरू करने की अनुमति दी थी, और इसे 'स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की अपरिहार्य जरूरत' बताया था। न्यायालय ने अनुमान किया था कि वीवीपीएटी मतदान प्रणाली की परिशुद्धता सुनिश्चित करेगा और विवाद की स्थिति में मतों की हाथ से गिनती में भी सहायक होगा। वीवीपीएटी का प्रथम उपयोग 2013 में नागालैंड के नोकासेन विधानसभा चुनाव क्षेत्र में किया गया था। इसके पश्चात् राज्य विधानसभाओं के आम चुनावों में इसका उपयोग हो रहा है। 2014 के लोक सभा चुनावों में आठ चुने हुए लोकसभा चुनाव क्षेत्रों में वीवीपीएटी का उपयोग किया गया। ईवीएम के साथ वीवीपीएटी मतदान प्रणाली में सटीकता तथा पारदर्शिता सुनिश्चित करता है।

जेल या पुलिस हिरासत में रह रहा व्यक्ति चुनाव लड़ सकता है—वर्ष 2013 में सर्वोच्च न्यायालय में पटना उच्च न्यायालय के एक आदेश को बहाल रखा जिसमें यह कहा गया था कि एक व्यक्ति को जेल या पुलिस हिरासत में होने की वजह से मतदान का

अधिकार नहीं हो, वह निर्वाचक नहीं है, इसलिए संसद या विधानसभा चुनाव लड़ने के लिए जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में ये नए प्रावधान 4 जोड़े गए—

1. पहला प्रावधान स्पष्ट करता है कि मतदान से रोके जाने के कारण (जेल में या पुलिस हिरासत में रहने के कारण) कोई व्यक्ति जिसका नाम मतदाता सूची में प्रविष्ट है, निर्वाचक होने से नहीं रोका जाएगा।
2. दूसरा प्रावधान स्पष्ट करता है कि एक संसद सदस्य अथवा विधानसभा सदस्य तभी अयोग्य माना जाएगा जबकि वह इस अधिनियम के अंतर्गत अयोग्य हो, किसी अन्य आधार पर उसे अयोग्य नहीं माना जाएगा।

परिणामत: जो व्यक्ति जेल में या पुलिस हिरासत में हैं, उन्हें चुनाव लड़ने की अनुमति है।

सिद्धदोषी सांसदों एवं विधायकों की तत्काल अयोग्यता प्रभावी—2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि अभियोग पत्रित सांसद और विधायक अपराध के लिए दोषी सिद्ध होने पर अपील के लिए तीन माह का नोटिस दिए जाने के बिना ही संसद या विधानसभा की सदस्यता से तत्काल प्रभाव से अयोग्य हो जाएंगे।

न्यायालय की सम्बद्ध पीठ ने जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8(4) को असंवैधानिक मानकर रद्द कर दिया जो सिद्धदोष कानून बनाने वालों को उच्चतम न्यायालय में दोषसिद्धि अथवा सजा पर रोक के लिए अपील का प्रावधान करती थी। पीठ ने हालांकि यह स्पष्ट किया कि यह व्यवस्था भविष्य प्रभावी है और जो लोग उच्च न्यायालयों या सर्वोच्च न्यायालय में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील कर चुके हैं, वे इस आदेश से बरी ही रहेंगे।

पीठ ने कहा, 'संविधान के अनुच्छेद 102 एवं 191 के दो प्रावधानों को पढ़ने से पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि एक व्यक्ति के संसद के किसी सदन अथवा विधानसभा का सदस्य चुने जाने से अयोग्य करने तथा सदस्य बनने के लिए एक ही कानून बनाना है। इस प्रकार संसद को अनुच्छेद 102 तथा 191 के अंतर्गत यह शक्ति नहीं है कि एक व्यक्ति को संसद या विधानसभा का सदस्य चुने जाने से अयोग्य करने तथा एक व्यक्ति को संसद या विधानसभा सदस्य बने रहने देने से अयोग्य करने के सम्बन्ध में अलग-अलग कानून बनाए।'

पीठ ने कहा, 'अधिनियम की धारा 8(4), जो कि संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों को अधिनियम के अंतर्गत अयोग्यता से बचाने में प्रयुक्त होती है अथवा उस तारीख को आगे बढ़ाने में प्रयुक्त होती है जिस तारीख को संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों की अयोग्यता प्रभावी होगी, संसद को संविधान से प्राप्त शक्तियों के बाहर है।'

पीठ के अनुसार, 'अनुच्छेद 102 तथा 191 की सकारात्मक शर्तों को देखने के बाद हम मानते हैं कि संसद को सांसद या विधानसभा के लिए चुने जाने के लिए वही अयोग्यता या निरर्हता निर्धारित करने की शक्ति है जो कि संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों के लिए हो सकती है। हम यह भी मानते हैं कि संसद या विधानसभा के वर्तमान सदस्यों के मामले में संविधान के अनुच्छेद 101 तथा 190 के प्रावधान संसद को वह तारीख आगे बढ़ाने से रोकते हैं जबसे अयोग्यता प्रभावी होगी। इसलिए संसद ने अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (4) का अधिनियमन करके अपनी शक्तियों की सीमा लांघी है और उसी अनुसार धारा 8 की उपधारा (4) संविधान का उल्लंघन करती है।

सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को निष्प्रभावी करने के लिए जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (द्वितीय संशोधन एवं मान्यकरण) विधेयक, 2013 संसद में लाया गया। हालांकि बाद में सरकार ने इस विधेयक को वापस ले लिया।

चुनाव खर्च की सीमा बढी—2014 में केन्द्र सरकार ने बड़े राज्यों में लोकसभा चुनावों के लिए खर्च सीमा बढ़ाकर रु. 70 लाख (पहले रु. 40 लाख) कर दी। अन्य राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों में यह सीमा रु. 5 लाख (पहले 16-40 लाख रुपये) की गई। इसी प्रकार बड़े राज्यों में विधानसभा सीट के लिए चुनावी खर्च की 16 लाख रुपये से बढ़ाकर 28 लाख रुपये की गई जबकि अन्य राज्यों एवं संघशासित राज्यों के लिए यह सीमा 20 लाख रुपये (पहले 8-16 लाख रुपये) की गई।

राज्यवार सीमा तालिका में इस अध्याय के अंत में प्रदर्शित है।

ईवीएम एवं मतपत्रों पर उम्मीदवारों के फोटो—चुनाव आयोग के एक आदेशानुसार 1 मई, 2015 के बाद होने वाले किसी भी चुनाव में ईवीएम एवं मतपत्रों पर उम्मीदवारों का फोटो, नाम तथा पार्टी चुनाव चिन्ह के साथ प्रकाशित रहेंगे ताकि इस बारे में मतदाताओं के भ्रम का निवारण हो सके।

जून 2015 में पांच राज्यों में छह उप-चुनाव हुए जिनमें प्रथम बार मतपत्रों पर उम्मीदवारों के फोटो का उपयोग किया गया।

चुनाव आयोग ने यह संज्ञान लिया है कि कई बार एक ही चुनाव क्षेत्र में एक ही नाम से अनेक उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं। यद्यपि दो या अधिक एक ही नाम वाले उम्मीदवारों के नाम के साथ उपयुक्त उपसर्ग लगाए जाते हैं, आयोग के विचार में मतदाताओं को मतदान के समय किसी भी प्रकार की सुविधा या भ्रम न हो, इसके लिए अतिरिक्त उपाय किए जाने आवश्यक हैं।

TOUCH 'n PASS

फोटो उम्मीदवार के नाम तथा चुनाव चिन्ह के बीच में उजागर रहेगा।
आयोग ने व्याख्या की कि यदि कोई उम्मीदवार फोटो देने में विफल रहता है, तब भी यह उसका नामांकन खारिज करने का आधार नहीं बनेगा।
अब उम्मीदवार को अपना हाल का खिंचा फोटो, श्वेत श्याम या रंगीन चुनाव अधिकारियों को नामांकन के समय सौंपना होगा। फोटो में कोई भी वर्दी, टोपी तथा काले चश्मे का उपयोग नहीं करना है।

नकद दान की सीमा कम की गई—2017 बजट में किसी व्यक्ति द्वारा किसी राजनीतिक दल को गुप्त रूप से दिए जाने वाले दान/भेंटराशि/ चंदा की सीमा 20,000/- रुपये से कम करके 2000/- रुपये कर दी गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि अब राजनीतिक दल दान के रूप में किसी व्यक्ति से दो हजार रुपये से अधिक की राशि नहीं ले सकते। हालांकि दो हजार से कम राशि की प्राप्ति की सूचना राजनीतिक दल द्वारा निर्वाचन आयोग को देना अनिवार्य नहीं है। उनके लिए दो हजार रुपये से अधिक की दान राशि का हिसाब रखना अनिवार्य है।

कॉरपोरेट अंशदानों पर से कैप हटा—बजट 2017 में किसी कम्पनी के पिछले तीन वर्षों के शुद्ध लाभ का 7.5 प्रतिशत तक अंशदान की सीमा समाप्त कर दी गयी है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अब कोई कम्पनी किसी दल को कितनी भी धनराशि दान के रूप में दे सकती है। इसके अलावा अब कम्पनी का ऐसे दान को अपने मुनाफे और घाटे के खाते में दर्ज कराने का दायित्व भी नहीं रहा।

चुनावी बांड की शुरुआत—2018 में केन्द्र सरकार ने चुनावी बॉण्ड योजना की अधिसूचना जारी की। इस योजना की घोषणा 2017 के बजट में की जा चुकी थी। इसे राजनीतिक दलों को दिए जाने वाले नगद दान के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य राजनीतिक वित्तपोषण, अथवा फंडिंग में शुद्ध धनराशि के आगम और पूर्ण पारदर्शिता को प्रोत्साहित करना है। इस योजना की प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. चुनावी बॉण्ड का अर्थ है—वचन पत्र (Promissory note) के रूप में एक बाण्ड जारी करना, जो कि धारक का बैंकिंग इंस्ट्रूमेंट होगा और जिस पर देने वाले अथवा क्रय करने वाले का नाम अंकित नहीं होगा।
2. चुनावी बॉण्ड किसी भी भारतीय नागरिक अथवा किसी ऐसे व्यक्ति या संस्थान द्वारा खरीदा जा सकता है जो भारत में निगमित अथवा स्थापित हो।
3. चुनावी बॉण्ड का इस्तेमाल ऐसे राजनीतिक दलों को दान देने के लिए हो सकता है जिन्हें पिछले चुनाव में कुल मतों के कम-से-कम एक प्रतिशत मत प्राप्त हुए हों—चाहे लोकसभा अथवा विधानसभा चुनावों में।
4. चुनावी बॉण्ड का किसी अर्ह राजनीतिक दल द्वारा केवल एक अधिकृत बैंक के खाते के माध्यम से ही भुनाया जा सकता है।
5. चुनावी बॉण्ड ₹ 1000/-, ₹ 10,000/-, ₹ 1,00,000/-, ₹ 10,00,000/-, तथा ₹ 1,00,00,000/- के मूल्य वर्ग में जारी किए जाते हैं।
6. खरीदार द्वारा दी गई सूचना को अधिकृत बैंक गोपनीय रखता है जिसे किसी भी प्राधिकारी को किसी भी कारण या उद्देश्य से नहीं बताया या साझा किया जा सकता, एक अपवाद सक्षम न्यायालय है जिसे उक्त सूचना किसी कानून लागू करने वाली ऐजेंसी द्वारा दायर किए गए आपराधिक मामले में ऐसी सूचना माँगने पर दी जाएगी।

विदेशी वित्त पोषण/फंडिंग की अनुमति—बजट 2018 में राजनीतिक दलों को विदेशी स्रोतों से चंदा/अंशदान प्राप्त करने की अनुमति दी गयी है। अर्थात्, राजनीतिक दल अब विदेशी कम्पनियों से चंदा प्राप्त कर सकते हैं। उसी अनुरूप विदेशी अंशदान (विनियमन) अधिनियम, 2010 में संशोधन कर दिया गया है। इस संशोधन के तहत विदेशी कम्पनी की परिभाषा को संशोधित कर दिया गया है।

प्र.5. दल परिवर्तन कानून की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
Discuss the anti-defection law in detail.

उत्तर

दल परिवर्तन कानून
(Anti-Defection Law)

52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा सांसदों तथा विधायकों द्वारा एक राजनीतिक दल से दूसरे दल में दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में प्रावधान किया गया है। इस हेतु संविधान के चार अनुच्छेदों में परिवर्तन किया गया है तथा संविधान में एक नयी अनुसूची (दसवीं अनुसूची) जोड़ी गई है। इस अधिनियम को सामान्यतया 'दल-बदल कानून' कहा जाता है।

बाद में 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा दसवीं अनुसूची के उपबंधों में एक परिवर्तन किया गया। इसने उपबंधों को समाप्त कर दिया अर्थात् अब विभाजन के मामले में दल-बदल के आधार पर अयोग्ता नहीं मानी जायेगी।

दल परिवर्तन अधिनियम के उपबंध (Provisions of Anti-Defection Act)

दसवीं अनुसूची में दल-परिवर्तन के आधार पर सांसदों तथा विधायकों को निरर्हता से संबंधित उपबंधों का वर्णन निम्नानुसार है—

1. **निरर्हता**—राजनीतिक दलों के सदस्य—किसी सदन का सदस्य जो किसी राजनीतिक दल का सदस्य है, उस सदन की सदस्यता के निरर्हक माना जाएगा—(अ) यदि वह स्वेच्छा से ऐसे राजनैतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है अथवा (ब) यदि वह उस सदन में अपने राजनीतिक दल के निर्देशों के विपरीत मत देता है या मतदान में अनुपस्थित रहता है, तथा राजनीतिक दल से उसने पंद्रह दिनों के भीतर क्षमादान न पाया हो। उपरोक्त उपबंधों से स्पष्ट है कि कोई सदस्य जो किसी दल के टिकट पर चुना गया हो, उसे उस दल का सदस्य बने रहना चाहिए तथा दल के निर्देशों का पालन करना चाहिए।
   निर्दलीय सदस्य: कोई निर्दलीय सदस्य (जो बिना किसी राजनीतिक दल का उम्मीदवार होते हुए चुनाव जीता हो) किसी सदन की सदस्यता के निरर्हक हो जाएगा यदि वह उस चुनाव के बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता धारण कर लेता है।
   नाम-निर्देशित सदस्य—किसी सदन का नाम-निर्देशित सदस्य उस सदन की सदस्यता के अयोग्य हो जाएगा यदि वह उस सदन में अपना स्थान ग्रहण करने के छह माह बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है।
2. **अपवाद**—दल-परिवर्तन के आधार पर उपरोक्त अयोग्यता निम्न दो मामलों में लागू नहीं होती—(क) यदि कोई सदस्य दल में टूट के कारण अपने दल से बाहर हो गया हो। दल में टूट तब.मानी जाती है जब एक-तिहाई सदस्य सदन में एक नये दल का गठन कर लेते हैं।
   (ख) यदि कोई सदस्य पीठासीन अधिकारी चुने जाने पर अपने दल की सदस्यता से स्वैच्छिक रूप से बाहर चला जाता है अथवा अपने कार्यकाल के बाद अपने दल की सदस्यता फिर से ग्रहण कर लेता है। यह छूट पद की मर्यादा और निष्पक्षता के लिए दी गई है।

   यहाँ ध्यान देने की जरूरत है कि दसवीं अनुसूची का प्रावधान जो विधायक दल के एक-तिहाई सदस्यों द्वारा दल तोड़ने के कारण अयोग्यता से छूट से संबंधित है, 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा हटा दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि दल छोड़ने वालों को 'टूट' (split) के आधार पर कोई संरक्षण नहीं मिलेगा।
3. **निर्धारण प्राधिकारी**—दल-परिवर्तन से उत्पन्न निरर्हता संबंधी प्रश्नों का निर्णय सदन का अध्यक्ष करता है। प्रारंभ में इस कानून के अनुसार, अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता था तथा इस पर किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता था। किंतु किहोतो-होलोहन मामले (1993) में उच्चतम न्यायालय ने यह उपबंध इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि यह उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर जाने का प्रयत्न है। अपने निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब अध्यक्ष दसवीं अनुसूची के आधार पर निरर्हता संबंधी किसी प्रश्न पर निर्णय देता है तब वह एक निरर्हता की तरह कार्य करता है। अत: किसी अन्य अधिकरण की तरह उसके निर्णय की भी दुष्भावना, प्रतिकूलता आदि के आधार पर न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। किंतु न्यायालय ने अध्यक्ष के (न्याय) निर्णय करने के अधिकार के विवाद को इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह स्वयं में राजनीतिक रूप से किसी पक्ष की ओर झुका हुआ है।
4. **नियम बनाने की शक्ति**—किसी सदन के अध्यक्ष को दसवीं अनुसूची के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए नियम (विनियम) बनाने की शक्ति प्राप्त है। ऐसे नियम (विनियम) सदन के समक्ष 30 दिन के लिए रखना आवश्यक है। सदन इन नियमों को स्वीकृत कर सकता है, इनमें सुधार कर सकता है अथवा इन्हें अस्वीकृत कर सकता है। इसके अलावा वह निर्देशित कर सकता है कि किसी सदस्य द्वारा ऐसे नियमों का उल्लंघन ठीक उसी प्रकार माना जाएगा जिस प्रकार सदन के विशेषाधिकारों का उल्लंघन माना जाता है।

इन नियमों के अनुसार अध्यक्ष दल-परिवर्तन को संज्ञान में तभी लेता है जब सदन के किसी सदस्य द्वारा उसे शिकायत प्राप्त हो। अंतिम निर्णय लेने से पूर्व उसे उस सदस्य को (जिसके विरुद्ध शिकायत की गई हो) अपना पक्ष रखने का मौका देना अनिवार्य है।

TOUCH 'n PASS

वह इस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास जाँच के लिए भेज सकता है। अत: दल-परिवर्तन का कोई तत्काल और स्वयंमेव प्रभाव नहीं होता।

दल परिवर्तन अधिनियम का मूल्यांकन (Evaluation of Anti-Defection Act)

संविधान की दसवीं अनुसूची (जो दल-परिवर्तन विरोधी कानून से संबंधित है) की रूपरेखा राजनीतिक दल-परिवर्तन के दोषों तथा दुष्प्रभावों जो कि पद के प्रलोभन अथवा भौतिक पदार्थों के प्रलोभन अथवा इसी प्रकार के अन्य प्रलोभनों से प्रेरित होती है, पर रोक लगाने के लिए की गई है। इसका उद्देश्य भारतीय संसदीय लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करना तथा असैद्धांतिक और अनैतिक दल-परिवर्तन पर रोक लगाना है। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने इसे सार्वजनिक जीवन में सुधारों की ओर पहला कदम बताया था। तत्कालीन केंद्रीय विधि मंत्री ने कहा था कि, 'यदि भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता तथा स्थिरता का कोई प्रभाव हो सकता है, तो बावनवें संशोधन विधेयक का दोनों सदनों में एकमत से स्वीकृत होना ही वह प्रमाण है।'

लाभ—निम्न को दल-उद्धृत विरोधी कानून के लाभ के रूप में उद्धृत किया जा सकता है—

(अ) यह कानून विधायकों की दल-बदल की प्रवृत्ति पर रोक लगाकर राजनीतिक संस्था में उच्च स्थिरता प्रदान करता है।

(ब) यह राजनीतिक दलों को दूसरे दलों में शामिल होने अथवा किसी विद्यमान दल में टूट जैसे लोकतांत्रिक तरीके से विधायिका द्वारा पुनर्समूहन की सुविधा प्रदान करता है।

(स) ये राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार को कम करता है तथा अनियमित निर्वाचनों पर अप्रगतिशील खर्च को कम करता है।

(द) इसने विद्यमान राजनीतिक दलों को एक संवैधानिक पहचान दी है।

आलोचना—यद्यपि दल-विरोधी निरोधक कानून हमारे राजनीतिक जीवन की शुद्धता की तरफ पहला साहसिक कदम था तथा इसने देश के राजनीतिक जीवन में एक नए युग का सूत्रपात किया फिर भी इसके कार्यकलापों में कमी रही और यह दल-परिवर्तन को भी नहीं रोक पाया। इसकी निम्न आधारों पर आलोचना की जा सकती है—

1. यह असहमति तथा दल-परिवर्तन के बीच अंतर को नहीं बता पाया। इसने विधायिका को असहमति के अधिकार तथा सद्विवेक की स्वतंत्रता में अवरोध उत्पन्न किया। अत: इसने दल के अनुशासन के नाम पर दल के स्वामित्व तथा अनुमति की कठोरता को आगे बढ़ाया।
2. इसका व्यक्तिगत तथा वर्गों के दल-परिवर्तन के मध्य विभेद अनुचित है। दूसरे शब्दों में, इसने छिटपुट दल-परिवर्तन पर रोक लगाई किंतु बड़े पैमाने पर होने वाले दल-परिवर्तन को कानूनी रूप दिया।
3. यह किसी विधायक द्वारा विधानमण्डल के बाहर किए गए उसके कार्यकलापों हेतु उसके निष्कासन की व्यवस्था नहीं करता है।
4. इसका निर्दलीय तथा नाम-निर्देशित सदस्यों में भेदभाव अतार्किक ही है। यदि पहला किसी दल में शामिल होता है तो वह निरर्हक हो जाता है, जबकि दूसरे को इसकी अनुमति है।
5. अध्यक्ष पर निर्णय करने की निर्भरता पर इसकी दो आधरों पर आलोचना की जा सकती है। प्रथम, संभवत: वह इस प्राधिकार का राजनीतिक बाध्यताओं के कारण उद्देश्यपूर्ण तथा अभेदभावपूर्ण रूप से प्रयोग न कर पाए। दूसरे उसके पास ऐसे मामलों में न्यायनिर्णयन हेतु विधिक ज्ञान और अनुभव की कमी होती है, वस्तुत: दो लोकसभा अध्यक्षों (रविराय-1991 और शिवराज पाटिल-1993) के दल-परिवर्तन से संबंधित मामलों में न्यायनिर्णयन की अपनी उपयुक्तता पर संदेह जाहिर करता है।

91वाँ संशोधन अधिनियम (2003) [91st Amendment Act (2003)]

कारण—91वें संशोधन अधिनियम (2003) को अधिनियमित करने के निम्नलिखित कारण हैं—

1. दसवीं अनुसूची में दल बदलने के विरुद्ध कानून को सख्त बनाने की मांग अनेक हलकों से होती रही है। इसका आधार यह है कि इस कानून के प्रावधान दलबदल रोकने में प्रभावी सिद्ध नहीं हुई है। दसवीं सूची की भी इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह बड़े पैमाने पर दल-बदल को प्रोत्साहित करती है जबकि व्यक्तिगत दल-बदल का निषेध करती है। आयोग्यता से छूट सम्बन्धी-दसवीं अनुसूची के प्रावधानों की कड़ी आलोचना इसलिए भी हुई है कि इसका सरकार को अस्थिर करने में बड़ी भूमिका होती है।

TOUCH 'n PASS

2. चुनाव सुधार समिति (दिनेश गोस्वामी समिति) ने 1990 की अपनी रिपोर्ट, भारत के विधि आयोग ने अपनी 170वीं रिपोर्ट, 'चुनाव कानूनों में सुधार (1999)' तथा संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC) ने अपनी 2002 की रिपोर्ट में दसवीं अनुसूची के उस प्रावधान को हटाने की अनुशंसा की हैं जिसमें दल-बदल के मामलों में अयोग्यता से छूट मिलती है।
3. 'संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC)' ने यह भी विचार व्यक्त किया कि दलबदलू को मंत्री पद अथवा अन्य किसी सार्वजनिक या लाभकारी राजनीतिक पद से हटाकर उसे दंडित किया जाना चाहिए। यह दंड तक तक जारी रहना चाहिए जब तक कि नये चुनाव के पश्चात नई विधायिका का गठन न हो जाए, अथवा जब तक वर्तमान विधायिका का कार्यकाल पूरा न हो जाए (दोनों में से जो भी पहले हो)।
4. 'संविधान की कार्यप्रणाली को समीक्षा के लिए गठित आयोग (NCRWC)' ने यह मत भी व्यक्त किया है कि केन्द्र में तथा राज्यों में बड़ी मंत्रिपरिषदों को गठन किया जाता रहा है। इस प्रचलन को कानून बनाकर समाप्त करना चाहिए। केन्द्र अथवा राज्य सरकारों में मंत्रियों की संख्या लोकप्रिय सदन की कुल सदस्य संख्या के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रावधान—91वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा मंत्रिमंडल का आकार छोटा रखने, निरर्हक लोगों को नागरिक पद धारण करने से रोकने एवं दल-परिवर्तन विरोधी कानून को सशक्त बनाने के लिये निम्न उपबंध किये गये हैं—

1. प्रधानमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद का आकार, लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा (अनुच्छेद 75)।
2. संसद के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी मंत्री पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा (अनुच्छेद 75)।
3. मुख्यमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद का आकार, राज्य विधानमंडल की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। लेकिन मुख्यमंत्री सहित सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद की कुल संख्या 12 से कम नहीं होनी चाहिये (अनुच्छेद 164)।
4. राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी मंत्री पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा (अनुच्छेद 164)।
5. संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन का किसी भी राजनीतिक दल का ऐसा सदस्य, जो दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हक ठहराया गया है, वह किसी भी लाभ के राजनीतिक पद को धारण करने के भी निरर्हक होगा। यहाँ लाभ के राजनीतिक पद का अभिप्राय है—(अ) केंद्र सरकार या राज्य सरकार के अधीन ऐसा कोई कार्यालय, जिसके लिये वेतन एवं अन्य लाभ संबंधित सरकार द्वारा लोक राजस्व से दिये जाते हों या (ब) किसी निकाय के अधीन कोई कार्यालय, चाहे वह निगमित हो या नहीं, जिसका स्वामित्व पूर्णत: या अंशत: केंद्र सरकार या राज्य सरकार के पास हो तथा जिसके लिये वेतन एवं अन्य लाभ इस निकाय द्वारा दिये जाते हों (अनुच्छेद 361-ख)।
6. दसवीं अनुसूची के उपबंध (दल परिवर्तन विरोधी कानून) विभाजन की उस दशा में लागू नहीं होंगे, जब किसी दल के एक-तिहाई सदस्य उस विभाजित धड़े में शामिल हों। इसका अभिप्राय है कि विभाजन के आधार पर निरर्हकों के लिये कोई और संरक्षण नहीं है।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-V

साम्प्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता, क्षेत्रवाद एवं स्वायत्तता व्यवस्था
Communalism, Secularism, Regionalism Autonomy Arrangements

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीकरण के महत्त्व को बताइए।
State the importance of Indianisation.

उत्तर धर्मनिरपेक्षता को भारत में वास्तव में सफल बनाने के लिए भारतीयकरण की अत्यंत आवश्यकता है। भारतीयकरण का अर्थ भारत के लोगों को हिंदुकरण, इस्लामीकरण अथवा पाश्चात्करण नहीं है। भारतीयकरण का अर्थ धर्मनिरपेक्ष आदर्शों का संश्लेषण है। उसे धर्मनिरपेक्षता को और बढ़ावा देना चाहिए न कि उनके विरुद्ध जाना चाहिए। भारतीयकरण से अभिप्राय यह है कि प्रत्येक भारतीय को भारतीय राष्ट्रिक बनना चाहिए। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए यह आवश्यक है। भिन्नता में एकता तभी आ सकती है यदि सभी भारतीय अपने आपको भारतीय राष्ट्रिक समझे। सहनशीलता अत्यंत आवश्यक है। राष्ट्रीय एकता के लिए दूसरे धर्मों के प्रति सहनशीलता अनिवार्य है। एक धर्म के व्यक्तियों को दूसरे धर्म, दूसरी संस्कृति तथा दूसरी सामाजिक पृष्ठभूमि का ज्ञान होना चाहिए तथा उसके प्रति सहनशीलता होनी चाहिए। कोई भी अपना धर्म तथा रीतियाँ छोड़े बिना किसी दूसरे धर्म तथा रीतियों के प्रति पूर्णतया सहनशील हो सकता है।

प्र.2. स्वायत्ता को परिभाषित कीजिए।
Define autonomy.

उत्तर स्वायत्तता किसी विशेष स्थान पर एक प्रकार की सम्प्रभुता होती है जिससे निर्णय लेने में बेहतरी आती है। यह किसी राज्य के विकासात्मक अंग भी होते हैं, जो आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्र.3. सांप्रदायिकता से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by communalism?

उत्तर साम्प्रदायिकता एक संकीर्ण मानसिक सोच है जो अपने समूह को श्रेष्ठ मानती है और उसके हितों के संवर्धन के लिए कोशिश करती है। यह धर्म, जाति, भाषा, स्वजातीय या क्षेत्रीय में से किसी भी आधार पर हो सकती हैं। किन्तु एक निश्चित अर्थ में साम्प्रदायिकता का आधार धर्म है।

प्र.4. साम्प्रदायिकता को दूर कैसे किया जा सकता है?
How can communalism be removed?

उत्तर 1. साम्प्रदायिक संगठनों एवं सम्प्रदायवाद का प्रचार प्रसार करने वाले प्रकाशनों पर सरकारी कानून द्वारा प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए।

2. सरकार को ऐसी विधियों का निर्माण करना चाहिए जिनका उद्देश्य किसी सम्प्रदाय विशेष का हित संरक्षण न होकर सार्वजनिक हित हो।

प्र.5. धर्मनिरपेक्षता का क्या अर्थ है?
What is the meaning of secularism?

उत्तर धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य राजनीति या किसी गैर धार्मिक मामलें से धर्म को दूर रखे तथा सरकार धर्म के आधार पर किसी से भी कोई भेदभाव न करे।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. धर्मनिरपेक्षता के तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।
Explain the elements of secularism.

उत्तर

धर्मनिरपेक्षता के तत्त्व
(Elements of Secularism)

धर्मनिरपेक्षता के तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **समानता का विकास**—भारत में पहले धर्म, जाति लिंग आदि के आधार पर भेदभाव किया जाता था। हिंदुओं में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। किंतु धर्मनिरपेक्षता के कारण इस प्रकार के भेदभाव समाप्त हो गए।
2. **धार्मिकता का ह्रास**—धर्मनिरपेक्षता की जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे ही धर्म का ह्रास होने लगता है मानवीय व्यवहार और सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करने में धर्म के हस्तक्षेप को उचित नहीं माना जाता है।
3. **तार्किकता**—धर्मनिरपेक्षता में तर्क को बहुत महत्त्व दिया जाता है और जीवन में आने वाली प्रत्येक समस्या पर तर्क और बुद्धि के आधार पर विचार किया जाता है न कि धार्मिक और ईश्वरीय आधार पर। तार्किकता का बढ़ना ही धर्मनिरपेक्षता है।
4. **विभेदीकरण**—धर्मनिरपेक्षता में विभेदीकरण बढ़ता जाता है अर्थात् समाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक पक्ष एक दूसरे से अलग कर दिए जाते हैं। इन सभी क्षेत्रों में धर्म का प्रभाव कम हो जाता है। जैसे—पहले राजा पुरोहित के अधीन होता था परंतु आज धर्म और राजा अलग-अलग हो गए हैं।
5. **आधुनिकीकरण की प्राप्ति में सहायक**—प्रत्येक समाज आज अपने को आधुनिक कहलवाना पसंद करता है इसलिए परंपरागत आचार-व्यवहारों में परिवर्तन करना आवश्यक है। भारत में धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित होने के बाद यहाँ के परंपरागत व्यवहार प्रतिमान में बहुत परिवर्तन हुआ।
6. **वैज्ञानिक अवधारणा**—धर्म चूँकि श्रद्धा की वस्तु है इसलिए उसमें तर्क के लिए कोई स्थान नहीं होता जबकि धर्मनिरपेक्षता तार्किकता पर बल देती है और उसी वस्तु को सही मानती है जिसमें कार्य-कारण का संबंध स्पष्ट हो।

भारत 15 अगस्त, 1947 को आजाद हुआ। 26 जनवरी, 1950 को इसने अपना संविधान लागू किया। भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता या धर्म निरपेक्षता शब्द को लाया गया है जो संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता भी है। अनेकता में एकता को आधार मानकर यह हिमालय से कन्याकुमारी तक एक है। यहाँ पर सर्व धर्म समन्वय की बात होती है।

प्र.2. भारत में वास्तविक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना कैसे की जाए? भारत में धर्मनिरपेक्षता की सफलता को बताइए।
How to establish a genuine secular state in India? State the success of secularism in India.

उत्तर

भारत में वास्तविक धर्मनिरपेक्ष राज्य
(Genuine Secular State in India)

धर्मनिरपेक्षता आधुनिक युग की माँग है। भिन्न धर्मों वाले देश के लिए यह और भी आवश्यक है। ब्रिटेन पाकिस्तान अपने आपको धर्मनिरपेक्ष राज्य नहीं कह सकते। भारत में भी इस शब्द के वास्तविक अर्थ की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत में भिन्न धर्मों के लोग कई बार इसका अर्थ अपने ढंग से ही लगाते हैं जिससे हमारे नवराष्ट्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। नेहरू ने 1954 में कहा था, 'भारत के लिए 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द ठीक नहीं है, बेहतर शब्द न होने के कारण इसका प्रयोग किया जा रहा था।' डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में, 'भारतीय राज्य की धार्मिक तटस्थता को धर्मनिरपेक्षता अथवा नास्तिकता से नहीं गड़बड़ाना चाहिए। यह धर्मनिरपेक्षता प्राचीन भारतीय परंपराओं के अनुकूल है।'

इसलिए सच्चे अर्थों में धर्मनिरपेक्ष बनने के लिए हमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपनाना पड़ेगा जिसके बिना भारत भारत नहीं हो सकता। संस्कृति का अर्थ विभिन्न समूहों की भौतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा कलात्मक उपलब्धियाँ हैं। इसमें सांझे मूल्य तथा विश्वास सम्मिलित होते हैं। इसलिए भारतीय संस्कृति को अपनाने के लिए हमें हिंदू, बौद्ध, जैन, सिक्ख तथा मुस्लिम धर्मों के पाठों को ग्रहण करना चाहिए। प्राय: एक धर्म के लोगों को दूसरे धर्मों का ज्ञान नहीं है। ऐसे सांझे ज्ञान के बिना हम भारतीय संस्कृति को पूरी तरह नहीं समझ सकते।

किंतु भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। जनसंघ जिसे सांप्रदायिक दल समझा जाता था, ने भी अपने आपको राष्ट्रीय दल घोषित किया है जिसका सदस्य किसी भी धर्म का व्यक्ति बन सकता है। कुछ मुसलमान इसके सदस्य बन भी गए हैं। अब कोई भी राजनीतिज्ञ खुले तौर पर धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि

TOUCH 'n' PASS

भारत में धर्मनिरपेक्षता की जड़ मजबूत है। यह अच्छी बात है और इससे भारत में स्वस्थ राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण बनाए रखने में सहायता मिलती है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता की सफलता (Success of Concept of Secularism in India)

भारत में पर्याप्त सीमा तक धर्मनिरपेक्षता की भावना सफल रही है। भिन्न धर्मों के लोग परस्पर निकट आए हैं। आधुनिकीकरण तथा पाश्चात्यकरण के साथ धर्मनिरपेक्षता का विचार भी भारत में बराबर पनपा है। लोग धार्मिक दृष्टिकोण की बजाय तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने लगे हैं। एम.एन. श्रीनिवास के मतानुसार स्वतंत्रता के बाद हिंदुओं पर धर्मनिरपेक्षता का बहुत प्रभाव पड़ा है। हिंदुओं में से ब्राह्मणों पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है। ऊँची जाति के हिंदुओं और अन्य हिंदुओं का सामाजिक अंतर भी समाप्त हो रहा है। इसका जाति प्रथा पर भी प्रभाव पड़ा है। जाति प्रथा समाप्त तो नहीं हुई है लेकिन इसका रूप बदल गया है। जाति अब राजनीति के लिए इतनी आवश्यक हो गई जितनी कि राजनीति के लिए जाति। लाभ उठाने के लिए भिन्न जातियों में प्रतियोगिता है। इसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में परिवर्तन आ गया है। परिवार में भी परिवर्तन हो गया है। संयुक्त परिवार के स्थान पर अब एकल परिवार है। धर्मनिरपेक्षता का धार्मिक मठों तथा उनके मुखियाओं पर भी प्रभाव पड़ा है। शिक्षित हिंदू अब यह अनुभव करते हैं कि उनकी संपत्ति को शिक्षा तथा सामाजिक कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

प्र.3. साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामों का विश्लेषण कीजिए।
Analyze the repercussions of communalism.

उत्तर

साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम
(Repercussions of Communalism)

साम्प्रदायिकता के कारण ना सिर्फ राष्ट्रीय एकता अखण्डता को खतरा पैदा हुआ है बल्कि विकास की प्रक्रिया भी अवरुद्ध हुई है। साम्प्रदायिकता के कारण देश के दुकड़े हुए जो आज भी अखण्डता के लिए खतरा बनी हुयी है। साम्प्रदायिक समस्या के कारण देश को कई दुष्परिणाम भोगने पड़े।

1. **आपसी द्वेष**—साम्प्रदायिकता के कारण समाज में फूट पड गयी, आपसी द्वेष एवं अविश्वास पैदा हुआ। समाज में आपसी समरसता का वातावरण नहीं रहा जिसके कारण छोटी सी घटना भयंकर साम्प्रदायिकता का रूप ले लेती है। समाज में शान्ति व्यवस्था एवं भाईचारे की भावना खत्म हो जाती है एवं विविधता में एकता का भाव खत्म हो जाता है।
2. **आर्थिक हानि**—साम्प्रदायिक दंगे भडकने पर भयंकर विनाश होता है। गाड़ियाँ व बाजार जला दिये जाते हैं एवं राष्ट्रीय सम्पति को नष्ट कर दिया जाता है। दंगों के कारण कर्फ्यू वगैरह के कारण कई दिनों तक बाजार बंद रहते हैं जिसके कारण आर्थिक नुकसान के साथ दैनिक मजदूरी पर गुजारा करने वाले लोगों के सामने भुखमरी की नौबत आ जाती हैं।
3. **प्राण हानि**—साम्प्रदायिक दंगों में सैकड़ों लोग मारे जाते हैं तथा हजारों घर उजाड़ दिये जाते हैं। राँची, श्रीनगर, वाराणसी, अलीगढ़, हैदराबाद, मेरठ, बम्बई आदि के दंगे इसका उदाहरण हैं जिनमें मरने वालों के अलावा हजारों लोग अपंग व अपाहिज हो गये।
4. **राजनीतिक अस्थिरता**—साम्प्रदायिक समस्या के कारण एसी राजनीतिक समस्याएं पैदा हो जाती हैं जिससे सरकारों की स्थिरता प्रभावित होती हैं। अस्थायी सरकार स्थायी विकास के कार्य नहीं कर पाती। वह सदा अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु प्रयत्नशील होती हैं जिससे विकास कार्यों में पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाती। फलस्वरूप देश के विकास की गति अवरुद्ध होती हैं।
5. **राष्ट्रीय एकता में बाधा**—साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता एवं भाईचारे की भावना को नष्ट करती हैं। समाज में फूट पैदा कर सामाजिक समरसता को खत्म करती हैं। उल्लेखनीय है कि बहुसंख्यक-साम्प्रदायिकता स्वयं को राष्ट्रवाद के छद्म रूप में पेश करती है, जबकि अल्पसंख्यक-साम्प्रदायिकता का अलगाववादी स्वरूप मुखर होता है। राष्ट्रीय एकता के लिए इन दोनों से सावधान रहना जरूरी है।
6. **राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा**—भारत एक बहु सम्प्रदायी देश है इसमें अनेक सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। देश में शान्ति एवं व्यवस्था के साथ विकास के लिए सबको मिलजुलकर रहना आवश्यक है लेकिन उग्र साम्प्रदायिक भावनाएं एकता को पनपने ही नहीं देती।
7. **औद्योगिक एवं व्यावसायिक विकास में बाधा**—देश का औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास शान्ति एवं सुव्यवस्था में ही हो सकता है। अशान्ति एवं हिंसा के वातावरण में कोई पूँजीपति अपना धन नहीं लगायेगा। इस प्रकार साम्प्रदायिक अशान्ति देश का औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास अवरुद्ध कर देती हैं। विकास शान्ति एवं सुव्यवस्था में ही हो सकता हैं। पंजाब में पैदा इसी प्रकार की अशान्ति ने पंजाब को आर्थिक विकास के पथ पर कई वर्ष पीछे कर दिया था।

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. साम्प्रदायिकता को दूर करने के सुझाव दीजिए।
Give the suggestions to remove communalism.

उत्तर

साम्प्रदायिकता को दूर करने के सुझाव
(Suggestions to Remove Communalism)

साम्प्रदायिकता देश के लिए ही नहीं सम्पूर्ण मानवता के लिए एक गम्भीर अभिशाप है। देश को इससे बहुत कुछ भुगतना पड़ा हैं। देश की एकता एवं अखण्डता पर खतरा है, प्रगति एवं विकास में बाधक है। इसलिए साम्प्रदायिकता को दूर किया जाना चाहिये। साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं—

1. सरकार को सदैव ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसके द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया जाये, जिससे साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिले। समानता के सम्बन्ध में आदर्शों की बातें करने के बजाय उसे व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित करने का प्रयास किया जाना चाहिये।
2. शिक्षा में शाश्वत नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को शामिल किया जाना चाहिये। भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है लेकिन शाश्वत नैतिक जीवन मूल्यों की शिक्षा तो सबके लिए अनिवार्य होनी चाहिये। धर्म विशेष की शिक्षा की जगह देश भक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने वाली शिक्षा होनी चाहिये।
3. धर्म के आधार पर किसी धार्मिक वर्ग के लिए कोई विशेष रियायतें या सुविधाएँ न दी जाये जिससे अन्य धर्मों के लोगों में ईर्ष्या भावना पैदा हो । धर्म एवं जाति के आधार पर इस तरह का भेदभाव आपसी तनाव पैदा करता है जिससे बंधुत्व की भावना खत्म होती हैं।
4. अल्प संख्यकों के मन में सुरक्षा का भाव पैदा हो सरकार ऐसी व्यवस्था करे, इसके लिए उन्हें विशेष अवसर दिये जाएं।
5. साम्प्रदायिकता का एक सबसे बड़ा कारण चुनावी राजनीति है। राजनीतिक दल चुनावों में फायदा उठाने हेतु साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं इस पर कड़ा प्रतिबंध होना चाहिये। किसी भी दल को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनाव प्रचार में धर्म का सहारा लेने से रोकने हेतु दृढ़ व सुनिश्चित नियमों का निर्माण व क्रियान्वयन अतिआवश्यक है।
6. समय-समय पर साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व की माँगों को दृढ़ता से ठुकराना होगा। नागरिकों में एक राष्ट्र की भावना पैदा करनी होगी।
7. शिक्षा से दृष्टिकोण उदार बनता है तथा व्यक्ति का मानसिक विकास होता है। अशिक्षित व्यक्ति धर्म का संकीर्ण एवं अपने स्वार्थ में प्रयोग करने वालों के बहकावे में अधिक आ जाते हैं।
8. सर्वधर्म समभाव को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये। साहित्य एवं मीडिया द्वारा भी ऐसे कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये। जिससे लोगों को एक दूसरे के धर्म की जानकारी मिल सके व धार्मिक सहिष्णुता पैदा हो सके।
9. धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का गठन न हो तथा धार्मिक संगठनों को राजनीति में भाग लेने पर प्रतिबंध हो । साम्प्रदायिक संगठनों पर पूर्ण प्रतिबंध हो।

सच्चर कमेटी प्रतिवेदन, 2006—भारतीय मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करने व उसमें सुधार लाने के लिए सुझाव देने हेतु सेवानिवृत्त न्यायाधीश राजेन्द्र सिंह सच्चर की अध्यक्षता में सात सदस्यीय कमेटी का गठन किया गया। सच्चर कमेटी ने मुसलमानों की स्थिति का अध्ययन कर कुछ सुझाव दिये। जिसके तहत अल्पसंख्यकों के कल्याण एवं विकास के लिए 15 सूची कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान, मुस्लिम बालिकाओं के लिए सुविधाएँ आदि। कुछ लोगों ने राजनीतिक लाभ के लिए अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण की माँग की। तत्कालीन केन्द्र सरकार ने पिछड़ा वर्ग कोटे मे से 4.5 प्रतिशत आरक्षण अल्पसंख्यकों को देने का निर्णय किया जिसे पहले आन्ध्रप्रदेश हाईकोर्ट ने फिर सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया। भारतीय संविधान में धर्म के आधार पर आरक्षण को अस्वीकार किया गया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. धर्मनिरपेक्षता को विस्तारपूर्वक बताइए।
Explain the securalism in detail.

उत्तर

धर्मनिरपेक्षता (Securalism)

धर्मनिरपेक्षता राजनीतिशास्त्र की एक जटिल अवधारणा है। आज का युग स्वतंत्रता और समानता का युग है। अत: धर्म के नाम पर अथवा धर्म के आधार पर नागरिकों में भेदभाव करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता अत: धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना आज

के युग की पुकार है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ ही होता है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं हो और धर्म के आधार पर वह नागरिक नागरिक के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता हो।

भारतीय संविधान के अनुसार भारत में एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। अर्थात् राज्य धर्म व जाति आदि के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा संस्था को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं करेगा। परंतु हरिजन आदिवासियों तथा समाज के दबे कुचले एवं पिछड़े वर्गों के लोगों को केवल कुछ समय के लिए कुछ विशेष सुविधाएँ दी गई हैं ताकि वे समाज एवं राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ सकें एवं अपने जीवन स्तर को ऊपर उठा सके। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि सभी नागरिकों को धर्म, विश्वास, पूजा इत्यादि बातों में स्वतंत्रता होगी और सबको न्याय एवं अवसर की समानता समान रूप से प्रदान की जाएगी और वे अपने धार्मिक विचारों का प्रचार स्वतंत्रतापूर्वक कर सकते हैं। धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य यह नहीं है कि भारत सरकार अपने नागरिकों को नास्तिक अथवा विधर्मी बनाना चाहती है। इसका अर्थ यह है कि राज्य एवं केंद्र की सरकारें धार्मिक कृत्यों में तटस्थ रहेंगी और राज्य किसी धर्म विशेष के साथ पक्षपात नहीं करेगा। भारतीय नागरिकों को यह अधिकार है कि वे अपनी शिक्षण संस्थाएँ खोलकर उनमें धार्मिक शिक्षा दे सकते हैं। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान की प्रस्तावना में भी धर्मनिरपेक्ष शब्द जोड़ दिया गया है ताकि धार्मिक मामले में जनता दिग्भ्रमित न हो सभी नागरिक यह महसूस कर सकें कि राज्य धार्मिक मामलों में अथवा धार्मिक आधार पर नागरिक-नागरिक के बीच कोई विभेद नहीं करेगा अर्थात् धर्म के मामले में राज्य तटस्थ रहेगा। इतना जान लेने के बाद Secularization के अर्थों को सही परिपेक्ष्य में जान लेना यहाँ पर आवश्यक प्रतीत होता है।

Secularization शब्द Secular से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ *धर्मनिरपेक्ष* होता है *Chambers English Hindi Dictinary* में Secular का शाब्दिक अर्थ सर्व धर्म समतापरक, धर्मनिरपेक्ष तथा असंप्रदायिक बतलाया गया है। अत: धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि वह नागरिकों को धर्म में विश्वास रखने पर रोक लगाने वाला होता है इसका वास्तविक अर्थ होता है धार्मिक मामलों में राज्य की तटस्थता। धर्मनिरपेक्ष राज्य में सभी नागरिकों को धार्मिक अधिकार प्राप्त रहते हैं। यों तो Secular या Secularization की परिभाषाओं के संबंध में विद्वानों में मतेक्यता का अभाव है। इस संबंध में कहा जाता है कि जितने लेखक हैं उतने ही अलग-अलग ढंग से उन्होंने इसके अर्थ बतलाए हैं। इस संबंध में **आर. वेंकटरमण** की परिभाषा अधिक सटीक एवं सोद्देश्यपूर्ण जान पड़ती है जो इस प्रकार है—'धर्मनिरपेक्ष राज्य न तो धार्मिक होता है, न अधार्मिक, लेकिन धार्मिक मतों और सिद्धांतों से अपने को अलग रखता है और प्रत्येक नागरिक को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार देता है, इस प्रकार कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म के मामले में राज्य (भारत) कोई दखल नहीं देगा। यहाँ का नागरिक अपनी इच्छा से कोई भी धर्म रख सकता है तथा उसका अनुपालन कर सकता है। अपनी इच्छा से वह (यानी बिना राज्य के दबाव के) यदि चाहे तो अपना धर्म परिवर्तन भी कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि धार्मिक मामलों में राज्य की भूमिका तटस्थता की होगी अर्थात् अपने राज्य के सभी नागरिकों के मध्य धार्मिक आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाएगा। कानून की निगाह में हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी बराबर हैं। अत: जाति, धर्म एवं संप्रदाय के आधार पर राज्य द्वारा नागरिक-नागरिक के बीच किसी प्रकार का विभेद नहीं किया जाएगा।'

डोनाल्ड यूजीन स्मिथ ने भारतीय संदर्भ में पंथ निरपेक्षता के बारे में लिखा है कि 'पंथ निरपेक्ष राज्य वह राज्य है जो धर्म की व्यक्तिगत तथा समवेत स्वतंत्रता प्रदान करता है, संवैधानिक रूप से किसी धर्म विशेष से जुड़ा हुआ नहीं है और जो धर्म का न तो प्रचार करता है और न ही उसमें हस्तक्षेप करता है।'

न्यायमूर्ति देसाई ने कहा था, 'एक पंथ निरपेक्ष राज्य व्यक्ति के साथ एक नागरिक के रूप में व्यवहार करता है और उसके पंथ की ओर ध्यान नहीं देता है। वह किसी पंथ विशेष से जुड़ा नहीं होता है और न वह किसी पंथ को बढ़ावा देता है और न ही उसमें हस्तक्षेप करने का प्रयास करता है। अनिवार्य है कि एक पंथ निरपेक्ष राज्य का धार्मिक कार्यों से कोई संबंध न हो, सिवाय उस स्थिति के जब उनके प्रबंध में अपराध, धोखाधड़ी, अंतर्ग्रस्त हो या वह राज्य की एकता तथा अखंडता के लिए खतरा बन जाए।'

न्यायमूर्ति गजेंद्र गडकर ने भारतीय संविधान की पंथ निरपेक्षता की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'नागरिकों को नागरिक के रूप में समान अधिकार प्राप्त है तथा इस मामले में उनका पंथ या मजहब पूर्णतया अप्रासंगिक है।' उन्होंने कहा है कि राज्य किसी पंथ विशेष के प्रति आसक्ति नहीं रखता, वह धार्मिक या धर्म विरोधी नहीं होता, वह सभी पंथों को समान स्वतंत्रता प्रदान करता है। भारतीय 'धर्मनिरपेक्षता' ने धर्म के युक्ति युक्त कार्यों के बीच 'तर्क संगत विश्लेषण' स्थापित करने का प्रयास किया।

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में धर्मनिरपेक्षता की लड़ाई राजनीतिक स्तर पर लड़ी जा रही थी, जिसमें समाज के सभी वर्गों को स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाता था। यह लड़ाई सांस्कृतिक स्तर पर भी चल रही थी। इसके अंतर्गत प्रत्येक धर्म की पुन: व्याख्या करने की व्यवस्था थी ताकि प्रत्येक संस्कृति की रचनात्मक और गतिशील प्रक्रियाओं को प्रमुखता

मिले और विभिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे के निकट आएँ परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस लड़ाई का स्वरूप बदल गया। इसे आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक स्तर पर चलाया गया। सभी समुदायों, खासकर उपेक्षित एवं दबे-कुचले वर्गों को विकास कार्यों में शामिल करना धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने के प्रयास की अनिवार्य शर्त बन गई।

धर्मनिरपेक्षता के संबंध में यूरोपीय मॉडल
(European Model in Relation to Secularism)

धर्मनिरपेक्षता का यूरोपीय मॉडल मुख्यत: अमेरिकी मॉडल द्वारा प्रेरित है। इस मॉडल में विशेष बात यह है कि राज्य न तो धर्म के मामले में हस्तक्षेप कर सकता है और न ही धर्म (धार्मिक संस्था) राज्य के मामले में कोई निर्देश दे सकता है। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र तथा दोनों की सीमाएँ अलग हैं। राज्य अपनी किसी नीति को धार्मिक आधार पर निर्मित नहीं कर सकता है और न धर्म किसी राज्य नीति को धार्मिक आधार पर प्रभावित कर सकता है। राज्य किसी धार्मिक संस्था को किसी भी प्रकार से सहायता नहीं करेगा और न धार्मिक समुदायों द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं को वित्तीय सहयोग देगा। यदि किसी धार्मिक समुदाय का कोई कार्य देश के कानून द्वारा निर्मित सीमा के अंदर है तो राज्य इनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। जैसे यदि कोई विशेष धार्मिक समुदाय अपने कुछ सदस्यों को कोई धार्मिक कार्य करने से निषेध कर देता है तो इसमें राज्य उन सदस्यों का पक्ष लेते हुए कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि धर्म एक निजी मामला है और वह राज्य का विषय नहीं हो सकता।

प्र.2. भारत में धर्मनिरपेक्ष राज्य के विकास में बाधक तत्त्वों का वर्णन कीजिए तथा धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने वाले कारकों का भी उल्लेख कीजिए।

Describe the factors hindering the development of secular state in India and Also, mention the factors that promote secularism.

उत्तर

धर्मनिरपेक्ष राज्य के विकास में बाधक तत्त्व
(Factors Hindering the Development of Secular State)

भारत में कई ऐसे घटक तथा शक्तियाँ हैं जो धर्मनिरपेक्ष राज्य के विकास में बाधक हैं। ये निम्नलिखित हैं—

1. **सांप्रदायिकता** (Secularism)—सांप्रदायिकता का अर्थ है सारे राष्ट्र से अधिक अपने धार्मिक समुदाय के प्रति निष्ठा रखना। सांप्रदायिक चुनावों को समाप्त करने के बाद भी देश में सांप्रदायिकता समाप्त नहीं हुई है। अभी तक भी यह एक राजनीतिक शक्ति बनी हुई है और कई बार इलाहाबाद, अलीगढ़, दिल्ली, मेरठ तथा कलकत्ता में हिंसात्मक दंगों के रूप में फूटकर सामने आती है।
2. **जातिवाद** (Casteism)—संवैधानिक दृष्टि से तो जातिवाद को समाप्त कर दिया गया है लेकिन भारतीय समाज में अभी तक यह प्रचलित है। भारत में लगभग सभी राजनीतिक दल अभी तक किसी चुनाव-क्षेत्र की जनसंख्या की जाति के आधार पर ही चुनाव लड़ते हैं।

   भारत में साम्यवादी दल, जो धर्मनिरपेक्ष है और जातिरहित तथा वर्गरहित समाज में विश्वास रखता है ने भी जातिवाद से समझौता कर लिया है। आंध्र प्रदेश में साम्यवादी दल के इतिहास को काम्मा और रेड्डी जातियों के संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

   मोरिस जोंस के शब्दों में, 'जाति अथवा समुदाय पारंपरिक राजनीति का केंद्र है। सारा सामाजिक ढाँचा इससे जुड़ा हुआ है। यह सब ओर व्यापक है। प्रत्येक व्यक्ति किसी विशेष जाति अथवा समुदाय में उत्पन्न होता है और उससे समाज में एक विशेष स्थान पाता है जिससे उसका सारा व्यवहार तथा दृष्टिकोण प्रभावित होता है।'
3. **भाषावाद** (Lingualism)—भाषावाद न केवल राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा है बल्कि भारत में एक सच्चे धर्मनिरपेक्ष राज्य के विकास में भी बाधा है। अज्ञानतावश उर्दू तथा संस्कृत जैसी कई भाषाओं को विशेष धर्मों से संबद्ध किया जाता है।
4. **धार्मिक समुदायों के साथ भिन्नात्मक व्यवहार** (Differential Treatment with Religious Communities)—भारतीय राज्य के सम्मुख एक बड़ी कठिनाई है। धर्मनिरपेक्षता के कड़े अर्थों के अनुसार यह ('सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा स्वास्थ्य' के आधार के अतिरिक्त) किसी सामाजिक रीति में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। दूसरी ओर सामाजिक न्याय भारतीय सामाजिक ढाँचे में आमूल परिवर्तनों की माँग करता है।

TOUCH 'n' PASS

प्रो. स्मिथ के मतानुसार, 'भारत में राज्य की संवैधानिक शक्तियों पर धर्मनिरपेक्षता के नाम पर लगाई गई सीमाओं को अनुभव नहीं किया जाता। प्राय: यह प्रश्न पूछा जाता है। यदि सरकार सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के विस्तृत क्षेत्रों को विनियमित कर सकती है तो उसी प्रकार वह धार्मिक क्षेत्र को विनियमित क्यों नहीं कर सकती?'

भारत में कुछ राज्यों ने हिंदी मंदिरों को 'सुधारने' का कार्य किया है। 1950 का मद्रास पशु तथा पक्षी बलिदान उन्मूलन अधिनियम राज्य द्वारा प्रत्यक्ष रूप से धार्मिक सुधार करने का एक उदाहरण है। धर्म को सुधारने के आधार पर ही हिंदू कोड बिल पास किया गया था। इसी प्रकार मंदिर प्रबंध को सुधारने के लिए और बिल पास किए गए हैं। कुछ निजी संपत्ति अधिनियम भी बनाए गए हैं जो केवल हिंदुओं पर लागू होते हैं। सरकार द्वारा किसी मुस्लिम प्रथा को नहीं छुआ गया है। यह अद्भुत बात है कि सरकार भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राज्य में भिन्न धर्मों के लोगों के सुधार के संबंध में भिन्न विचार रखती है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री वी.पी. सिंह ने राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद समस्या का समाधान धर्मनिरपेक्षता के आधार पर करने पर बल दिया था।

5. **सरकारी उत्सवों में रीतियों का प्रचलन** (Continuance of Religious Observance in Official Functions)—मंत्री शपथ लेते समय अपने-अपने धर्मों की रीतियों का अनुसरण करते हैं। जहाजों तथा संस्थाओं का उद्घाटन भी धार्मिक रीतियों से होता है। इनके लिए ब्राह्मणों को बुलाया जाता है। धर्मनिरपेक्षता पर बुरा प्रभाव डालने वाली बात सांप्रदायिक दलों में वृद्धि है। धर्मनिरपेक्षता की भावना के विकास के मार्ग में ऐसे दल बाधा उत्पन्न करते हैं।
6. **पाकिस्तान के साथ संबंध** (Relation with Pakistan)—वी.के. सिन्हा के मतानुसार भारत में धर्मनिरपेक्षता का भविष्य पाकिस्तान के साथ उनके संबंधों से जुड़ा हुआ है। पाकिस्तान भारत की धर्मनिरपेक्षता पर संदेह करता है। पाकिस्तान का जन्म ही धर्मनिरपेक्षता के विरोध में हुआ था। पाकिस्तान अपने आपको इस्लामी मूल्यों का संरक्षक मानता है। जिसके कारण आजादी के बाद से ही दोनों देशों का संबंध मधुर नहीं हो सका है। इधर हाल के वर्षों में दोनों देशों के संबंध में सुधार के नवीन प्रयास किए जा रहे हैं। दोनों देशों के बीच रेल एवं बस परिवहन का आवागमन शुरू हो गया है। राजनयिक प्रयास के माध्यम से दोनों देशों के बीच नए संबंधों की स्थापना के लिए नए प्रयास किए जा रहे हैं।

धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने वाले कारक (Factors that Promote Secularism)

भारत में धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने वाले निम्नलिखित कारक हैं—

1. **पश्चिमीकरण**—धर्मनिरपेक्षता को बढ़ाने में पश्चिमीकरण ने योगदान दिया है। अंग्रेजों के 150 वर्ष के शासन काल में यह पश्चिमीकरण प्रभावी रहा। इसमें नई प्रौद्योगिकी यातायात, संचार, डाक तार, रेल, शिक्षा, नवीन ज्ञान, विश्वास और मूल्यों का प्रभाव पड़ा जिससे भारत में धर्म का प्रभाव कम हुआ तथा भोगवाद, व्यक्तिवाद और भौतिकवाद को बढ़ावा मिला।
2. **नगरीकरण तथा औद्योगीकरण**—धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया नगरों में ही अधिक देखने को मिलती है क्योंकि नगरों में ही औद्योगीकरण, शिक्षा, संचार, रेल, प्रौद्योगिकी गाँवों की अपेक्षा अधिक पाए जाते हैं जिनमें विभिन्न जातियों, प्रजातियों, धर्मों, भाषाओं के लोग साथ-साथ काम करते हैं। इससे उनमें धार्मिक कट्टरता समाप्त होकर तार्किता और वैज्ञानिकता का विकास होता है।
3. **यातायात तथा संचार के विकसित साधन**—प्राचीन समय में संचार के साधनों का अभाव था इसलिए उनमें गतिशीलता नहीं पाई जाती थी। अन्य धर्मों और संप्रदायों के संपर्क में न आने के कारण वे धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वासों से घिरे रहते थे। परंतु यातायात और संचार के साधनों के विकसित हो जाने से उनमें गतिशीलता बढ़ी तथा व्यक्ति अन्य धर्मों, जातियों, प्रजातियों के लोगों के संपर्क में आए तथा धार्मिक कट्टरता कम हुई तथा समानता की धारणा पनपी।
4. **आधुनिक शिक्षा प्रणाली**—आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने धर्मनिरपेक्षता को बढ़ाने के लिए सहयोग दिया है। प्राचीन शिक्षा में धर्म की प्रधानता थी और शिक्षा केवल द्विज जातियों तक ही सीमित थी किंतु आधुनिक शिक्षा सभी के लिए समान रूप से खुली है।
5. **धार्मिक एवं समाज सुधार आंदोलन**—भारत में धर्म और समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए अनेक आंदोलन चलाए गए। उनके साथ स्वामी विवेकानंद, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा गाँधी, केशवचंद्र सेन। सैयद अहमद खाँ, रानाडे आदि के नेतृत्व में अनेक सुधार कार्यक्रम चले। इन सभी के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय समाज में छुआछूत, जाति-पाँति का भेद-भाव, कट्टरता, धार्मिक अंधविश्वास आदि में कमी हुई।
6. **सरकारी प्रयत्न**—भारत में धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने में सरकार द्वारा विभिन्न समयों पर बनाए गए विधानों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जैसे—जाति निर्योग्यता उन्मूलन अधिनियम 1850, हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम

1856, विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिंदू विवाह अधिनियम 1955, अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955 आदि के द्वारा हिंदुओं के परंपरागत धर्म, विवाह और छुआछुत संबंधी विचारों में परिवर्तन हुए। नए संविधान द्वारा देश के सभी नागरिकों को समान मौलिक अधिकार प्रदान किए गए।

7. **राजनीतिक दल**—भारत में राजनीतिक दलों ने भी धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा दिया है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के सभी जाति और धर्मों के व्यक्ति सदस्य थे। समाजवादी नेताओं ने भी धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा दिया है।
8. **धार्मिक भिन्नता**—भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध सभी धर्मों के लोग साथ-साथ रहते हैं, इसलिए भारत में धर्मनिरपेक्षता को स्वीकार किया है। उससे सभी धर्मों के मानने वालों में सद्भाव और उदारता पैदा हुई जिससे धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा मिला।

विकासशील देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जिसने धर्मनिरपेक्षता को सरकार की नीति और कार्यक्रमों का निर्देशक सिद्धांत माना है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता कोई बौद्धिक अवधारणा नहीं है और न ही इसकी उत्पत्ति सैद्धांतिक और वैचारिक उहापोह में से हुई है। इसने स्वतंत्रता संग्राम के उन नेताओं और असंख्य अज्ञात भारतवासियों के बलिदान से भौतिक शक्ति और नैतिक बल प्राप्त किया जो गंभीर घड़ी में भी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की राह से डिगे नहीं। इस प्रकार के त्याग व संघर्ष के इतिहास ने ही भारत में धर्मनिरपेक्ष परंपरा के रूप को गढ़ा है।

इसमें कोई शक नहीं कि धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत पश्चिमी विचारकों और सुधारकों के चिंतन का फल है। भारत इस दृष्टि से पश्चिमी जनता का ऋणी है। परंतु भारत ने धर्मनिरपेक्षता का विचार ब्रिटिश उपनिवेशवाद से नहीं लिया। उपनिवेशवादी सरकार का धर्मनिरपेक्षता से कोई वास्ता नहीं था वह तो फूट डालो और राज करो की नीति अपनाकर एक धर्म को दूसरे धर्म से लड़ाने की कला में सिद्धहस्त थी। इसके अलावा उसने भारतीय शिक्षा व संस्कृति को भी धर्मनिरपेक्षता की राह पर चलने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया। भारत के प्रगति विरोधी वर्गों का साथ देकर उपनिवेशवादी शासन ने भारतीय समाज को धर्मनिरपेक्ष स्वरूप धारण करने में सदा बाधा पैदा की।

भारत में धर्मनिरपेक्षता की धारणा का सूत्रपात करने का श्रेय पश्चिमी विचारधारा में पले उन भारतीयों को जाता है जिन्होंने इग्लैंड को औद्योगिक तथा फ्रांस की राजनीतिक क्रांतियों से प्रेरणा प्राप्त की है। धर्मनिरपेक्षता का विचार भारत में उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष और देश में जातियों, धर्मों तथा भाषाओं की विविधता को देखते हुए एक राष्ट्र की पहचान करने के प्रयासों के फलस्वरूप ऐतिहासिक परिस्थितियों में से उभरा है।

भारत में धर्मनिरपेक्ष प्रक्रिया का विकास विशेषकर धर्म के कुछ पोंगापंथी और पुरातनवादी तत्त्वों के विरुद्ध बौद्धिक संघर्ष के रूप में नहीं हुआ। धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण पहलू धर्म के भीतर ही प्रगतिशील और प्रगति विरोधी तत्त्वों के बीच संघर्ष रहा है। धर्म के भीतर धर्म निरपेक्षता की प्रक्रिया मध्यकाल में ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के बीच तथा धार्मिक और सामाजिक कट्टरता की शक्तियों और भक्ति आंदोलन से प्रेरित सामाजिक मुक्ति की शक्तियों के बीच संघर्ष में देखी जा सकती है। आधुनिक युग में विवेकानंद और महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों के नेतृत्व में धर्मनिरपेक्षता के आंदोलन के उदय में भी यही बात दिखलाई पड़ती है।

देश के समझदार संवेदनशील लोग धर्मनिरपेक्षता के लिए हाल में तेजी से बढ़ते खतरों से चिंतित व क्षुब्ध हैं। प्रश्न उठता है कि धर्मनिरपेक्षता के लिए हाल में तेजी से बढ़ते खतरों से चिंतित व क्षुब्ध हैं। प्रश्न उठता है कि धर्मनिरपेक्ष और एकीकृत, भारत की जो कल्पना संविधान में की गई है, उसमें और भारतीय धर्मनिरपेक्षता के स्वरूप के क्रमिक ह्रास की चिंताजनक स्थिति के बीच यह दूरी क्यों है? यह देखकर दुख होता है कि सामान्य लोग धर्मनिरपेक्ष विरोधी विचारधाराओं से भ्रमित हो रहे हैं। इससे भी अधिक चिंतनीय बात यह है कि भारत का संभ्रांत वर्ग भी धर्मनिरपेक्षता की चुनौती के व्यापक आयामों के प्रति सचेत नहीं है। उसने इस धर्मनिरपेक्ष धारणा को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में परिवर्तन लाने के नीति निर्देशकों में बदलने के लिए देश में उपलब्ध सभी साधनों को नहीं जुटाया है। बुद्धिजीवियों में धर्मनिरपेक्ष तत्वों और सामान्य लोगों में परस्पर संपर्क का अभाव है जिसका परिणाम यह होता है कि आमलोग धर्मनिरपेक्षता विरोधी ताकतों की विचारधारा से प्रभावित होते रहते हैं तथा धर्मनिरपेक्ष शक्तियों द्वारा इस संदर्भ में कुछ नहीं किया जाता।

अत: यह कहा जा सकता है कि Secularization अथवा धर्मनिरपेक्षता जैसे कारकों का भारतीय संविधान में समावेश करना जरूरी था क्योंकि यहाँ विभिन्न धर्मों और जातियों के लोग निवास करते हैं। अत: इस सूत्रयामी धर्मनिरपेक्षता के द्वारा इन विविध धर्मावलंबियों को एक सूत्र में पिरोना आवश्यक था, ताकि राष्ट्रीय एकता कायम की जा सके। साथ ही साथ यदि धर्मनिरपेक्षता के बल पर राष्ट्रीय एकता प्राप्त करनी है तो उसे ऐसा जड़ सिद्धांत नहीं बने रहने देना चाहिए। जिससे केवल धर्म सहिष्णुता के

परिपालन पर बल दिया जाता है। इसे एक गतिशील विचार बनाना होगा जिसमें असमानता मिटाने की दिशा में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की धारणा भी सम्मिलित हो।

एस.आर. बोंबई बनाम भारत संघ, ए.आई.आर 1994 एस.सी. 1918 में उच्चतम न्यायालय ने संविधान में पंथ निरपेक्षता के मूल तत्व पर सविस्तार चर्चा की और भाजपा शासित तीन राज्यों में बाबरी मस्जिद गिराए जाने के बाद राष्ट्रपति शासन लगाए जाने को उचित ठहराया। सेंट जेवियर कॉलेज सोसाइटी बनाम गुजरात राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने 1974 में निर्णय दिया कि भले ही संविधान में पंथनिरपेक्ष राज्य की बात नहीं कही गई है, फिर भी इस विषय में कोई संदेह नहीं कि संविधान निर्माता इसी तरह का राज्य स्थापित करना चाहते थे।

संविधान में एक ऐसी पंथनिरपेक्षता की व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया जिसके अंतर्गत बहुसंख्यकों को राज्य की ओर से कोई विशेष अधिकार नहीं दिए गए या उन्हें कोई प्राथमिकता पाने का अधिकार नहीं दिया गया और अल्पसंख्यक के धार्मिक अधिकारों को अनेक प्रकार के संरक्षण प्रदान किए गए। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत में पंथ निरपेक्षता का जन्म चर्च तथा राज्य के परस्पर संघर्ष के कारण नहीं हुआ। इसकी जड़ें भारतीय संस्कृति एवं प्रकृति में पहले से ही विद्यमान थी। अत: यह भारत को विरासत के रूप में मिला है। **श्री एम.सी. सीतलवाड़** का भी यही विचार था कि पंथ निरपेक्ष राज्य के अधीन सभी नागरिकों के साथ एक-सा व्यवहार होना चाहिए तथा उनके धर्म के कारण उनके साथ भेदभाव नहीं बरता जाना चाहिए।

प्र.3. साम्प्रदायिकता क्या है? इसके प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
What is communalism? Explain its major causes.

उत्तर

साम्प्रदायिकता
(Communalism)

जब एक धार्मिक समूह या समुदाय समझ बूझकर अपने को अलग वर्ग मानकर धार्मिक सांस्कृतिक भेदों के आधार पर अपने लौकिक हितों की भिन्नता को रेखांकित करता है। अपनी माँगों को राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितो से अधिक प्राथमिकता देता हैं उसे साम्प्रदायिकता कहा जा सकता हैं। विन्सेण्ट स्मिथ के अनुसार—'एक साम्प्रदायिक व्यक्ति या समूह वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक एवं भाषाई समूह को एक ऐसी पृथक् सामाजिक तथा राजनीतिक इकाई मानता हैं, जिसके हित अन्य समूह से पृथक् होते हैं और उनके विरोधी भी हो सकते हैं। एसे ही व्यक्तियों या व्यक्ति समूह की विचारधारा को सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिक कहा जायेगा।'

शासको के उपर दबाव डालकर अपने सदस्यों के लिए अधिक सत्ता, प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना होता हैं। ऐसे समूह राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितों के उपर अपने समूह के हितों को अधिक प्राथमिकता देते हैं जिससे समाज में फूट पैदा होती हैं।

साम्प्रदायिकता का उदय (Origin of Communalism)

भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ब्रिटिश शासन की समकालीन हैं। ब्रिटिश सरकार ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई ताकि हिन्दू मुसलमान लड़ते रहे तथा वे अपना शासन आराम से चलाते रहे। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के निर्माण एवं विकास में जितना हाथ अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल का हाथ रहा उतना ही हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच राजनीतिक संघर्षों का भी। विभिन्न वर्गों की सत्ता की महत्त्वाकांक्षा के कारण भारतीय राजनीति में कांग्रेस मुस्लिम लीग के बीच ब्रिटिश सरकार मदारी की भूमिका अदा करने लगी। मेहता और पटवर्द्धन 'अंग्रेजी शासकों ने अपने आपको हिन्दू मुसलमानों के मध्य में खड़ा करके ऐसे साम्प्रदायिक त्रिभुज की रचना का निश्चय किया जिसके आधार बिन्दु वे स्वयं रहे।'

ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण भारत में साम्प्रदायिकता बढ़ती रही। 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह में हिन्दू-मुस्लिम एकजुटता से घबराकर ब्रिटिश राज ने इस एकता को तोड़ने की रणनीति बनाई। सर्वप्रथम अंग्रेजों ने मुस्लिमों को विद्रोह का सूत्रधार मानते हुए, उनकी उपेक्षा और हिन्दुओं को बढ़ावा दिया। फिर हिन्दुओं के विकास एवं आधुनिकीकरण के कारण मुसलमानों को विशेष रियायतें देकर राजी करने का प्रयास किया। 1905 में लार्ड कर्जन ने साम्प्रदायिक आधार पर बंगाल का विभाजन कर दिया। भारतीय मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा के नाम पर 1906 में आल इण्डिया मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति की शुरुआत कर ब्रिटिश सरकार ने इस समस्या को ओर अधिक बढ़ाया। 1940 में जिन्ना ने द्विराष्ट्र सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और अन्त में 1947 में साम्प्रदायिकता के आधार पर भारत का विभाजन हुआ।

TOUCH 'n PASS

साम्प्रदायिकता के कारण (Causes of Communalism)

स्वतंत्रता से पूर्व को अंग्रेजों ने इस समस्या को बनाये रखा लेकिन स्वतंत्रता के बाद भी साम्प्रदायिक समस्या भारतीय राजनीति की एक समस्या बनी हुई है। इसके निम्न कारण हैं—

1. **विभाजन की कटु स्मृतियाँ**—मुस्लिम लीग की सीधी कार्रवाई ने साम्प्रदायिक वैमनस्य को चरम पर पहुंचा दिया था। स्वतंत्रता के साथ ही देश का विभाजन हुआ। देश के विभिन्न भागों में हिंसा भड़क उठी। लाखों लोग विस्थापित हुए विभाजन में जो क्षेत्र पाकिस्तान में आये वहां से लाखों लोगों को अपना घर बार, सम्पत्ति सब कुछ छोड़कर भागना पड़ा। कई लोगों की हत्याएं हुई, महिलाओं एवं लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार हुआ, परिवार बिछुड़ गये, बच्चे अनाथ हो गये। इसकी प्रतिक्रिया भारतीय क्षेत्रों में भी कहीं-कहीं देखने को मिली । अपनों का अपनों के सामने इस प्रकार कत्लेआम देखना लोगों की स्मृतियों में बना रहा। इस मानसिकता के कारण जब भी छोटी सी घटना होती हैं वह बड़ा रूप ले लेती हैं । घटना से प्रभावित लोगों के परिवार आज भी उस भयावह घटनाओं को भुला नहीं पाये हैं।
2. **राजनीतिक दलों द्वारा निहीत स्वार्थों के लिए पृथक्करण की भावना पनपाना**—स्वतंत्रता प्राप्ति व विभाजन के पूर्व व पश्चात् भारत में कई राजनीतिक दलों व संगठनों का गठन धार्मिक आधार पर हुआ है। इनमें हिन्दू महासभा, अकाली दल, जमाएत-ए-इस्लाम, ऑल इण्डिया मजलिस-ए-इत्तेहादल मुसलीमीन, ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग व विद्यार्थी संगठन (SIMI) प्रमुख हैं। दुर्भाग्यवश इन संगठनों ने अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए धार्मिक आधार पर राजनीति करना प्रारंभ कर दिया, जिससे एक वर्ग विशेष में अलगाववाद की प्रवृत्ति विकसित हुई है।
3. **मुसलमानों का आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ापन**—ब्रिटिश शासन काल से ही मुसलमान शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े रहे। नौकरी, व्यापार एवं उद्योग-धन्धों में उनकी स्थिति सुधर नहीं पायी। मुस्लिम समाज का आधुनिकीकरण नहीं हो पाया इससे उनमें असन्तोष बढ़ा जिसका फायदा राजनीतिक महात्वाकांक्षा से युक्त लोगों ने उठाया। उन्होंने मुस्लिम समाज में विकास करने के बजाय असन्तोष को ओर अधिक बढ़ाने का प्रयास किया। अब तक जो नेता एवं पार्टियां मुस्लिम राजनीति के केन्द्र में रही, उन्होंने मुसलमानों को अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूति के लिए उन्होंने प्रतिगामी मुद्दों के दायरे से बाहर निकलने ही नहीं दिया है। बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्यों को विकसित करके उन्हें शिक्षा एवं आधुनिकता से जोड़ना आज की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।
4. **पाकिस्तानी प्रचार और षडयंत्र**—पाकिस्तानी मीडिया भी हिन्दू मुस्लिम तनाव को बढ़ा चढ़ाकर मुसलमानों के विरुद्ध योजनाबद्ध षड़यंत्र की तरह प्रचार करती हैं। 1981 से 93 के बीच पाकिस्तान ने हिन्दुओं एवं सिक्खों के बीच साम्प्रदायिक वैमनस्य को पैदा करने एवं बनाये रखने का हर सम्भव प्रयास किया। मार्च 1993 की बम्बई बम विस्फोट की घटनाएं पाकिस्तानी षड़यंत्र का परिणाम थी जिसका उद्देश्य हिन्दुओं मुसलमानों में खूनी संघर्ष पैदा करना था। पाकिस्तान कश्मीर में भारतीय सेनाओं को मुसलमानों पर अत्याचारों के लिए प्रचारित करता है।
5. **सरकार की उदासीनता**—सरकार एवं प्रशासन की उदासीनता एवं लापरवाही के कारण भी कई बार साम्प्रदायिक दंगे विशाल रूप से भड़क जाते हैं। छोटी सी घटना बड़ा रूप ले लेती हैं।
6. **दलीय राजनीति, गुटीय राजनीति और चुनावी राजनीति**—साम्प्रदायिकता की समस्या के लिए राजनीतिक दलों की संकुचित दलीय हितों की राजनीति भी जिम्मेदार हैं। कई राजनीतिक दल अपने स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिक वैमनस्य को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। 1950 से लेकर अब तक जितने भी दंगे हुए, उनमें से अनेक का परोक्ष कारण दलीय एवं गुटीय राजनीति रही व वरिष्ठ पत्रकार निखिल चक्रवर्ती कहते हैं कि 'सभी दंगों का मूल कारण राजनीतिक होता हैं और ये दंगे अपने स्वार्थ के लिए राजनीतिज्ञों द्वारा करवाये जाते हैं।'
7. **तुष्टीकरण की राजनीति**—सरकारों द्वारा वर्ग विशेष के वोटों के लिए उनकी उचित अनुचित माँगों को मान लेना, उन्हें विशेष रियायते व विशेषाधिकार देने के कारण अन्य सम्प्रदायों में ईर्ष्या की भावना पैदा होना स्वाभाविक है। ऐसी गतिविधि विभिन्न सम्प्रदायों में आपसी तनाव पैदा करती हैं। जिनको तुष्टीकरण के कारण विशेष रियायतें दी जाती हैं वे वर्ग फिर उनको अपना अधिकार मान लेते हैं जिससे दूसरे वर्गों में असन्तोष पैदा होता है।
8. **वोट बैंक की राजनीति**—कुछ राजनीतिक दल किसी वर्ग विशेष को अपना वोट बैंक बनाने हेतु उसके सभी सही गलत कदमों का समर्थन करते हैं तो प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरे राजनीतिक दल दूसरे वर्गों को समर्थन देते हैं इस प्रकार तनाव को बढ़ावा मिलता है। वोट बैंक की राजनीति के कारण जब वर्ग विशेष को अन्य की उपेक्षा कुछ विशेष दिया जाता है तो समाज में तनाव पैदा होना स्वाभाविक है।

प्र.4. क्षेत्रवाद क्या है? इसके उत्पन्न होने के कारण एवं रोकथाम के उपाय बताइए।
What is regionalism? Explain its causes and preventive measures.

उत्तर

क्षेत्रवाद
(Regionalism)

हमारा देश विविधताओं वाला देश है। यहाँ पर भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई भिन्नता विद्यमान है। यद्यपि ये भिन्नताएँ हमारे लिए कौतूहल का कारण बनती है तो कई बार अतिवादिता के कारण शासन के लिए व्यवस्था निर्माण में समस्या भी पैदा करती है। आजादी के समय हमारा भारत आर्थिक दृष्टि से ज्यादा सक्षम राष्ट्र नहीं था। विदेशी शासकों द्वारा हमारी अर्थव्यवस्था का अत्यधिक दोहन व प्रान्तों का असंतुलित विकास इसका प्रमुख कारण रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त हमारी संघीय सरकार ने राज्य पुनर्गठन व अन्य उपायों द्वारा असंतुलन की इस अवस्था को ठीक करने का प्रयास किया। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, हमारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इत्यादि के कारण क्षेत्रीय भिन्नताएँ मौजूद रही। स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों के गठन की प्रकिया भी इसका एक कारण रही। राज्यों का निर्माण, ब्रिटिश प्रान्तों के विलय, देशी रियासतों के एकीकरण एवं राजनीतिक सामाजिक एकीकरण के फलस्वरूप हुआ।

जाति, धर्म, सम्प्रदाय, व्यक्ति विशेष की अग्रणी छवि आदि ने भी राज्य पुनर्गठन की प्रकिया को प्रभावित किया। आर्थिक विकास का स्तर, नौकरशाही की राजनीति प्रतिबद्धता, क्षेत्रीय आकांक्षाएँ भौगोलिक स्वरूप के कारण भी राज्यों में क्षेत्रीय असन्तुलन विद्यमान रहा । स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान एकमात्र लक्ष्य आजादी प्राप्त करना था। उस दौर में ये आकांक्षाएँ गौण रही, किन्तु 1947 के पश्चात् ये पुन: प्रधान हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न प्रान्तों की इन माँगों ने क्षेत्रवाद की भावनाओं को बलवती किया।

- ♦ राज्यों के पुनर्गठन की माँग।
- ♦ नवीन राज्य निर्माण की माँग।
- ♦ भारत संघ में ही अधिक स्वायत्तता की आकांक्षा।
- ♦ प्राकृतिक संसाधनों के वितरण सम्बन्धी विवाद।
- ♦ केन्द्र से अधिकाधिक आर्थिक सहायता प्राप्त करना।
- ♦ अधिकाधिक राजनीतिक सहभागिता का दावा।

स्थानीय निवासियों द्वारा संघ या राज्य की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष या प्रान्त से लगाव व उसकी प्रोन्नति के विशेष प्रयास क्षेत्रवाद की श्रेणी में आते है। क्षेत्रवाद का उद्देश्य है अपने संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति। यह ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें क्षेत्र विशेष के लोग आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों की अन्य से अधिक माँग करते हैं।

क्षेत्रवाद के कारण (Causes of Regionalism)

1. प्रकृति प्रदत्त भिन्नताएँ व असमानताएँ।
2. प्रशासन द्वारा संसाधनों के समान वितरण का अभाव या प्रशासनिक भेदभाव।
3. केन्द्रीय निवेश व विकास सम्बन्धी भिन्नता।
4. ऐतिहासिक एवं राजनीतिक कारण।
5. सांस्कृतिक विविधताएँ।
6. भाषायी विविधता से क्षेत्रवाद की भावना को बल।

संकीर्ण क्षेत्रीय आकांक्षाओं के राष्ट्र को अनेक दुष्परिणाम झेलने पड़ते हैं जैसे—

1. **देश की अखण्डता को चुनौती**—क्षेत्रीय आकांक्षाओं के बलवती होने की प्रक्रिया में राष्ट्र की एकता व अखंडता को गौण कर दिया जाता है, यहाँ तक कि इसके उग्र स्वरूप में तो कई बार पृथकतावाद का भाव भी पनपने लगता है जो राष्ट्रीय अस्मिता को चुनौती दे डालता है। क्षेत्र विशेष का संघ सरकार व उसकी नीतियों से भरोसा उठ जाता है। हमारी राष्ट्रीय राजनीति में पिछले सात दशकों का अनुभव इस सम्बन्ध में अच्छा नहीं रहा है।
2. **नए राज्यों की माँग;**
3. **क्षेत्रीय राजनीति एवं राजनीतिक दलों का प्राबल्य;**
4. **भूमि-पुत्र की अवधारणा;**
5. **स्वयंभू नेताओं का उदय;**

TOUCH 'n PASS

6. **राष्ट्रीय कानूनों व आदेशों को चुनौती**—अराजकता की स्थिति का पनपना।
7. **अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में देश की साख खराब होना**—आंतरिक क्षेत्रीय समस्याओं का हमारी अन्तर्राष्ट्रीय छवि को खराब करता है। कभी मानवाधिकार के नाम पर तो कभी लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरक्षण के नाम पर अन्य राष्ट्र हमारी क्षेत्रवाद के आधार पर उठ रही माँगों की आड़ में अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आलोचनाएँ करते हैं।

क्षेत्रवाद की समस्या की रोकथाम के उपाय
(Measures to Prevent the Problem of Regionalism)

समस्या के समाधान का उपाय उसके कारणों में निहित होता है। क्षेत्रवाद पनपने के कारणों को समाप्त करने से ही इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। कुछ उपाय जिनसे हम क्षेत्रवाद की समस्या से राहत पा सकते हैं—

1. **संतुलित राष्ट्रीय नीति निर्माण**—केन्द्र सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह सभी क्षेत्रों के समान विकास हेतु नीति निर्माण के समय राजनीतिक भेदभाव किए बिना संतुलित व समदर्शी नीति निर्माण करे। छोटे व संसाधनों की दृष्टि से अपेक्षाकृत कमजोर क्षेत्रों/राज्यों के विकास को भी समान प्राथमिकता दें तो धीरे-धीरे वहाँ के निवासियों में विश्वास पैदा होता जाएगा व क्षेत्रवाद का उग्र स्वरूप शान्त होगा।
2. **राज्यों में स्थाई आधारभूत ढाँचागत विकास**—क्षेत्रीय भिन्नताओं में कमी लाने के लिए पिछड़े व अविकसित क्षेत्रों में सिंचाई, बिजली, यातायात व संचार के आधारभूत साधनों के विकास को प्राथमिकता देनी होगी, जिसके दूरगामी सकारात्मक परिणाम सामने आयेंगे।
3. **विकास के विशेष कार्यक्रमों का परियोजनाओं के रूप में प्रारम्भ किया जाना**—यह प्रक्रिया सरकार ने प्रारम्भ कर भी दी है। सूखा संभाव्य क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) मरु विकास कार्यक्रम (DDP) पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (AADP) जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम (TADP) विशेष राज्य का दर्जा दिया जाना आदि से क्षेत्रीय असंतुलन कम किया जा सकता है।
4. **प्रशासनिक दृष्टि से छोटे राज्यों का गठन**—छोटे-छोटे राज्यों से प्रान्तीय सरकारों द्वारा स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाए जा सकते हैं। केन्द्रीय करों के वितरण में ही हिस्सेदारी बढ़ती है।
5. **सांस्कृतिक भिन्नता को एकीकरण की ताकत बनाना**—दूरदर्शन, रेडियो, समाचार-पत्रों व अन्य सम्प्रेषण माध्यमों द्वारा भिन्नता को ही ताकत के रूप में उभारना हमारी पहल हो। संस्कृतियों की पहचान व प्रतिष्ठा देना व उन्हें एक-दूसरे के साथ साहचर्य भाव से जोड़ना एकीकरण का माध्यम हो सकती है।
6. **भाषायी विविधता का सम्मान**—हमारा संविधान भी इन्हें मान्यता देकर विविधता को स्वीकार कर चुका है। हमें सभी प्रान्तों को भाषाओं को परस्पर सम्मान देना होगा। अनुवाद का दायरा बढ़ाना होगा। विद्यालय पाठ्यक्रम में इन्हें समुचित स्थान देना होगा।

प्र.5. भारत में राज्य स्वायत्ता की माँग पर संघवादी व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए।

Evaluate the federalist system on the demand for state autonomy in India.

उत्तर

राज्यों की स्वायत्तता का अर्थ
(Meaning of State Autonomy)

भारतीय संघ में राज्यों की स्वायत्तता से अभिप्राय है कि राज्यों के आन्तरिक मामलों में केन्द्रीय सरकार की दखलन्दाजी कम हो तथा संविधान द्वारा प्रदत्त विषयों पर उन्हें निरपेक्ष सत्ता प्रयोग करने का अधिकार हो। राज्यों को अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण स्वायत्त बनाया जाए ताकि ये जनकल्याण के कार्यों को अपनी योजनाओं और विचारों के अनुसार स्वतन्त्र और निर्बाध रूप से कर सकें। यह स्वायत्तता वित्तीय क्षेत्र में लगभग पूरी हो। केन्द्र की राजनीतिक तौर प्रशासनिक शक्तियाँ भी न्यूनतम रहे। उसका कार्य विदेश सम्बन्ध, रक्षा, मुद्रा और जनसंचार के विषयों तक सीमित और संकुचित कर दिया जाए। उसकी कराधान की शक्ति मात्र इतनी हो जिससे वह इन कार्यों के लिए पर्याप्त साधन जुटा सकने में समर्थ हो। केन्द्र को मजबूत रखते हुए भी राज्यों को इतनी वित्तीय शक्ति प्रदान की जाए जिससे वे साधनों के अभाव में अपने को असहाय और अप्रभावशाली महसूस न करें।

राज्यों की स्वायत्तता का अर्थ न तो राज्यों की स्वतन्त्रता से है और न सम्प्रभुता से। यह एक ऐसा वैधानिक दर्जा है जिसमें राज्यों को कतिपय निर्दिष्ट क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता तथा कम-से-कम केन्द्रीय हस्तक्षेप का आश्वासन प्राप्त होता है। राज्यों को अपने एक निश्चित क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अधिकार ही स्वायत्तता है।

TOUCH 'n' PASS

कर्नाटक के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री **स्व० देवराज अर्स** के शब्दों में, "आज की संघीय सरकार अपने कमजोर राजनीतिक चरित्र के कारण बड़े भागीदार की भूमिका निभाने में असमर्थ है। जिन परिस्थितियों के कारण संविधान-निर्माताओं ने एकात्मकता की ओर झुकाव रखा था, वे परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। अब संविधान में संशोधन करके केन्द्र और राज्यों को संघवादी ढाँचे में 'समान और स्वायत्ता भागीदार' बनाया जाना चाहिए। इसी से भारतीय संघ व्यवस्था प्रभावशाली ढंग से काम करेगी।" 11 फरवरी, 1978 को जम्मू-कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री स्व० शेख अब्दुल्ला ने कलकत्ता में 'कश्मीर मेले' का उद्घाटन करते हुए इस बात की माँग की कि तीस वर्ष पूर्व की परिस्थितियाँ अब नहीं रही हैं। अत: अब राज्यों को अधिक अधिकार दिये जाने चाहिए, जिससे वे अपना विकास कर सकें। केन्द्र तथा राज्यों के समस्त सम्बन्धों पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।"

राज्य स्वायत्तता की माँग (The Demand for State Autonomy)

भारत में मार्क्सवादी दल, अकाली दल, नेशनल कान्फ्रेंस, तेलगु देशम् तथा अखिल भारतीय द्रविड मुनेत्र कडगम दलों द्वारा शासित राज्यों में समय-समय पर केन्द्रीय सरकार के अधिकारों में कटौती करके राज्य सरकारों के अधिकारों में वृद्धि किये जाने की माँग प्रस्तुत की गयी है। जनता पार्टी के शासन काल में गैर जनता पार्टी के मुख्यमन्त्रियों जैसे ज्योति बसु, प्रकाश सिंह बादल, शेख अब्दुलला, एम०जी० रामचन्द्रन, देवराज अर्स आदि ने माँग की कि केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों में सन्तुलन की स्थिति होनी चाहिए और केन्द्र के पास कुछ अधिकारों को छोड़कर शेष सभी अधिकार राज्यों के पास होने चाहिए अर्थात् राज्यों को स्वायत्तशासी बनाया जाए।

पश्चिमी बंगाल की मार्क्सवादी सरकार स्वायत्तता की माँग का बिगुल बजाने में अगुआ बनी हुई है। इसी उद्देश्य से वहाँ की सरकार ने एक विस्तृत मसविदा (Memorandum) तैयार किया और इस मसविदे को पश्चिमी बंगाल के मन्त्रिमण्डल ने स्वीकृत कर अन्य राज्य सरकारों तथा केन्द्र की तात्कालिक, मोरारजी देसाई सरकार को भेजा। राज्यों की स्वायत्तता के सन्दर्भ में पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्री ज्योति बसु ने तात्कालिक प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई से भी बात-चीत की और सुझाव दिया कि सभी मुख्यमन्त्रियों का सम्मेलन बुलाया जायें तथा इस पर राष्ट्रीय बहस चलाने हेतु वातावरण बनाया जाए।

राज्यों की स्वायत्तता के सन्दर्भ में प्रस्तुत मसविदे में निम्नलिखित सुझाव महत्त्वपूर्ण हैं—(1) भारतीय संघ को 'राज्यों का परिसंघ' घोषित किया जाए। (2) राज्य विधानसभाएँ जो कानून पास करेंगी उनमें किसी प्रकार की केन्द्रीय अनुमति की आवश्यकता नहीं हो। (3) राज्यों में कभी भी राष्ट्रपति शासन लागू न किया जाए। संविधान के अनुच्छेद 356 और 357 को जिसके तहत् भारतीय संघ के राष्ट्रपति को राज्यों की विधानसभाओं को भंग करने के अधिकार प्राप्त हैं समाप्त किया जाए। (4) लोकसभा के समान राज्यसभा का निर्वाचन प्रत्यक्ष कराया जाए और तीस लाख से अधिक आबादी वाले राज्यों को राज्यसभा में समान प्रतिनिधित्व देना होगा। (5) कुल राष्ट्रीय राजस्व का 75 प्रतिशत भाग राज्य सरकारों को व्यय हेतु प्रदान किया जाए। (6) राज्य के सभी कर्मचारी राज्य सरकार के अधीन होंगे। राज्य में आई०ए०एस० (भारतीय प्रशासनिक सेवा) तथा आई०पी०एस० (भारतीय पुलिस सेवा) अधिकारी न हो और इन पदों को समाप्त किया जाए अथवा आई०ए०एस०, आई०पी०एस० व सी०आर०पी० (केन्द्रीय आरक्षी दल) जैसी सेवाओं को राज्य के अधीन किया जाए। (7) राज्यों में स्वशासन के अधिकार के सरक्षण के लिए संविधान के अनुच्छेद 248 में इस प्रकार संशोधन किया जाए जिससे किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय पर कानूनन राज्य विधानसभाओं का पूर्ण अधिकार बना रहे। (8) संविधान के अनुच्छेद 249 को रद्द किया जाना चाहिए। (9) योजना आयोग की कार्यप्रणाली में भी फेर-बदल किया जाना चाहिए। (10) राज्यों को कर लगाने और वसूल करने, का अधिकार पूर्ण रूप से मिलना चाहिए। (11) संविधान के अनुच्छेद 280 की धारा 2 और 7 को समाप्त करना चाहिए। (12) केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के वाणिज्य सम्बन्धित संविधान के अनुच्छेद 302 में निहित अधिकारों को खत्म करना चाहिए। (13) संविधान के अनुच्छेद 200 तथा 201 को भी खत्म किया जाए। (14) राज्य की क्षमतानुसार राज्य विधानसभाओ को केन्द्र के समकक्ष सार्वभौम क्षमता मिलनी चाहिए।

पश्चिमी बंगाल के मार्क्सवादी वित्तमन्त्री अशोक मित्र ने आर्थिक स्वायत्तता के समर्थन में जोरदार तर्क दिये। उन्होंने कहा कि केन्द्र को सभी प्रत्यक्ष करो और अधिकांश अप्रत्यक्ष करो के नियन्त्रण का अधिकार है। केन्द्र के पास विदेशी मुद्रा का सुरक्षित कोप भी है जिससे वह अपने घाटे की वित्त व्यवस्था को कम कर सकता है जबकि वह विदेशी मुद्रा राज्यों द्वारा पैदा की जाती है। उन्होनें यह भी कहा कि जनता पार्टी के नये कार्यक्रम में ग्रामीण विकास पर जोर दिया गया है जो राज्यों द्वारा कार्यान्वित होगा। यदि राज्यों को अधिक वित्तीय शक्तियाँ नहीं दी गयी तो उन्हें उत्तरदायित्व देने का कोई लाभ नहीं होगा।

राज्य स्वायत्तता के दूसरे प्रमुख समर्थक थे जम्मू-कश्मीर राज्य के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री स्व० शेख अब्दुल्ला जिन्होनें दिल्ली में आयोजित एक सम्वाददाता सम्मेलन में कहा कि 'भारतीय संविधान की धारा 370 को सभी राज्यों पर लागू किया जाए और राज्यों को अधिक-से-अधिक अधिकार दिए जाए ताकि राज्य सरकारें समस्याओं से निपट सकने में सक्षम हों। पंजाब के भूतपूर्व

TOUCH 'n' PASS

अकाली मुख्यमन्त्री प्रकाश सिंह बादल के अभिमत में केन्द्र की सुदृढता राज्यों की सुदृढता पर निर्भर करती है। अकाली दल ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में भी राज्यों की अधिक स्वायत्तता का समर्थन इस आधार पर किया था कि राज्य ही लोक-कल्याण एवं सामाजिक विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करने वाले निकाय है, अत: उन्हें स्वायत्त बनाना चाहिए।
तमिलनाडु की डी०एम०के० और अन्ना डी०एम०के० सरकारें भी राज्य स्वायत्तता की प्रबल समर्थक रही हैं। आन्ध्र में तेलुगु देशम् और कर्नाटक की जनता पार्टी सरकार भी राज्य स्वायत्तता की माँग कर रही हैं। पंजाब के अकाली दल द्वारा उग्र आन्दोलन प्रारम्भ किया गया और आन्दोलन में एक माँग यह थी कि उनके द्वारा 1973 में पारित 'आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव' को स्वीकार किया जाए। इस प्रस्ताव में एक माँग यह की गयी है कि केन्द्र सरकार का अधिकार देश की प्रतिरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, संचार, रेलवे और मुद्रा तक ही सीमित रहना चाहिए। उपर्युक्त परिस्थितियों के सन्दर्भ में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार के लिए केन्द्र सरकार द्वारा 24 मार्च, 1983 को 'सरकारिया आयोग' की नियुक्ति की गयी। आयोग को संविधान के ढाँचे के अन्तर्गत ही केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की स्थिति की समीक्षा करने का कार्य सौंपा गया। तमिलनाडु राज्य में फरवरी 1967 से फरवरी 1976 तक डी०एम०के० दल की सरकार पदारूढ रही। इसके पहले मुख्यमन्त्री अन्नादुराई ने कहा था कि 'हमे संविधान-निर्माताओं द्वारा निर्धारित राज्यों की स्वायत्तता के सिद्धान्त और व्यवहार को अपनाना चाहिए। संघात्मक संविधान में आदर्श केन्द्र द्वारा सिर्फ उतनी ही शक्तियाँ व्यवहार में लानी चाहिए कि देश की सम्प्रभुता और एकता की रक्षा हो सके। राज्यों को संविधान की ओर से स्वायत्तता प्राप्त है और उसके साथ नगरपालिकाओं के समान व्यवहार नहीं किया जा सकता।' द्रविड मुनेत्र कडगम प्रादेशिकता तथा क्षेत्रीयता का प्रबल समर्थक रहा तथा राज्यों की स्वायत्तता का प्रचण्ड हामी। कई बार इस दल ने भारतीय संघ से पृथक् होने की आवाज बुलन्द की। सन् 1970 में इस दल ने मद्रास में 'राज्य स्वायत्तता सम्मेलन' आयोजित किया तथा केन्द्र की कटु आलोचना की। अप्रैल 1971 में मुख्यमन्त्री करुनानिधि ने यहाँ तक कहा कि यदि उनकी राज्य स्वायत्तता की माँग स्वीकार नहीं की गयी तो वे तमिलनाडु को भारतीय संघ से विलग करने हेतु आन्दोलन करेंगे।' सन् 1970 में तमिलनाडु सरकार ने केन्द्र और राज्यों के अधिकांश क्षेत्रो के निर्धारण हेतु मद्रास उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश राजमन्नार की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। डॉ० राजमन्नार के अतिरिक्त लक्ष्मण स्वामी मुदालियर तथा डॉ० पी० चन्द्र रेड्डी इस समिति के सदस्य थे। राज्य स्वायत्तता के परिप्रेक्ष्य में राजमन्नार समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिये। प्रथम, एक अन्तर्राज्यीय परिषद् (Inder-State Council) स्थापित की जाए जिसका अध्यक्ष प्रधानमन्त्री हो तथा राज्यों के मुख्यमन्त्री या उनके नामित व्यक्ति उसके सदस्य हो। इस परिषद से परामर्श किये बिना संसद में ऐसा कोई विधेयक प्रस्तुत न किया जाए जिससे एक या अधिक राज्य प्रभावित होते हों। प्रतिरक्षा और विदेशी सम्बन्धों के अतिरिक्त इस परिषद से परामर्श किये बिना ऐसा कोई निर्णय न किया जाए जिससे एक या अधिक राज्यों के हित प्रभावित होते हों। **द्वितीय**, योजना आयोग को समाप्त कर दिया जाए तथा उसके स्थान पर एक संवैधानिक निकाय स्थापित किया जाए जिसमें राज्यों को सलाह देने के लिए विज्ञान, तकनीक, कृषि और अर्थ विशेषज्ञ हो। राज्यों के अपने योजना मण्डल हो जो उन्हें परामर्श देने का कार्य करें। **तृतीय**, वित्त आयोग स्थायी आधार पर स्थापित किया जाए तथा राज्यों के पक्ष में करों का पहले से अधिक वितरण हो ताकि उन्हे केन्द्र पर कम-से-कम निर्भर रहना पड़े। **चतुर्थ**, राजमन्नार समिति ने केन्द्रीय एवं समवर्ती सूची के अनेक विषयों को राज्य सूची में स्थानान्तरित करने की सिफारिश की। **पंचम**, समिति का सुझाव था कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में राज्यों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए। **पृष्ठ**, राज्यो के उच्चतम न्यायालय राज्यों के क्षेत्राधिकार के सभी मामलो के लिए उच्चतम न्यायालय हो। **सप्तम**, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति राज्य के मन्त्रिमण्डल अथवा उसी उद्देश्य से बनायी गयी किसी उच्चाधिकार निकाय के परामर्श, से की जाए। **अष्ठम्** 4 राज्यों को उनके औद्योगिक विकास के लिए विदेशी मुद्रा प्रदान की जाए। **नवम्**, समिति का यह भी सुझाव था कि राज्य में किसी निजी या सरकारी क्षेत्र में औद्योगिक लाइसेंस देने का अधिकार राज्यों को होना चाहिए।
डी०एम०के० की भाँति ही अन्ना डी०एम०के० ने मार्च 1977 में सम्पन्न चुनावों के अवसर पर अपना जो घोषणापत्र प्रकाशित किया उसमे राज्य स्वायत्तता पर बल दिया।

राज्य स्वायत्तता के समर्थन में तर्क (Arguments in Favour of State Autonomy)

राज्यों की स्वायत्तता के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—

1. स्वायत्तता स्वतन्त्रता नहीं है और राज्य स्वायत्तता की माँग संघीय ढांचे के अन्तर्गत ही की जा रही है, अत: इससे विघटन का खतरा नहीं है।
2. राज्यों के कार्य दिन-प्रतिदिन बढते जा रहे हैं। आर्थिक नियोजन और. ग्रामीण विकास सम्बन्धी बढते हुए कार्यों को देखते हुए उन्हें वित्तीय साधनों की दृष्टि से केन्द्र का मुँहताज बनाये रखना ठीक नहीं। आय में पृथक् वित्तीय साधन होने से विकास सम्बन्धी कार्यों एवं दायित्वों के निर्वाह में अधिक सुविधा होगी।

3. केन्द्र और राज्यों में पृथक्–पृथक् राजनीतिक दलो की सरकारें होना स्वाभाविक है। किन्तु यह देखा गया है कि राज्यों को अनुदान देते समय केन्द्रीय सरकार सौतेला व्यवहार करती है। वह उन राज्यों के साथ सौम्य व्यवहार करती है जहाँ उससे मेलजोल रखने वाली राज्य सरकार है और उन राज्यों के साथ कठोर रुख अपनाती हैं जहाँ उसकी विचारधारा से भिन्नता रखने वाली राज्य सरकार है। राज्य स्वायत्तता में यह दोहरा मापदण्ड समाप्त होगा।
4. अनुदानों की प्रक्रिया एवं शैली को लेकर भी भेदभाव की शिकायत की जा रही है। जहाँ गेहूं पर सरकार 23 रुपये प्रति क्विण्टल का अनुदान देती है वहाँ चावल पर यह अनुदान सिर्फ 4 पैसे प्रति क्विण्टल आता है। इस अनुदान का लाभ उत्तरी राज्यों को तो मिलता है जहाँ लोग गेहूं अधिक खाते हैं मगर चावल उगाने और खाने वाले दक्षिणी राज्यों को इसका कोई लाभ नहीं मिलता। इस तरह के भेदभाव मिटाने में भी राज्यों की आर्थिक स्वायत्तता कारगर साबित हो सकती है।
5. राज्य स्वायत्तता से ही भारत में सच्ची संघात्मक व्यवस्था की स्थापना हो सकेगी। फिलहाल तो राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी है। राज्य सूची के विषयों में भी केन्द्रीय सरकार जब चाहे हस्तक्षेप कर सकती है और राष्ट्रपति शासन के शस्त्र द्वारा राज्यो की बहुमत वाली निर्वाचित सरकार को अपदस्थ कर सकती है। राज्य स्वायत्तता की अवधारणा के क्रियान्वयन से ही 'समान और स्वायत्त भागीदारी' वाली संघ व्यवस्था अस्तित्व में आयेगी।
6. राज्य स्वायत्तता से राज्यों में उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी। वे अपनी आय के अधिकतम स्रोत ढूंढेंगे और केन्द्र पर निर्भर रहना छोड देंगे। आज कई राज्य अनापशनाप खर्च बढाते जा रहे हैं क्योंकि वे जानते हैं कि अन्त में केन्द्रीय सरकार 'ओवरडापट' अनुदान आदि द्वारा उनकी मदद करेगी।

राज्य स्वायत्तता के विपक्ष में तर्क (Arguments Against State Autonomy)

केन्द्रीय सरकार (चाहे कांग्रेस दल की हो अथवा जनता पार्टी की) की दृष्टि में राज्य स्वायत्तता की अवधारणा से संघ व्यवस्था दुर्बल होगी और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि में खतरनाक परिणाम होगें । इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—

1. कुल मिलाकर देश की सुदृढता ही राज्यों की स्वायत्तता की सर्वोत्तम गारण्टी है क्योंकि किसी प्रकार वह मजबूती समाप्त हो जाये तो न तो भारतीय संघ की प्रभुसत्ता रहेगी और न ही राज्यों की स्वायत्तता रह सकेगी। देश आर्थिक संकट और राजनीतिक उथल–पुथल से गुजर रहा है । बदलती हुई परिस्थितियों में राज्य स्वायत्तता की माँग करना देश को अराजकता, विघटन तथा विनाश की ओर ले जाना है।
2. यदि अनुच्छेद 370 को सभी राज्यों पर लागू किया जाये तो क्या स्थिति उत्पन्न होगी? चूँकि अनुच्छेद 370 के अनुसार भारतीय संसद द्वारा पारित कोई भी कानून जम्मू–कश्मीर राज्य में मान्य नहीं होगा। भारतीय संघ के राष्ट्रपति को यह भी अधिकार नहीं है कि वह वहाँ की विधानसभा को भंग कर सके । स्पष्ट है कि यदि सभी राज्यों को अनुच्छेद 370 के तहत ला दिया जाये तो भारत की अखण्डता को खतरा हो सकता है । शेख अब्दुल्ला की इस माँग से कि अनुच्छेद 370 को सभी राज्यों पर लागू किया जाए, यह मंशा स्पष्ट हो जाती है कि शेख अब्दुल्ला अनुच्छेद 370 को संविधान का स्थायी प्रावधान बनाना चाहते थे ताकि उनके दल की राजनीतिक दुकानदारी चलती रहे।
3. राजमन्नार समिति के सुझाव तो संविधान की आत्मा को ही बदलने वाले खतरनाक विचार हैं। यदि समिति के प्रतिवेदन को मान लिया जाए तो राज्य लगभग स्वायत्तशासी हो जायेंगे। न्याय, योजना, विदेशी मुद्रा, औद्योगिक लाइसेंस सब कुछ ही राज्यों के हाथो में चले जाने के बाद में क्या राज्यों की स्थिति स्वाधीन राष्ट्रो से कुछ कम होगी? वस्तुत: समिति का प्रतिवेदन क्षेत्रीयता को बढाने वाला और राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुँचाने वाला है।
4. आज भारतीय संघ के घटक राज्य स्वायत्तता की माँग कर रहे हैं और ग्वायत्तता के बाद उनकी अगली माँग स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता हो सकती है। प्रादेशिक दलों द्वारा शासित राज्य सरकारो की स्वायत्तता की माँग के पीछे कही विदेशी ताकतो का हाथ तो नहीं जो भारत को खण्डित करना चाहते हैं।
5. राज्यों को और अधिक स्वायत्तता देने में राज्यों में छोटी–छोटी तानाशाहियाँ स्थापित हो जायेंगी। राज्य के भीतर निर्णय और कार्य की शक्ति मुख्यमन्त्रियों के हाथों में घनीभूत हो जायेंगी, साम्राज्य निर्माण की प्रवृत्ति बढेगी और देश का सन्तुलन लड़खडा जायेगा।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VI

सामाजिक न्याय एवं सकारात्मक कार्रवाई
Social Justice and Affirmative Action

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामाजिक न्याय को परिभाषित कीजिए।
Define social justice.

उत्तर सामाजिक न्याय से तात्पर्य है समाज के सभी सदस्यों के मध्य बिना किसी भेदभाव के समता, एकता और मानव अधिकारों की स्थापना करना तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा, गरिमा को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। यह मानव अधिकार और समानता की अवधारणाओं पर आधारित संकल्पना है जिसका उद्देश्य समतामूलक समाज की स्थापना करना है।

प्र.2. सकारात्मक कार्रवाई क्या है?
What is affirmative action?

उत्तर सकारात्मक कार्रवाई एक सरकार या संगठन के भीतर नीतियों और प्रथाओं के एक समूह को संदर्भित करती है, जो उन क्षेत्रों में उनके लिंग, जाति, कामुकता, पंथ या राष्ट्रीयता के आधार पर विशेष समूहों के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने की माँग करती है, जिसमें उन्हें शिक्षा और रोजगार जैसे कम प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

प्र.3. सामाजिक न्याय का क्या महत्त्व है?
What is the importance of social justice?

उत्तर वस्तुत: सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य मानव द्वारा मानव का शोषण समाप्त करना है, प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे अवसर मुहैया कराना है जिनसे वह अपनी योग्यताओं का अधिकतम विकास कर सके। वर्तमान विश्व में सामाजिक न्याय की अवधारणा का महत्त्व विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों की शासन प्रणालियों में अधिक प्रासंगिक है।

प्र.4. सकारात्मक भेदभाव की नीति क्या है?
What is the policy of positive discrimination?

उत्तर सकारात्मक विभेद Affirmative action या positive discrimination) (जिसे कनाडा में employment equity, भारत और नेपाल में आरक्षण, औए यूके में positive action कहा जाता है) किसी ऐसे समूह को विभेदित करते हुए लाभ पहुँचने का कार्य है जो सामाजिक रूप से वंचित रहे हैं और वहाँ की संस्कृति में भेदभाव का शिकार रहे हैं।

प्र.5. न्याय की परिभाषा क्या है?
What is the definition of justice?

उत्तर मिल के अनुसार, "न्याय उन नैतिक नियमों का नाम है जो मानव-कल्याण की धारणाओं से सम्बन्धित है तथा इसलिए जीवन के पथ-प्रदर्शन के लिए किसी भी नियम से अधिक महत्त्वपूर्ण है।" रफल के शब्दों में, "न्याय उस व्यवस्था का नाम है जिसके द्वारा व्यक्तिगत अधिकार की रक्षा होती है और समाज की मर्यादा भी बनी रहती है।"

प्र.6. न्याय के तीन सिद्धांत क्या हैं?
What are the three principles of justice?

उत्तर (क) गरीब और जरूरतमंदों को निशुल्क सेवाएँ देना एक धर्म कार्य के रूप में न्यायोचित है। (ख) सभी नागरिकों को जीवन का न्यूनतम बुनियादी स्तर उपलब्ध करवाना अवसरों की समानता सुनिश्चित करने का एक तरीका है। (ग) कुछ लोग प्राकृतिक रूप से आलसी होते हैं और हमें उनके प्रति दयालु होना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. सकारात्मक कार्रवाई समाज में समतावाद को कैसे बढ़ावा देती है?
How affirmative action promotes egalitarianism in society?

उत्तर समतावाद का सिद्धांत सभी मनुष्यों के समान मूल्य और नैतिक स्थिति की संकल्पना पर बल देता है। समतावाद का दर्शन ऐसी व्यवस्था का समर्थन करता है जिसमें सम्पन्न और समर्थ व्यक्तियों के साथ-साथ निर्बल, निर्धन और वंचित व्यक्तियों को भी आत्मविकास के लिए उपयुक्त अवसर और अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हो सकें।

प्र.8. सामाजिक न्याय के क्रियान्वयन में संविधान की क्या भूमिका है?
What is the role of the constitution in the implementation of social justice?

उत्तर संविधान द्वारा न केवल महिलाओं को समानता प्रदान की गई है, बल्कि विशेष रूप से महिलाओं एवं बच्चों के सामाजिक-आर्थिक विकास के उपाय किये गए हैं। साथ ही उनके राजनीतिक अधिकारों एवं निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में उनकी भागीदारी को भी सुनिश्चित किया गया है।

प्र.9. सामाजिक नीति के उद्देश्य क्या हैं?
What are the objectives of social policy?

उत्तर सामान्य रूप से सामाजिक नीति का उद्देश्य ग्रामीण तथा नगरीय, धनी तथा निर्धन, समाज के सभी वर्गों को अपना जीवन-स्तर ऊँचा उठाने के अवसर प्रदान करना तथा विभिन्न गम्भीर सामाजिक समस्याओं का समुचित निदान करते हुए उनका निराकरण करना है ताकि किसी भी वर्ग के साथ अन्याय न हो।

प्र.10. सामाजिक नीति से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by social policy?

उत्तर सामाजिक नीति का अर्थ समाज के सभी सदस्यों के व्यक्तिगत और सामूहिक हितों में सामंजस्य स्थापित करना होता है। यह वह माध्यम है जिसके जरिए समाज के सभी सदस्यों का हितवर्धन होता है। यह सामाजिक संरचना में विद्यमान कमियों को पहचानने, उन्हें दूर करने का प्रयास करती है।

प्र.11. सामाजिक कल्याण नीति क्या है?
What is social welfare policy?

उत्तर सामाजिक नीति, वह नीति है जो समाज की आवश्यकताओं जटिलताओं, संरचना तथा समस्याओं के अनुरूप तैयार की जाती हैं, तथा उसका मुख्य लक्ष्य सामाजिक कल्याण और सामाजिक विकास होता है। यह सरकार द्वारा जानबूझकर किया गया वह कार्य है जो नागरिकों के कल्याण में वृद्धि करने हेतु है।

प्र.12. असमानता को दूर करने का प्रमुख उपाय क्या है?
What is the main way to remove inequality?

उत्तर आर्थिक असमानता कम करने के लिए जातीय आधार पर आरक्षण खत्म करके आरक्षण का आधार आर्थिक किया जाना चाहिए। अनुसूचित जाति और जनजाति वर्ग में भी ओबीसी की तरह क्रीमीलेयर का प्रावधान किया जाना चाहिए। रोजगारपरक कौशल विकास, ऋण की सहज उपलब्धता और शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार की गारंटी कुछ ऐसे प्रावधान हैं, जो भारत सरकार कर सकती है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामाजिक न्याय का महत्त्व बताइए।
Give the importance of social justice.

उत्तर

सामाजिक न्याय का महत्त्व
(Importance of Social Justice)

सामाजिक न्याय की अवधारणा सामाजिक कार्य के अभ्यास के लिए केंद्रीय है। यह पेशेवर सामाजिक कार्य के मुख्य मूल्यों में से एक है नेशनल एसोसिएशन ऑफ सोशल वर्कर्स के अनुसार, सामाजिक न्याय सामाजिक कार्य का एक मार्गदर्शक सिद्धांत है जिसमें अनिवार्य रूप से समान आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों को बढ़ावा देना शामिल है। वे असमानता और

TOUCH 'n' PASS

उत्पीड़न के खिलाफ कई महत्त्वपूर्ण तरीकों से लड़ने की कोशिश करते हैं, सामान्य फ़ोकस के साथ उन लोगों की सहायता करने पर जिनकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत होती है।

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक बहुत ही व्यापक शब्द है। इसमें एक व्यक्ति के नागरिक अधिकार तो हैं ही साथ ही सामाजिक (भारत के परिप्रेक्ष्य में जाति एवं अल्पसंख्यक) समानता के अर्थ भी निहितार्थ हैं। ये निर्धनता, साक्षरता, छुआछूत, मर्द-औरत हर पहलुओं को और उसके प्रतीमानों को इंगित करता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य अभिप्राय यह है कि नागरिक नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति में कोई भेद न हो। सभी को विकास के समान । अवसर उपलब्ध हों। विकास के मौके अगड़े-पिछड़े को उनकी आबादी के मुताबिक मुहैया हो ताकि सामाजिक विकास का संतुलन बनाया जा सके। सामाजिक न्याय का अंतिम लक्ष्य यह भी है की समाज का कमजोर वर्ग, जो अपना पालन करने के लिए भी योग्य न हो। उनका, विकास में भागीदारी सुनिश्चित हो। जैसे विकलांग, अनाथ बच्चे, दलित, अल्पसंख्यक, गरीब लोग, महिलाएँ अपने आपको असुरक्षित न महसूस करे। संसार की सभी आधुनिक न्याय प्रणाली प्राकृतिक न्याय की कसौटी पर खरा उतरने की चेष्टा करती है, अंतिम लक्ष्य होता है कि समाज के सबसे कमजोर तबके का हित सुरक्षित हो सके अन्याय न हो। यदि वर्तमान भारतीय न्याय प्रणाली पर गौर करे तो यह कई विभागों में बाँटी गई है, जैसे फौजदारी, दीवानी, कुटुम्ब, उपभोक्ता आदि। लेकिन इन सभी का किसी न किसी रूप में सामाजिक न्याय से सरोकार होता है।

प्र.2. भारतीय विदेश नीति के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
State the objectives of Indian foreign policy.

उत्तर

भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य
(Objectives of Indian Foreign Policy)

भारत की विदेश नीति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

1. भारत के महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना एवं तीव्र परिवर्तित अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर नजर रखना, जिससे कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ कदम से कदम मिलाकर चला जा सके।
2. नीति निर्णयन की स्वायत्तता को बनाये रखना तथा स्थायी, समृद्ध एवं सुरक्षित वैश्विक मानदंडों की स्थापना में अहम भूमिका का निर्वाह करना।
3. आतंकवाद के खिलाफ वैश्विक अभियान को सहयोग व समर्थन देना।
4. भारत के तीव्र आर्थिक विकास एवं वैश्विक निवेश को बढ़ाने वाले अंतर्राष्ट्रीय माहौल को विकसित करना, देश में विज्ञान एवं तकनीकी तथा प्रतिरक्षा को बढ़ावा देने वाले अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को संपन्न करना।
5. पी-5 समूह के देशों के साथ घनिष्ठता से कार्य करना तथा विश्व की महाशक्तियों, यथा-अमेरिका, यूरोपीय समुदाय, जापान, रूस एवं चीन आदि के साथ सामरिक समझौते करना।
6. परस्पर लाभकारी सहयोग के आधार पर पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को बढ़ाना एवं उन्हें सुदृढ़ करना तथा एक-दूसरे को सहयोग पहुंचाने की भावना से कार्य करना।
7. दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन की सुदृढ़ता एवं स्थायित्व के लिये कार्य करना तथा इस क्षेत्र के देशों के आर्थिक हितों को प्रोत्साहित करना।
8. सीमापार आतंकवाद को समाप्त करने का प्रयास करना तथा पाकिस्तान में कार्यरत आंतकवादी ढांचे को समाप्त करना।
9. भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति (पूर्ववर्ती 'पूर्व की ओर देखो' नीति) को और पुष्ट करना तथा आसियान साझा हितों की प्रगति के लिए सहयोग करना।
10. खाड़ी क्षेत्र के देशों के साथ सहयोग करना, जहाँ लगभग 4 मिलियन भारतीय रह रहे हैं और जो तेल और गैस आपूर्ति का मुख्य स्रोत हैं।
11. क्षेत्रीय संगठनों, जैसे-बिम्सटेक, मेकांग-गंगा सहयोग, आईबीएसए और आईओरआर-एआरसी आदि के साथ सहयोगपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देना।
12. जी-20 तथा यूरोपीय समुदाय जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय संगठनों के साथ सहयोग एवं संबंधों को बढ़ावा देना।
13. संयुक्त राष्ट्र परिषद् में सुधार और पुनर्गठन तथा वैश्विक व्यवस्था में बहुध्रुवीय कल्पना करना, जो संप्रभुता और अहस्तक्षेप के सिद्धांतों का पालन करें।

TOUCH 'n PASS

14. विकसित एवं विकासशील विश्व में समान आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकारों को बढ़ावा देना।
15. वैश्विक नाभिकीय नि:शस्त्रीकरण के लिए प्रयास करना तथा इसे समयबद्ध ढंग से प्राप्त करना।
16. भारतीय डायस्पोरा (diaspora) के साथ निकटता से सतत आधार पर अन्योन्य किया ताकि भारत के साथ इनके संबंधों को मजबूती प्रदान की जा सके और भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में इनकी अहम् भूमिका को मान्यता प्रदान की जा सके।

प्र.3. न्याय के तीन सिद्धान्तों की संक्षेप में चर्चा कीजिए। प्रत्येक को उदाहरण के साथ समझाइए।
Discuss the three principles of justice in brief. Explain everyone with example.

उत्तर

न्याय के तीन सिद्धान्त
(Three Principles of Justice)

न्याय के तीन सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. **समान लोगों के लिए समान व्यवहार**—इसका विवेचन हम प्रश्न 1 में कर चुके हैं।
2. **समानुपातिक न्याय**—समान व्यवहार न्याय का एकमात्र सिद्धान्त नहीं है। ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें हम यह अनुभव करें कि प्रत्येक के साथ समान व्यवहार करना अन्याय होगा। उदाहरण के लिए किसी विद्यालय में अगर यह निर्णय लिया जाए, कि परीक्षा में सम्मिलित होने वाले सभी लोगों को समान अंक दिए जाएँगे क्योंकि सभी एक ही स्कूल के विद्यार्थी हैं और सभी ने एक ही परीक्षा दी है यह स्थिति कष्टपूर्ण हो सकती है तब अधिक उचित यह रहेगा। कि छात्रों को उनकी उत्तर-पुस्तिकाओं की गुणवत्ता और सम्भव हो तो इसके लिए उनके द्वारा किए गए प्रयास के अनुसार अंक प्रदान किए जाएँ। यह न्याय का समानुपातिक सिद्धान्त है।
3. **मुख्य आवश्यकताओं का विशेष ध्यान**—न्याय का तीसरा सिद्धान्त है-पारिश्रमिक या कर्त्तव्यों का वितरण करते समय लोगों की मुख्य आवश्यकताओं का ध्यान रखने का सिद्धान्त। इसे सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने का एक तरीका माना जा सकता है। समाज के सदस्यों के रूप में लोगों की बुनियादी अवस्था और अधिकारों की दृष्टि से न्याय के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि लोगों के साथ समान बरताव किया जाए, लेकिन लोगों के बीच भेदभाव न करना और उनके परिश्रम के अनुपात में उन्हें पारिश्रमिक देना भी यह सुनिश्चित करने के लिए शायद पर्याप्त न हो कि समाज में अपने जीवन के अन्य सन्दर्भों में भी लोग समानता का उपभोग करें या कि समाज समग्ररुप से न्यायपूर्ण हो जाए। लोगों की विशेष आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखने का सिद्धान्त समान व्यवहार के सिद्धान्त को अनिवार्यतया खण्डित नहीं, बल्कि उसका विस्तार ही करता है।

प्र.4. सामाजिक न्याय के क्रियान्वयन में संविधान की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
Explain the role of the constitution in the implementation of social justice.

उत्तर

सामाजिक न्याय के क्रियान्वयन में संविधान की भूमिका
(Role of the Constitution in the Implementation of Social Justice)

भारतीय संविधान निर्माताओं ने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की स्थापना को संविधान की प्रस्तावना में स्थान दिया तथा इसे सरकार के प्रमुख लक्ष्य के रूप में घोषित किया।

भारत के संविधान के चौथे अध्याय में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 38 में स्पष्ट रूप से लिखा है कि 'राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करें, भरसक प्रभावी रूप से स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।' राज्य विशिष्ट रूप से आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और ना सिर्फ व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले तथा विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूह के मध्य भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं एवं अवसरों की समानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39,41, 42 एवं 42वें और 44वें संविधानिक संशोधन द्वारा इन में जोड़े गए निर्देशक तत्व भी प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए किए गए सरकारी प्रयत्नों का उल्लेख कीजिए।
Mention the efforts made by the government to establish social justice.

उत्तर

सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए किए गए सरकारी प्रयत्न
(Government Efforts made to Establish Social Justice)

स्वतंत्र भारत की सरकारों ने सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु निम्न कदम उठाए—

1. आजादी के तुरंत बाद जमीनदारी तथा जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया ताकि काश्तकारों का भूमि पर स्वामित्व स्थापित हो सके।
2. पंचवर्षीय योजनाएं लागू करके कृषि एवं उद्योगों की प्रगति, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधाओं का प्रसार, रोजगार एवं कार्य के अवसरों में वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय एवं लोगों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयास लगातार किए जा रहे हैं।
3. बच्चों की शोषण से रक्षा के लिए अनेक कानून पारित किए गए हैं। बीमारी एवं दुर्घटना के संबंध में मजदूर वर्ग में बीमा योजना लागू की गई है।
4. छुआछूत मिटाने हेतु कानूनी एवं अन्य प्रयास किए गए हैं। अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पिछड़ी जातियों के बालक एवं बालिकाओं को छात्रवृत्तियाँ तथा अन्य सुविधाएँ देकर उन्हें शिक्षित करने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान स्थिति (Present Situation)

उक्त शासकीय प्रयासों के बावजूद भारत में सामाजिक न्याय के लक्ष्य को अभी तक हासिल नहीं किया जा सका है। आज भी भारतीय जनता बेरोजगारी, अशिक्षा, गरीबी तथा शोषण से पीड़ित है । भ्रष्टाचार की जड़ें लगातार गहरी होती जा रही हैं। देश के एक बड़े हिस्से को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता है। सत्ता रुट वर्ग ने इस दिशा में कोई ठोस कार्य नहीं किए हैं तथा लुभावने नारों का ही अधिक सहारा लिया है। इस दिशा में अभी ठोस कार्य किए जाने जरूरी है नहीं तो भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना एक कोरा स्वप्न मात्र ही बना रहेगा।

प्र.6. सामाजिक न्याय की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
Describe the importance of social justice.

उत्तर

सामाजिक न्याय की आवश्यकता
(Importance of Social Justice)

सामाजिक न्याय की आवश्यकता को निम्न बिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **समाज का असमानता से ग्रस्त होना**—दुर्भाग्यवश सहयोग पर आधारित होने के बावजूद समाज समानता से ग्रसित हो रहा है। सामाजिक समानता की वजह से सामाजिक न्याय का उदय हुआ। अभावग्रस्त वर्ग विकास प्रक्रिया में निरंतर बढ़ता चला गया पूर्णब्रह्म ऐसी परिस्थिति में परम आवश्यक था कि इस पिछड़े वर्ग को समाज एवं राज्य की मुख्यधारा में लाया जाए। इसके लिए सामाजिक न्याय की आवश्यकता पड़ी।
2. **सामाजिक विकास हेतु जरूरी**—समाज का स्तर विकास तभी संभव हो सकता है। जब समस्त सामाजिक वर्गों का संतुलित विकास हो। यह कार्य सिर्फ सामाजिक न्याय को क्रियान्वित करके ही किया जा सकता है।
3. **लोक कल्याणकारी राज्य के आदर्शों के अनुकूल**—लोक कल्याणकारी राज्य नासिर पर समाज के समस्त वर्गों के कल्याण का प्रबल हिमायती है, बल्कि यह सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों हेतु कुछ विशेष प्रावधान भी करना चाहता है। वर्तमान में विश्व के लगभग सभी राज्य लोक कल्याणकारी हैं। अंत सामाजिक न्याय लोक कल्याणकारी राज्य के आदर्शों के अनुकूल कहा जा सकता है।
4. **विषमता के अंत हेतु आवश्यक**—किसी भी समाज का सबसे बड़ा दोष क्षमता है। क्योंकि समाज न्याय एवं समाजवादी धारणा है अर्थात सामाजिक न्याय का प्राण तत्व समानता है। यदि सामाजिक विषमता का अंत करना है, तो इसका एकमात्र समाधान यही है कि किसी भी कारण से समाज के सामान्य वर्ग के पीछे के लोगों को विशेष सुविधा प्रदत्ता की जाएं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. न्याय के सार्वलौकिक तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।
Mention the universal postulates of justice.

उत्तर

न्याय के सार्वलौकिक तत्व
(Universal Postulates of Justice)

कुछ ऐसे तत्व हैं जो न्याय के साथ सदैव बने रहते हैं। ये तत्व न्याय के सार्वलौकिक तत्व कहलाते हैं। न्याय के इन सार्वलौकिक अथवा सार्वभौमिक तत्वों का संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार है—

1. **सत्य**—सत्य न्याय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है। सत्य तथा न्याय का घनिष्ठ संबंध होता है। न्याय सत्य में दृष्टिगोचर होता है। झूठ से न्याय का कोई संबंध नहीं होता। न्याय के उचित प्रशासन के लिए तथ्यों की सत्यता आवश्यक होती है।
2. **मूल्यों के आधारभूत क्रम की समानता**—इसका अभिप्राय है कि विभिन्न मामलों के संबंध में विचार करते समय न्याय की एक ही धारणा को लागू किया जाना चाहिए। इसके विपरीत यदि एक मामले में न्याय की एक धारणा को और दूसरे मामले में न्याय की किसी अन्य धारणा को लागू किया जाता है तो सर्वथा अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।
3. **समानता की भावना**—समानता की भावना का अभिप्राय कानून के समक्ष समानता से है। न्याय में समानता का भाव स्वाभाविक रूप से निहित होता है। इसका अर्थ है कि कानून के अनुसार सभी व्यक्तियों के साथ एक समान व्यवहार होना चाहिए। कानून किसी व्यक्ति के साथ जाति, धर्म, वंश, लिंग आदि के आधार पर भेद-भाव न करे।
4. **स्वतंत्रता**—व्यक्ति की स्वतंत्रता पर सामाजिक हित को छोड़कर अन्य आधारों पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए।
5. **असहायों तथा कमजोर व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार**—न्याय का एक प्रमुख सार्वभौमिक तत्व असहायों, प्राकृतिक एवं सामाजिक रूप से कमजोर व्यक्तियों के हितों की रक्षा करना है। न्याय की माँग है कि असहायों तथा कमजोर व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार किया जाए।
6. **प्रकृति की अनिवार्यताओं के प्रति सम्मान**—कोई भी व्यक्ति अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार ही कार्य कर सकता है। अत: किसी भी व्यक्ति को अपनी क्षमता के बाहर कार्य करने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को कोई ऐसा कार्य करने के लिए विवश किया जाता है, जोकि उसकी सामर्थ्य के बाहर महत्त्वपूर्ण पहलू है—
   (i) **सांख्यिक** (Numerical)—न्याय के सांख्यिक पहलू का अर्थ है कि न्याय सबको समान मिलना चाहिए। उपयोगितावादी विचारक **जेरमी बेंथम** ने कहा था कि 'प्रत्येक व्यक्ति को एक समझा जाए तथा किसी को भी एक से अधिक न समझा जाए।' प्राचीन यूनान के कुछ नगर राज्यों में यह पहलू इतना अधिक प्रचलित था कि सार्वजनिक पद पासडाल कर दिए जाते थे। इससे स्पष्ट है कि सांख्यिक न्याय में किसी सार्वजनिक पद की प्राप्ति के लिए किसी विशेष योग्यता अथवा ज्ञान को आवश्यक नहीं समझा जाता।
   (ii) **ज्यामितीय** (Geometrical)—ज्यामितीय न्याय का अभिप्राय है कि समान व्यक्तियों को समान तथा असमान को असमान समझा जाए। ज्यामितीय न्याय में योग्यता, ज्ञान तथा अनुभव जैसे गुणों के आधारों पर बल दिया जाता है। ज्यामितीय न्याय की धारणा है कि लोगों को अपने से संबंधित कार्यों को करना चाहिए।
   उदाहरण के लिए किसान का कार्य खेती करना है। यदि किसान खेती करता है तो यह न्याय है। लेकिन यदि वह व्यापार करता है तो यह न्याय नहीं है। ज्यामितीय न्याय का एक अन्य पहलू वितरणकारी पहलू है, जिसके अनुसार शासन करने की शक्ति उनको दी जानी चाहिए, जिन्हें शासन करना आता हो।
   (iii) **संरक्षात्मक** (Protective)—संरक्षात्मक न्याय विशेष वर्गों एवं समुदायों के संरक्षण का समर्थन करता है। उदाहरण के लिए यदि राज्य कमजोरों की सहायता करके उन्हें अन्य लोगों के समान लाने का प्रयत्न करता है तो यह संरक्षात्मक न्याय है। जॉन रॉल ने न्याय के इस विचार का समर्थन किया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामाजिक न्याय की अवधारणा की विवेचना कीजिए।
Discuss the concept of social justice.

उत्तर

सामाजिक न्याय की अवधारणा
(Concept of Social Justice)

भारत का संविधान 26 नवम्बर 1949 को लागु किया गया। संविधान के कुछ प्रावधान तो उसी दिन अस्तित्व में आए लेकिन कुछ प्रावधान 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आए। इस दिन को संविधान प्रारम्भ के दिन के रूप में जाना जाता है तथा इसे गणतंत्र

दिवस के रूप में मनाया जाता है। भारतीय संविधान की सामग्री व आत्मा अद्वितीय है जिसकी विशेषता के कारण यह विश्व में अपनी अलग पहचान के रूप में जाना जाता है।

भारत रत्न से सम्मानित बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर को भारतीय संविधान का निर्माता माना जाता है। यह व्यक्ति सामाजिक न्याय की भावना के कारण तत्कालीन अछूत, अन्य पिछड़ा वर्ग और महिलाओं तथा दलितों का उदार करने के कारण हिन्दु समाज की 95 प्रतिशत जनसंख्या का मसीहा बन गया। हिन्दु शस्त्रों के अनुसार जनसंख्या के एक बहुत बड़े हिस्से को जाति व्यवस्था के आधार पर निम्न जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता था। अम्बेडकर उस सहस्त्राब्दी का प्रथम व्यक्ति था जिसने सामाजिक न्याय व कानून की मदद से जातिगत भेदभाव को हिन्दु समाज से समाप्त कर दिया।

सामाजिक न्याय व्यवस्था रंग, जाति, धर्म तथा लिंग के आधार पर सभी व्यक्तियों को समान व्यवहार करना सिखाता है। सामाजिक न्याय व्यवस्था में पिछडे वर्गों अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग और महिलाओं की स्थिति को विशेषाधिकार प्राप्त हैं क्योंकि सामाजिक न्याय संविधान की मुख्य आधारशिला है। भारतीय संविधान निर्माता सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को अच्छी तरह जानते हैं कि वे किस प्रकार लोगों की उम्मीदो को पूरा कर सकेंगे। पंडीत जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के सामने अपना विचार रखा 'संविधान सभा का पहला कार्य संविधान द्वारा भूखे लोगों को भोजन व कपडा प्रदान करना व आत्मनिर्भर बनाना था जिससे वे खुद का विकास कर सके तथा देश के लिए कुछ कर सके।

सामाजिक न्याय के लचीले रूप के कारण यह सबके लिए बहुत उपयोगी हैं। हालांकि सामाजिक न्याय का संविधान में कहीं पर भी परिभाषित नहीं किया गया है लेकिन सामाजिक न्याय संविधान का एक लक्ष्य है जो सामाजिक भावनाओं का आदर्श तत्व है। सामाजिक न्याय की भावना समय परिस्थितियों, संस्कृति और लोगों की महत्त्वकांक्षाओं से अस्थिर अवधारणा का एक रूप है।

मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्र गढकर के अनुसार सामाजिक न्याय सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में प्रत्येक नागरिक को असमानता रोकने के लिए समान अवसर का उद्देश्य प्रदान करती है।

भारतीय संविधान ने सभी नागरिको न्यायिक, सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक बनाने का वादा किया है तथा उन्हें अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना स्वतंत्रता देने के लिए प्रेरित किया है।

लोगों को सामाजिक न्याय सम्बन्धी अधिकार निम्न अनुच्छेद में प्रदान किए गए हैं—

अनुच्छेद 19 नागरिकों के मौलिक अधिकारों की गारंटी। अनुच्छेद 19 (1) के सात उपखंड में नागरिको की आजादी के सात अलग-अलग प्रकार की गारंटी और उनकी मौलिक अधिकारों के रूप में पहचान कराता है। अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत व्यक्तिगत अधिकारों तथा सार्वजनिक अधिकारों के दावे समायोजन संतोषपरक करते हैं।

अनुच्छेद 23 और 24 शोषण के खिलाफ मौलिक अधिकार। अनुच्छेद 24 विशेष रूप से किसी फैक्ट्री या खदान में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाता है। अनुच्छेद द्वितीय मे संपति के मूल अधिकार के संबंध में तथा संपति के अनिवार्य अधिग्रहण पर अनिश्चित (विरोधाभाषी) समस्या के संबंध में विशिष्ट प्रावधान देता है। अनच्छेद 38 में चाहा गया है कि राज्य यह प्रयास करेगा कि सामाजिक व्यवस्था को प्राप्त कर व उसकी सुरक्षा कर लोगों की भलाई को आगे बढाया जाए उतने प्रभावी ढंग से जितना संभव हो जिससे सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की संस्थाओं को सूचित करेगा। अनुच्छेद 39 खंड (क) कहता है कि राज्यपाल करेगा कि विधिक प्रणाली का संचालन समान अवसर के आधार पर न्याय को बढावा दे और विशेषकर नि:शुल्क विधिक सहायता प्राप्त हो उपर्युक्त विधान या योजनाओं के द्वारा व अन्य प्रकार से यह आश्वस्त करने के लिए कि न्याय प्राप्ति के अवसर से कोई भी नागरिक आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण वंचित न हो।

अनुच्छेद 41 मान्यता देता है कि प्रत्येक नागरिक के कार्य करने, शिक्षा व बेरोजगारी , वृद्धावस्था, बीमारी व अपंगता के मामले में व अन्य अवंछित कमी के मामले में अधिकार प्राप्त हो। अनुच्छेद 42 न्याय प्राप्ति व कार्य की मानवीय अवस्था और प्रसूति राहत महत्त्व पर जोर देता है। अनुच्छेद 43 कामकाजी आबादी से पूर्व जीवित मजदूरी के विचार को आदर्श मानता है। अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य अपेक्षाकृत कमजोर वर्गों मे शिक्षा व आर्थिक हितो को बढावा देने के महत्त्व पर जोर दिया गया है।

बहुत बड़ी संख्या में वे नागरिक जिन्हें अछूत गिना जाता है इस सामाजिक समस्या के अस्तित्व की प्रस्तुति ने संविधान में विशेष ध्यान प्राप्त किया है जैसाकि अनुच्छेद 15 (1) द्वारा धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, व जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित किया है। महिलाओं व बच्चों तथा सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछडे वर्गों के नागरिको या अनुसूचित जाति/जनजाति वालो के विकास के लिए राज्य विशेष प्रावधान बनाने हेतु सक्षम होगा। ऐसा ही अद्यवाद अवसरों की समानता के सिद्धान्त को प्रदान करने हेतु अनुच्छेद 16 (1) के रूप में प्रस्तुत किया है।

जितना कि अनुच्छेद 16 (4) राज्य को नागरिको के किसी भी पिछड़े वर्ग के पक्ष में नियुक्तियाँ या पदों के समाधान के लिए प्रावधान बनाने के लिए अनुमति देता है वे वर्ग राज्य की राय से राज्य में सेवाओं में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। अनुच्छेद 17 दावा (घोषणा) करता है कि अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है तथा इसके किसी भी रूप में अभ्यास की मनाही करता है तथा अस्पृश्यता को बढावा देना कानूनन दंडनीय अपराध होगा यह निश्चित करता है।

सामाजिक आर्थिक न्याय के विचार को प्राप्त करने की समस्याओं के संबंध में यह प्रावधान नीति (कोड) है जो कि भारतीय संविधान द्वारा निर्धारित किया गया है।

सक्षमता की दो धाराओं के संबंध में सामाजिक न्याय परिदृश्य को जाँचा जाना है (क) स्थायी आजीविका जिसका अर्थ है जीवन के पर्याप्त साधनों की प्राप्ति जैसे घर, कपडा, भोजन, विकास के साधन रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, व संसाधनो की प्राप्ति (ख) सामाजिक व राजनीतिक भागीदारी (सक्षम व साधनों को सशक्त बनाने) जो मौलिक अधिकारों की गारंटी पर बनाया गया है, सरकार में भागीदारी के अधिकार को प्रोत्साहन व सशक्तिकरण न्याय के सभी उपलब्ध साधनों की प्राप्ति और जिसके आधार पर न्याय एक राजनीतिक कार्यक्रम के रूप में एक व्यवहारिक वास्तविक बन जाए। इसलिए हमें आवश्यकता है विभिन्न मुद्दों के चुनिन्दा दृष्टांतो पर अध्ययन की जो सरकार की कुछ विषयों की नीतियों पर जैसे—

(क) भोजन व पानी का अधिकार
(ख) आवास जिसमें शामिल है पुन: बसवाहर व पुनर्वास
(ग) शिक्षा की प्राप्ति
(घ) स्वास्थ्य व स्वास्थ्य सेवा के प्रावधानों की प्राप्ति
(च) कार्य का अधिकार और
(छ) सूचनाओं की प्राप्ति और संवाद का अधिकार।

संक्षेप में महत्त्वपूर्ण तरीकों में से एक जिसमें जाँच आगे बढेगी विभिन्न रूपों को लेते हुए सामाजिक न्याय के विचारों की प्रासंगिक अभिव्यक्ति है। राजकीय न्याय में शामिल है विभिन्न कल्याणकारी योजनाए, कानून, कानूनन साक्षरता, ऐसे अधिकरणों, जन अदालते बोर्ड, जनहित याचिकाएँ, नवीन कानून शिक्षा साथ ही समाज के कमजोर वर्ग की सुरक्षा का संवैधानिक विचार तथा सकारात्मक भेदभाव की शुरूआत।

सामाजिक न्याय में चुनौतियाँ (Challenges in Social Justice)

आजादी के 40 वर्षों बाद 8 पंचवर्षीय योजनाएँ, वंचित वर्गों, अनुसूचित जाति/जनजाति, महिलाओं के लिए शिक्षा, रोजगार, आवास इत्यादि पर बने सैकडों कानून जो इन्हें विभिन्न प्रकार की विशेष सुविधाए प्रदान करते हैं। सामाजिक न्याय वास्तविकता से दूर है। कुल आबादी 96 करोड 50 लाख का 53 प्रतिशत हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे है अर्थात मूल आवश्यकताओं पर प्रतिदिन एक डोलर भी खर्च करने में असमर्थ है। केवल 16 प्रतिशत परिवार ही बिजली, पेयजल व शौचालय सुविधाओं का आरामदायक आनन्द उठाते है। यदि केवल ग्रामीण परिवारों को ही ध्यान में रखा जाए तो यह प्रतिशत केवल 39 प्रतिशत ही है। हमारी महिलाओं में 71 प्रतिशत निरक्षर है। कुछ राज्यों जैसे केरल और तमिलनाडु को छोड़ दिया जाए तो ग्रामीण स्वास्थ्य देखभाल एक दिखावा है और लगभग अस्तित्व में ही नहीं है। फिर लाखों शिक्षित बेरोजगारों की समस्या है। यद्यपि किसी भी समाज में कुछ रूप में असमानता तो अपरिहार्य होती है परन्तु विशाल पैमाने पर आर्थिक विषमता और लाखों भारतीयों की अशोभनीय जीवन स्थितियां एक वास्तविकता है जिसे नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। मूलभूत आवश्यकताओं की संतुष्टि सर्वोच्च वरियता अवश्य होनी ही चाहिए। क्योंकि भोजन, आवास, कपडा स्वास्थ्य सुविधा और प्राथमिक शिक्षा के बिना एक व्यक्ति मानव ही नहीं बनता। विस्तृत फैला हुआ जातिगत पूर्वागृह और निम्नजातियों के विरूद्ध सतत् भेदभाव सामाजिक स्थिरता व शांति के लिए एक खतरा है। जनसंख्या के एक विशाल खंड की सामाजिक और शैक्षिक पिछडापन उन्हें सामाजिक व आर्थिक विकास की प्रक्रिया में भागीदारी से रोकता है। उनको मानवीय विकास का जिक्र ही नहीं है। अत: सामाजिक क्रियाकलाप में भेदभाव में कमी सामाजिक न्याय हेतु आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। महिलाएँ ऐतिहासिक, सामाजिक, व आर्थिक नुकसान से ग्रसित है। यहाँ तक कि वंचित संप्रदाय के अन्य वर्गों में भी वे अधिकतम वंचित वर्ग में है। लिंग न्याय की गम्भीरता से माँग के लिए एक स्वतन्त्र समाज को उपस्थित होना ही पड़ेगा।

मानवीय अधिकारों की सुरक्षा और नागरिक स्वतन्त्रता के लिए सामाजिक न्याय की अवधारणा में दृढ प्रतिबद्धता भी शामिल है अक्षमता व अन्य वर्ग जैसे कि शारीरिक अपंग, बाल श्रम, जनजातियों वे जो पर्यावरणीय प्रदूषण से प्रभावितों की समस्याए भी सामाजिक न्याय का एजेंडा बनाती है। और ये भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं। ये अधिकांश राजनैतिक अशांति, सामाजिक

TOUCH 'n' PASS

व जातीय संघर्ष और सामुहिक हिंसा की वृद्धि व हमारे देश में गणतंत्रात्मक संरचना ही कमजोरी की जड है। जातीय संस्था हमारे समाज में बहुत प्रभावी है जो कि पश्चिमी देशों की घटना नहीं है। इस प्रकार की परिस्थितियों में क्या हम उस पद्धति का जो हमने अपनाया है उसका फल तोड सकते हैं। सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य है अनिवार्य व समान शिक्षा, जाति विहिन समाज और प्रत्येक को रोजगार। आर्थिक शोषण भी एक बड़ा घटक है और ये सभी गणतंत्र का वास्तविक अहसास करने की अनुमति नहीं देते। जब भारत सामाजिक व जातीय भेदभाव आर्थिक संघर्ष, बेरोजगारी, संप्रदायवाद और मूल आवश्यकताओं की कमी से गुजर रहा हो। एक तथ्यात्मक व अलग पार्टी की आवश्यकता है जो सामाजिक समस्याओं व आर्थिक वंचितता को स्वीकार करे व उन पर बात करें।

न्याय के अर्थ को और अधिक परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं है और यह समर्पित है कि उन सभी को न्याय दिया जाए जो वंचित रहे है या वंचित हो रहे हैं।

सामाजिक नीति—राजनीति समाज का प्रतिबिम्ब होता है यदि जातिवाद, क्षेत्रवाद व सम्प्रदायवाद समाज का हिस्सा हो तो वे राजनीति में भी प्रवेश करते हैं। वे जो भेदभाव के वातावरण में जन्म लेते हैं व मरते हैं तो उनके लिए अलग सोच कैसे सम्भव होगा? चुनाव के दौरान यही सोच प्राथमिक रहेगा बजाए विकास, विज्ञान, इमानदारी, विश्वसनीयता के यद्यपि राजनैतिक दलों का उद्देश्य राजनैतिक शक्ति हासिल करना है लेकिन वे सामाजिक भेदभाव से लडने के लिए भी समान रूप से जवाबदार है जब इसे महत्त्वपूर्ण एजेंडा बनाते है। विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि एजेडा द्वारा राजनीतिक शक्ति, हासिल करना सम्भव नहीं है जब तक डील नहीं होती है। हाल ही फ्रांस सरकार ने विद्यार्थियों को धार्मिक संकेतो वाले वस्त्र विद्यालय में पहनने पर प्रतिबंध लगाया है, इसी प्रकार हमें भी दृढ निर्णय लेना पडेगा कि भेदभाव वाली संस्था जैसे जातीय से परहेज करें। दलित व पिछड़ो की बढती हुई चेतना के कारण वे भी राजनीतिक शक्ति में भागीदारी की कोशिश कर रहे हैं और उस परिस्थिति की ओर अग्रसर है जहाँ चुनाव दलों की अपेक्षा जातियों के मध्य लडे जा रहे है पहले प्रभावशाली जातियाँ ही मुख्यतम चुनाव लडती थी और अब पिछडों ने भी प्रतियोगिता प्रारम्भ कर ली है और वह दिन दूर नहीं जब प्रभावशाली जातियाँ अपनी कम संख्या के कारण सत्ता से बाहर हो जाएगी। हम सब के लिए यह आवश्यक है की सड़े हुए मूल्यों व सामाजिक पद्धति को हटा दे।

आर्थिक नीति—सामाजिक आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, लिंग, स्थिति और आय प्रतिशतता के वर्गीकरण के आधार पर स्थानीय या राष्ट्रीय स्तर पर आय का व्यक्तिगत या परिवारों के मध्य विभाजन ही समाज में व्याप्त समानता व असमानता में सबसे अधिक पाया जाता है। अधिकांश समसामयिक समाजों में आय का विभाजन ही सबसे अधिक जायज द्योतक है कुल मिलाकर समानता या असमानता का हमारे देश में अमीर व गरीब के बीच अन्तर बहुत चोडा है। ऐतिहासिक कारणों के साथ और कई कारण है गरीबी उत्पन्न होने के / सरकारे नैतिक रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य रोजगार व सार्वभौमिकरण (ग्लोबलाइजेशन) व नीजिकरण के कारण इस पर बहस हो रही है कि सरकारे कोई कार्य या रोजगार उपलब्ध नहीं करा रही है लेकिन वे कानून, व्यवस्था व विदेश नीति बनाए रख रही है।

दलित—दलितों का हजार वर्ष से शोषण हुआ है। कोई समाज या देश अपेक्षित विकास नहीं कर सकता जबकि इतनी बड़ी संख्या में लोगो को मर्यादा व सम्मान से वंचित किया जाए। एक देश एक परिवार का ही विस्तृत रूप होता है, यदि परिवार का सदस्य अर्ध घोषित व बीमार हो तो उसमे शान्ति व खुशहाली नहीं आ सकती । इसी प्रकार दलितों को वंचित करने का मूल्य चुकाना पडता है भारत चुका रहा है। डॉ. अम्बेडकर भूमि का राष्ट्रीयकरण के लिए ये लेकिन दलित इस आर्थिक एजेंडा को भूल गए। दलितों ने आरक्षण के कारण सरकारी नौकरियों व राजनीति में कुछ प्रगति प्राप्त की लेकिन अन्य क्षेत्रों जैसे उद्योगों, बाजार, व्यवसाय, मीडिया, हाइटेक, कला व संस्कृति, स्टोक एक्सचेंज में उन्हें अभी प्रारम्भ करना है। डॉ. अम्बेडकर बौद्ध धर्म के द्वारा जाति रहित समाज स्थापित करना चाहते थे जो कि 2001 में लागू किया गया जब लाखों दलितों ने बोद्ध धर्म को गले लगाया।

जनजातियाँ—जनजातियाँ जातिगत भेदभाव से तो मुक्त है लेकिन वे आर्थिक गरीबी से सबसे अधिक ग्रसित है वे परम्परागत जड़ों व शाखा से ही पोषण पाते रहे हैं या अन्य उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर परन्तु इसमें भी गिरावट आई है। औद्योगिकरण व शब्दीकरण की बढती रफतार से कोई विकल्प नहीं छूटा सिवाए इसके कि वे देश की मुख्य धारा में एक हो जाए। यद्यपि उन्हें भी आरक्षण दिया गया है लेकिन अधिकांश पिछडे जनजातियां मुश्किल से ही लाभान्वित हैं।

अल्प संख्यक—अल्प संख्यक होना प्रजातंत्र में कोई शाप नहीं होना चाहिए। लेकिन हमारे जैसे देश में अधिसंख्यक मुख्य लाभ हथिया लेते हैं। इसाइयों ने ही विज्ञान, अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) व आधुनिक शिक्षा को उत्पन्न किया व लागू किया लेकिन वे दिन ब दिन प्रताडित किए जाते हैं धर्मातंरण के नाम पर जैनो, सिखों, बाद्यो को अलग धार्मिक वर्ग का स्थान नहीं दिया गया है यह अल्पसंख्यकों की दुर्दशा को प्रदर्शित करता है।

मुसलमान व दलित इसाई सबसे खराब पीडित है और इसलिए उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा व नौकरियों में वरियता से आश्वस्त करना चाहिए। मुसलमान बहुत कम संख्या में सरकारी नौकरियों या पुलिस में है और उन्हें इन क्षेत्रों में उनकी जनसंख्या के अनुसार योगदान आश्वस्त करना चाहिये। साम्प्रदायिक बलवों में वे केवल बहुसंख्यक के क्रोध का ही नहीं सामना करते बल्कि पुलिस व पेरापीटरी बलों का भी सामना करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि उनका पुलिस व पेरापीटरी बलों मे सुनिश्चित आरक्षण हो।

पिछड़ी जातियाँ—पिछड़ी जातियों की जनसंख्या अन्य वर्गों से ज्यादा है लेकिन वे सबसे ज्यादा विभक्त वर्ग है। दलित संघर्ष के कारण मंडल आयोग की अभिशंषाए लागू की गई थी लेकिन विभक्त व असावधान पिछड़े लाभ भी प्राप्त नहीं कर सके। इस प्रकार अधिकांश पिछड़ी जातियों की गाथा दु:खद है। आरक्षण व अन्य लाभों को आश्वस्त हेतु उनकी ओर एक ताजी दृष्टि की आवश्यकता है।

महिलाएँ—महिलाए इस सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में सबसे खराब रूप से पीडित है। यहाँ तक की समर्थ महिलाएं भी उनकी योग्यता के अनुसार रिटर्न प्राप्त करने की स्थिति में नहीं है। बचपन से ही उन्हें सिखाया जाता है कि वे तो उनके ससुराल के घर से ही संबंधित है और उनकी मुक्ति उनके पतियों के आगे समर्पण से ही है। इससे यह मानसिकता उत्पन्न होती है चेतन या अर्ध चेतन रूप से कि महिलाएं आनंद व बच्चे पैदा करने का साधन मात्र है। इस पर आघात किया जाना चाहिये अन्यथा यहाँ तक कि महिलाएँ भी अपने अधिकार हेतु आगे नहीं आयेगी। इस मानसिकता की उप उत्पादन है दहेज, बलात्कार व यातनाए। वर्तमान समय में मूलभूत प्रवृत्तियों के कारण मुस्लिम औरते सबसे अधिक खराब स्थिति में हैं।

किसान—किसान जितनी मेहनत करते हैं उसकी तुलना में उन्हें उचित मूल्य नहीं मिलता है। गेहूँ, धान व सब्जियों की तुलना में सौन्दर्य प्रशासन के साधनों की कीमतों में वृद्धि हुई है। मुम्बई व दिल्ली जैसे शहरों में छोटे व्यापारी और सरकारी कर्मचारी जीवन व्यतीत करने के लिए ज्यादा जोखिम नहीं उठा सकते हैं। किसानों को उर्वरक, कीटनाशक और बीज आदि पर सब्सीडी अधिक मिलनी चाहिए। कम्प्यूटर व मोबाइल क्रान्ति से किसानों को ज्यादा-से-ज्यादा फायदा मिलना चाहिए।

श्रमिक—उत्पादन अतीत में हजारों मजदूरों द्वारा किया जाता था वर्तमान में उनके स्थान पर बहुत कम लोग काम कर रहे हैं क्योंकि मजदूरो का स्थान मशीनों ने ले लिया है। तथा व्यापारी ज्यादा मुनाफा कमा रहे हैं। व्यापारियों ने मजदूरों का अधिक शोषण करना प्रारम्भ किया है। सामाजिक न्याय व्यवस्था श्रमिको के शोषण को रोकती है।

भूमिहीन लोग—ग्रामीण भारत में रहने वाली 65 प्रतिशत आबादी भूमिहीन है। जापान व यूरोप जैसे देशो में 40 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर नहीं है। लेकिन कृषि आधारित उद्योगों और मृदा संरक्षण आदि पर रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं।

निष्कर्ष—सामाजिक न्याय का हल हमारे भीतर ही निहित है। हमें इसके बारे में पता होना चाहिए कि हमारे द्वारा गलत आचरण करने पर क्या सजा का प्रावधान है सामाजिक न्याय के अन्तर्गत भेदभाव को समाप्त करने के लिए हर सम्भव सरकारी प्रयास किए जा रहे हैं। सामाजिक न्याय को प्रभावी बनाने के लिए नीतियों को सुनिश्चित करना चाहिए। गरीबों के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। लोगों को रोजगार के हर सम्भव प्रयास करने चाहिए। नौकरियों व स्वरोजगार के अवसरों में वृद्धि करनी चाहिए।

प्र.2. भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

Describe the principles of Indian foreign policy.

उत्तर

भारतीय विदेश नीति के सिद्धांत
(Principles of Indian Foreign Policy)

भारत की विदेश नीति भारत के राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देने के लिए विश्व के अन्य राज्यों के साथ भारत के संबंधों का नियमन करती है। यह विभिन्न कारकों द्वारा निर्धारित होता है, जैसे—भूगोल, इतिहास और परंपरा, सामाजिक बनावट, राजनैतिक संगठन, अंतर्राष्ट्रीय स्थिति, आर्थिक स्थिति, सैन्य शक्ति, जनता की राय तथा नेतृत्व।

1. **विश्व शांति को बढ़ावा देना**—भारतीय विदेश नीति का उद्देश्य, अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बढ़ावा देना है। संविधान का अनुच्छेद 51 (राज्य के नीति निदेशक) भारतीय राज्य को, अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा व शांति बनाए रखने, राष्ट्रों के मध्य सम्मानजनक व न्यायपूर्ण संबंध बनाए रखने, अंतर्राष्ट्रीय विधियों व संधि शर्तों के प्रति आदर रखने अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निबटारों में मध्यस्थता करने का निर्देश देता है। राष्ट्र के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए शांति आवश्यक है। जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, 'शांति हमारे लिए एक उत्साहजनक आशा ही नहीं है, यह एक आपात आवश्यकता है।'
2. **गैर-उपनिवेशवाद**—भारत की विदेश नीति औपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का विरोध करती है। भारत का विचार है कि औपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद, साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा कमजोर राष्ट्रों के शोषण को बढ़ावा देता है और अंतर्राष्ट्रीय शांति को प्रभावित करता है। भारत ने औपनिवेशवाद के सभी रूपों के परिशोधन की वकालत की है तथा एफ्रो-एशियाई

देशों, जैसे-इंडोनेशिया, मलाया, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया, घाना, नामीबिया तथा अन्य देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों का समर्थन किया है। इस प्रकार भारत ने एफ्रो-एशियाई देशों के औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी ताकतों, जैसे—इंग्लैंड, फ्रांस, हॉलैंड, पुर्तगाल तथा अन्य के विरुद्ध उनके संघर्ष में पूर्ण-भाईचारे का प्रदर्शन किया है। वर्तमान नव-उपनिवेशवाद तथा नव-साम्राज्यवाद का भी भारत ने विरोध किया है।

3. **गैर-नस्लवाद**—नस्लवाद के सभी रूपों का विरोध, भारतीय विदेश नीति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। भारत के अनुसार, नस्लवाद (लोगों के बीच नस्ल के आधार पर विभेद) औपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की तरह, श्वेतों द्वारा अश्वेतों का शोषण, सामाजिक असमानता तथा विश्व शांति के बढ़ावे में विघ्न डालने को बढ़ावा देता है। भारत ने दक्षिण अफ्रीका में अल्पसंख्यक श्वेत शासन की नस्लवाद की नीति (दक्षिण अफ्रीका में गैर-यूरोपीय समूहों के विरुद्ध आर्थिक व राजनीतिक भेदभाव की नीति) की प्रचंड आलोचना की है। नस्लवाद की नीति के विरोध के परिणामस्वरूप 1954 में दक्षिण अफ्रीका के साथ कूटनीतिक संबंधों में भी कड़वाहट आ गई। भारत ने, जिम्बाब्वे (पूर्व में रोडेशिया) तथा नामीबिया की श्वेत शासन से मुक्ति संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।
4. **गुटनिरपेक्षता**—भारत जब स्वतंत्र हुआ, उस समय विश्व सैद्धांतिक आधार पर दो भागों, में विभाजित था, अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीपति भाग तथा भूतपूर्व यू.एस.एस.आर. के नेतृत्व में साम्यवादी भाग। 'शांति युद्ध' की इस परिस्थिति में भारत ने किसी भी ओर जाने से इनकार कर दिया तथा गुट निरपेक्षता की नीति को अपनाया। जवाहर लाल नेहरू ने कहा, 'हम विश्व की इस एक दूसरे के विरुद्ध ताकत की राजनीति से दूर रहेंगे जिसके परिणाम में विश्व युद्ध हुए तथा पुनः यह, इससे विस्तृत पैमाने पर किसी विनाश को बढ़ावा दे सकती है। मैं सोचता हूं कि भारत युद्ध को टालने में सहायता करने में एक बड़ी भूमिका, और शायद प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है। इसलिए यह और अधिक आवश्यक हो जाता है कि भारत किसी भी शक्तिशाली समूह के साथ खड़ा नहीं होगा, जिसके विभिन्न कारण हैं-युद्ध का पूर्ण खतरा और युद्ध की तैयारियां।'

   'जब हम कहते हैं कि भारत गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन करेगा, इसका अर्थ है—(i) भारत किसी भी समूह में शामिल देश अथवा किसी भी देश के साथ सैन्य सहयोग नहीं करेगा; (ii) भारतीय विदेश नीति की एक स्वतंत्र दिशा होगी; (iii) भारत सभी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने का प्रयास करेगा।
5. **पंचशील**—पंचशील अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए आचरण के पांच सिद्धांतों को लागू करता है। यह 1954 में जवाहरलाल नेहरू तथा चाउ-एन-लाई, चीन के राष्ट्र प्रमुख के मध्य तिब्बत के संबंध में भारत-चीन संधि की उद्देश्यिका में शामिल हैं। ये पांच सिद्धांत हैं—
   (i) एक दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता और प्रभुसत्ता के लिए परस्पर सम्मान;
   (ii) अनाक्रमण;
   (iii) एक दूसरे के आंतरिक मामलों में दखल न देना;
   (iv) समानता व परस्पर लाभ, और;
   (v) शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व।

   'भारत ने यह अनुभव किया कि है प्रतिस्पर्धी ताकतों के शक्तिशाली संधियों व संबंधों द्वारा शीत युद्ध के तनावों को कम करना और भय संतुलन बनाने के बजाय पंचशील संप्रभुत्व राष्ट्रों में शांतिपूर्ण सहयोग में उपयोगी है। भारत ने इसे सार्वभौमिकता के सिद्धांत पर आधारित बताया यह शक्ति संतुलन की अवधारणा के विपरीत था।'

   पंचशील काफी लोकप्रिय हुआ तथा कई राष्ट्रों, जैसे—म्यांमार, भूतपूर्व युगोस्लाविया, इंडोनेशिया आदि ने इसे अपनाया। पंचशील तथा गुटनिरपेक्षता, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की कल्पना व प्रयोगों में भारत की महान देन है।
6. **एफ्रो-एशियाई झुकाव**—यद्यपि भारत की विदेश नीति में विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने की बात कही गई है परंतु इसका एफ्रो-एशियाई देशों के प्रति एक विशेष झुकाव रहा है। इसका उद्देश्य इनके मध्य एकता को बढ़ावा देना है और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में आवाज उठाकर और प्रभावित कर इन्हें सुरक्षित करने का प्रयास करना है। इन राष्ट्रों के आर्थिक विकास के लिए भारत अंतर्राष्ट्रीय सहायता की माँग करता रहा है। 1947 में भारत ने नई दिल्ली में प्रथम एशियाई संबंध सम्मेलन आयोजित किया। 1949 में भारत ने इंडोनेशियाई स्वतंत्रता के ज्वलंत विषय पर एशियाई देशों को एकत्रित किया। भारत ने बांडुंग (इंडोनेशिया) में 1955 में हुए एफ्रो-एशियन सम्मेलन में एक सक्रिय भूमिका निभाई।

TOUCH 'n' PASS

भारत ने समूह 77 (1964), समूह 15 (1990), आई.ओ.आर.ए.आर.सी. (1995), बी.आई.एस.टी. आर्थिक सहयोग (1997) और सार्क (1985) के गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत ने अनेक पड़ोसी राष्ट्रों से 'बड़े भाई ' का नाम प्राप्त किया है।

7. **राष्ट्रमंडल से संबंध**—1949 में, भारत ने राष्ट्रमंडल देशों में अपनी पूर्ण सदस्यता जारी रखने की घोषणा की और ब्रिटिश ताज को राष्ट्रमंडल प्रमुख के रूप में स्वीकार किया। परंतु इस संविधानेत्तर घोषणा ने भारत की संप्रभुता को किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं किया क्योंकि राष्ट्रमंडल, स्वतंत्र राष्ट्रों का एक स्वैच्छिक संघ है। इसने भारत के गणतांत्रिक चरित्र को भी प्रभावित नहीं किया क्योंकि भारत न ही ब्रिटिश ताज के प्रति उत्तरदायी/वफादार था और न ही ब्रिटिश ताज भारत के संबंध में किसी भी प्रकार के कार्यों का निर्वाह करता था।
   भारत व्यावहारिक कारणों से राष्ट्रमंडल का सदस्य बना रहा। ये माना गया कि उसकी राष्ट्रमंडल सदस्यता उसके आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और अन्य मामलों में लाभकारी होगी। यह सी.एच.ओ.जी.एम. (चोगम) में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत ने 1983 में नई दिल्ली में 24वें राष्ट्रमंडल सम्मेलन की मेजबानी की।
8. **संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) को सहयोग**—भारत 1945 में स्वयं संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया। तब से यह संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों व कार्यक्रमों का समर्थन करता है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों तथा सिद्धांतों के प्रति पूर्ण विश्वास व्यक्त किया है। भारत की यू.एन.ओ. में भूमिका के संबंध में कुछ तथ्य—
   (i) संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से भारत औपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और नस्लवाद और अब नव-औपनिवेशवाद तथा नव-साम्राज्यवाद के विरुद्ध नीतियां लागू की हैं।
   (ii) 1953 में विजयलक्ष्मी पंडित को संयुक्त राष्ट्र आमसभा का अध्यक्ष चुना गया।
   (iii) भारत ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा कोरिया, कांगो, अल-सल्वाडोर, कंबोडिया, अंगोला, सोमालिया, मोजाम्बीक , सियरा लियोन, भूतपूर्व यूगोस्लाविया व अन्य में चलाए गए शांति अभियानों में सक्रिय से भाग लिया।
   (iv) भारत संयुक्त राष्ट्र के खुले कार्य समूहों (open ended) में सक्रियता से भाग लेता रहा है। भारत संयुक्त राष्ट्र को मजबूत करने के लिए बनाए गए कार्य समूह का सह-अध्यक्ष था इसने 1997 में अपनी रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र को सौंपी।
   (v) भारत कई बार संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का अस्थायी सदस्य रह चुका है। अब भारत सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता की माँग कर रहा है।
9. **नि:शस्त्रीकरण**—भारत की विदेश नीति हथियारों की दौड़ की विरोधी तथा नि:शस्त्रीकरण की हिमायती है। यह पारंपरिक व नाभिकीय दो प्रकार के हथियारों से संबंधित है। इसका उद्देश्य शक्तिशाली समूहों के मध्य तनाव कम या समाप्त कर, विश्व शांति तथा सुरक्षा को बढ़ावा देना है और हथियारों के उत्पादन पर होने वाले अनुपयोगी खर्च को रोककर देश के आर्थिक विकास में गतिशीलता लाना है। भारत हथियारों की दौड़ पर नजर रखने व नि:शस्त्रीकरण की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र का मंच इस्तेमाल करता है। भारत ने इस दिशा में पहल करते हुए 1985 में एक छह देशीय सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया और नाभिकीय नि:शस्त्रीकरण के लिए ठोस प्रस्ताव दिए।

सन 1968 में नि:शस्त्रीकरण संधि तथा 1996 में सी.टी.बी.टी. हस्ताक्षर न करके भारत ने अपने नाभिकीय विकल्प खुले रखे। भारत ने नि:शस्त्रीकरण संधि एवं सी.टी.बी.टी. का उनके भेदभावपूर्ण व शासनात्मक चरित्र के कारण विरोध किया। ये एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को निरंतर जारी रखती है, जिसमें केवल पांच राष्ट्र (अमेरिका, रूस, चीन, इंग्लैंड और फ्रांस) ही नाभिकीय हथियार रख सकते हैं।

प्र.3. भारत की 'मध्य एशिया को जोड़ो' नीति क्या है?
What is India's 'connect central Asia' plicy? Also, explain 'Act East policy'.

उत्तर

भारत की मध्य एशिया को जोड़ो नीति
(India's Connect Central Asia Policy)

भारत ने 'मध्य एशिया को जोड़ो' नीति की शुरुआत 2012 में की। इस नीति का उद्देश्य मध्य एशिया के देशों के साथ भारत के सम्बन्धों का विस्तार तथा सुदृढीकरण हैं इन देशों में शामिल हैं—कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान तथा उज्बेकिस्तान।

भारत की 'मध्य एशिया की जोड़ो नीति' वृहद दृष्टिकोण पर आधारित है और इसके राजनीतिक, रणनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध शामिल हैं। इसकी विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

1. भारत उच्चस्तरीय यात्राओं के आदान-प्रदान के माध्यम से मजबूत राजनीतिक सम्बन्ध बनाने की कोशिश जारी रखेगा। भारतीय नेता द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय मंचों पर नजदीकी संवाद व अंतर्क्रिया जारी रखेंगे।
2. भारत सामरिक एवं सुरक्षा सहयोग को सुदृढ़ करेगा। भारत की पहले से ही कुछ मध्य एशियाई देशों के साथ रणनीतिक भागीदारी है। पूरा स्थान सैन्य प्रशिक्षण, संयुक्त शोध, आतंक निरोधक समन्वय तथा अफगानिस्तान पर चर्चा जारी है।
3. भारत मध्य एशियाई साझेदारों के साथ बहुपार्श्विक वार्ताएं पहले से विद्यमान मंचों , जैसे—एससीओ, यूरोशियन इकॉनोमिक कम्यूनिटी (EEC) तथा कस्टम यूनियन जैसे समुद्र संयुक्त प्रयासों से उत्पन्न 'सिनर्जी' का इस्तेमाल कर आगे बढ़ाना जारी रखेगा। भारत ने व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते का प्रस्ताव किया है कि अपने बाजार को यूरेशिया के साथ जोड़ने के लिए।
4. भारत मध्य एशिया को ऊर्जा तथा प्राकृतिक संसाधनों के लिए दीर्घकालीन साझेदार के रूप में देखता है। मध्य एशिया में बड़ी जोत की कृषि योग्य जन्म भूमि है और भारत के लिए वहाँ अधिक मूल्यांकन की लाभप्रद फसलों के उत्पादन में सहयोग की बड़ी संभावना है।
5. चिकित्सा एवं अन्य क्षेत्र जहाँ सहयोग की व्यापक संभावना है। भारत सरकार एशिया में सिविल अस्पताल/क्लिनिक स्थापित करने के सहयोग देने के लिए तैयार है।
6. भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली पश्चिमी विश्वविद्यालयों में ली जाने वाली फीस के एक अंश जितने खर्च पर ही काम करती है। इसे देखते हुए भारत विश्व में सेंट्रल एशियन यूनिवर्सिटी स्थापित करना चाहता है, जिससे कि आईटी, प्रबंधन, दर्शन तथा भाषा आदि विषयों में विश्वस्तरीय शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सके।
7. भारत सेंट्रल एशियाई ई-नेटवर्क, जिसका केन्द्र भारत में स्थापित होने के लिए कार्य कर रहा है ताकि सभी पाँच मध्य एशियाई देशों टेली-एजुकेशन तथा टेली-मेडिसीन संपर्कता स्थापित की जा सके।
8. भारतीय कम्पनियां विनिर्माण क्षेत्र में अपनी क्षमता को प्रदर्शित कर सकती हैं और प्रतियोगी देशों पर विश्वस्तरीय संरचनाओं का निर्माण कर सकती हैं। मध्य एशियाई देश, विशेष रूप से कजाकिस्तान के पास लौह-अयस्क तथा कोयला के असीमित भंडार हैं, साथ ही विपुल मात्रा में सस्ती बिजली है। भारत अनेक मध्यम आकार के स्टील ग्रेलिंग मिल आदि की स्थापना विशिष्ट उत्पादों की अपनी जरूरत के अनुसार भी कर सकता है।
9. जहाँ तक भू-सम्पर्क की बात है, भारत में अंतर्राष्ट्रीय उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारे (International North India Transport Corridor) के लिए प्रयास पुन: शुरू कर दिए हैं। जरूरत है कि जल्द-से-जल्द इस गलियारे की छूटी हुई घड़ियों को जोड़ने पाटने के तरीकों पर सार्थक चर्चा हो।
10. इस क्षेत्र में व्यवहार्य बैंकिंग अधिसूचना का अभाव व्यापार एवं निवेश में एक बड़ी बाधा है। भारतीय बैंक यहाँ अनुकूल नीतिगत वातावरण देखकर अपनी उपस्थिति और कहाँ तक विस्तारित कर सकते हैं।
11. भारत और मध्य एशियाई देश वायु संपर्कता बढ़ाने के लिए मिल-जुलकर काम कर सकते हैं। भारत 'आउटवाइंड ट्रैवलर्स' के लिए सबसे बड़े बाजार में से है—2011 में लगभग 21 बिलियन यूएस डॉलर। अनेक देशों में भारत ने अपने पर्यटन केन्द्र खोले हैं। मध्य एशिया के देश छुटिट्यों का पसंदीदा गंतव्य बन सकते हैं, भारतीय फिल्म उद्योग के लिए भी जो सुंदर विदेशी लोकेशन की खोज में रहता है।
12. लोगों के बीच संपर्क गहरे व अबाध हो, यह एक जरूरी शर्त है। भारत एवं मध्य एशिया के युवाओं एवं भविष्य में नेतृत्वकर्ताओं के बीच आपसी आदान-प्रदान बढ़ाने की जरूरत है। विद्यार्थियों का आदान-प्रदान पहले से चल भी रहा है। भारत और मध्य एशिया, विद्वानों, अकादमिकों नागरिक समाज तथा युवा प्रतिनिधिमंडलों के विकसित मेल जोल एवं आने जाने को प्रोत्साहित कर सकते हैं, जिससे एक-दूसरे की संस्तुतियों को गहराई से समझने की अंतर्दृष्टि मिल सकेगी।

TOUCH 'n PASS

भारत को 'मध्य एशिया को जोड़ो' नीति वास्तव में यूरोशिया के साथ संबंधों को गहरा करते जाने की है। साथ ही जाँच पाकिस्तान तथा रूस के साथ पारम्परिक रिश्तों की पहचान भी इसमें शामिल है। भारत को उम्मीद है कि इसकी अनेक मंचों पर उपस्थिति एवं सदस्यता से इस क्षेत्र में सम्बन्धों के नवीकरण को मजबूती मिलेगी।

भारत की 'एक्ट ईस्ट नीति'
(India's 'Act East Policy')

2014 में मोदी सरकार ने भारत की 'लुक ईस्ट' नीति को उत्क्रमित कर 'एक्ट ईस्ट' बना दिया। 'लुक ईस्ट' (पूरब की ओर देखो) की शुरुआत 1992 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने की थी।

भारत-आशियान (Indian-Asean) सम्मेलन 2014 को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा, 'आर्थिक विकास, औद्योगीकरण एवं व्यापार का एक नया युग भारत में आरंभ हुआ है। भारत का 'लुक ईस्ट' नीति अब 'एक्ट ईस्ट' नीति बन गई है। उसी प्रकार तत्कालीन विदेश मंत्री स्वर्गीय सुषमा स्वराज ने अपने वियतनाम दौरे (2014) में भारतीय राजनयिकों से 'एक्ट ईस्ट' के लिए काम करने को कहा, केवल 'लुक ईस्ट' के लिए नहीं।

'एक्ट ईस्ट नीति' की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. भारत की एक्ट ईस्ट नीति एशिया-प्रशांत में निस्तारित पड़ोस पर केंद्रित है। पहले एक आर्थिक पद्धति के रूप में स्वीकार की गई नीति ने राजनीतिक, सामरिक तथा सांस्कृतिक आयाम ग्रहण कर लिए हैं जिसमें संवाद एवं सहयोग के लिए संस्थागत प्रक्रिया की स्थापना भी शामिल है।
2. भारत इंडोनेशिया, वियतनाम, मलेशिया, जापान, कोरिया गणराज्य, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों एशियान (ASEAN) के साथ अपने सम्बन्धों के ऊपर उठाकर, उत्प्रभित कर सामरिक साझेदारी के स्तर पर ले गया। भारत ने एशिया प्रशांत क्षेत्र के देशों के साथ नजदीकी सम्बन्ध बनाए हैं।
3. पुन: आसियान रीजनल फोरम (ARF) तथा ईस्ट एशिया सम्मिट (EAS) के अलावा ये कुछ क्षेत्रीय मंचों पर अपनी गहरी सक्रियता दिखाई है, जैसे—नि:संदेह (Bay of Bengal Initiative for Multi Sectoral Technical and Economic Cooperation), एशिया को-ऑपरेशन डायलॉग (ACD), मेकांग गंगा को-ऑपरेशन (MGC) तथा इंडियन ओसियन रिम एसोसिएशन (IORA)।
4. 'एक्ट ईस्ट' नीति ने हमारी घरेलू कार्यसूची में भारत-आशियान सहयोग को प्राथमिकता दी है। खासकर अधिरचना, निर्माण, व्यापार, कौशल, नगरीय नवीकरण, स्मार्ट सिटीज, मेक इन इंडिया तथा अन्य नवीन योजनाओं के संदर्भ में। संपर्कता परियोजनाएं, अंतरिक्ष सहयोग, एस. एंड टी. तथा नागरिक संपर्क क्षेत्रीय एकता एवं स्मृति के लिए 'स्प्रिंग बोर्ड' का कार्य कर सकता है।
5. 'एक्ट ईस्ट' नीति का उद्देश्य आर्थिक सहयोग, सांस्कृतिक सम्बन्ध के साथ ही एशिया प्रशांत क्षेत्र के देशों के साथ सामरिक सम्बन्ध बढ़ाना है। इसके लिए द्विपक्षीय, क्षेत्रीय तथा बहुपार्श्विक स्तरों पर सतत् आबंधों की जरूरत है और इसका उपयोग अपने उत्तर-पूर्व के राज्यों, जैसे—अरुणाचल प्रदेश का अन्य पड़ोसी देशों के साथ संपर्क बढ़ाना हैं।
6. हमारी 'एक्ट ईस्ट' नीति में उत्तर-पूर्व को प्राथमिकता प्राप्त है। यह नीति उत्तर-पूर्वी भारत, अरुणाचल प्रदेश का आसियान क्षेत्र के साथ एक अंतरापृष्ठ निर्मित करती है।
7. द्विपक्षीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर अनेक योजनाओं में उत्तर-पूर्व की आसियान देशों के साथ युद्ध सम्पर्कता शामिल है जो व्यापार, संस्कृति, नागरिक संपर्क तथा भौतिक अधिसंरचना (सड़क, हवाई अड्डा, दूरसंचार, बिजली आदि) से संभव हो सकेगा।
8. अगर सभ्यता के दृष्टिकोण से विचार करें तो बौद्ध तथा हिन्दू सम्बन्धों द्वारा लोगों के बीच नये संपर्क और संपर्कता बढ़ाने के लिए मजबूत किया जा रहा है।
9. आसियान व उत्तर-पूर्व को जोड़ने के लिए संपर्कता के मामले में सुसंगत रणनीति विकसित करने के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। परिवहन अधिरचना, वायुयान संपर्कता में वृद्धि , अकादमिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के बीच संपर्क बढ़ाने के उपाय किए जा रहे हैं।

TOUCH 'n' PASS

10. भारत की आसियान के साथ आर्थिक संलग्नता को बढ़ाया गया है। क्षेत्रीय एकता तथा परियोजनाओं को लागू करने की प्राथमिकता की गई है। आसियान-भारत के बीच एग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विस एंड इनवेस्टमेंट भारत तथा सात आसियान देशों के बीच 1 जुलाई, 2015 से लागू है।
11. सामरिक मुद्दों पर भारत ने सुरक्षा हितों के लिए साझेदार बनाए हैं-द्विपक्षीय एवं बहुपक्षी फॉर्मेट में। आतंकवाद विरोध, शांति एवं स्थिरता तथा अंतर्राष्ट्रीय परम्पराओं एवं नियमों पर आधारित समुद्री सुरक्षा के संवर्धन के लिए नजदीकी सहयोग स्थापित किया जा रहा है।

प्र.4. भारत में सकारात्मक कार्यवाही का जाति, वर्ग और जेंडर के रूप में वर्णन कीजिए।
Describe affirmative action in India in terms of caste, class and gender.

उत्तर

भारत में सकारात्मक कार्यवाही जाति, वर्ग और जेंडर के रूप में
(Affirmative Action in India as Caste, Class and Gender)

भारत अपने लोकतांत्रिक इतिहास में मौलिक रूप से तीन मूल्यों को समाहित करता है—स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व इसके माध्यम से समावेशी लोकतंत्र को प्राप्त करने का लक्ष्य सामने रखता है। यह समावेश की अवधारणा सभी स्तरों पर काम करती है। यदि समाज के कई वर्ग सामाजिक भेदभाव का शिकार हैं तो वहाँ आर्थिक समावेश नहीं हो सकता। इसी प्रकार समावेशी लोकतंत्र यह मानकर चलता है कि विभिन्न सामाजिक और आर्थिक समूह अपने मत एवं रीति-रिवाजों का निर्भय होकर पालन करने के लिए स्वतंत्र हैं। इन सबको देखते हुए लोकतंत्र में ऐसी संरचना की आवश्यकता होती है जिसने स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को संस्थागत रूप मिला है। यहाँ यह स्पष्ट है कि समावेश राज्य और समाज के वंचित वर्ग के सशक्तीकरण और उनके संबंधों को गैर-श्रेणीबद्ध और समान रूप से पुनर्गठित करने के उद्देश्य से शक्ति संरचना में मौलिक परिवर्तन पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, लोकतंत्र के व्यावहारिक रूप को देखने पर लगता है कि इसकी सफलता के लिए समानता भी आवश्यक माँग है लोकतंत्र की माँग है कि व्यक्ति में स्वस्थ समानता व्याप्त हो। समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि पूर्ण समानता हो, इसका आशय यह है कि सामाजिक स्तर पर शिक्षा और ज्ञान की समता, एक व्यक्ति समूह द्वारा दूसरे व्यक्ति समूहों पर स्थायी रूप से अधिपत्य जमाए रखने का कारण न बने। लोकतंत्र से समानता के विचार को अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसी आधार पर राज्य भी विभेदीकरण तथा मातहत समूह की सुरक्षा के प्रति खास प्रकार का नजरिया भी रखता है। इन्हीं आंशिक चर्चा के मध्य प्रस्तुत लेख में सकारात्मक कार्यवाही (Affirmative Action) का विश्लेषण तीन आधारों पर करते हैं। प्रथम सकारात्मक कार्यवाही का सैद्धांतिक विमर्श क्या है, और भारत में इसे किस आधार पर अपनाया गया है। दूसरा, प्रस्तुत अवधारणा में भारतीय संविधान की किस प्रकार की भूमिका है। तीसरा वर्तमान परिस्थितियों में सकारात्मक कार्यवाही ने किस प्रकार स्वयं को राजनीति का कारक बना लिया है। साथ ही क्या सकारात्मक कार्यवाही भारतीय राजनीति में नकारात्मक पहल की परिचायक बन गई है? इन सभी प्रश्नों के विश्लेषण के माध्यम से सकारात्मक कार्यवाही के विभिन्न आयामों की चर्चा की जाएगी।

सकारात्मक कार्यवाही : सैद्धांतिक बहस
(Affirmative Action : Theoretical Debates)

भारत में सकारात्मक कार्यवाही का उद्देश्य है—समाज के विभिन्न समूहों के बीच संरचनात्मक असमानता को दूरा किया जाए। (आचार्य : 2011) भारतीय संविधान अपनी प्रस्तावना में "सामाजिक न्याय" के विचार को अंकित करता है और इसे सकारात्मक कार्यवाही तथा आरक्षण के माध्यम से ही पूरा करने का लक्ष्य रखता है। जिसमें केवल अवसर का द्वार खोलना या समतामूलक समाज का उपदेश देना ही शामिल नहीं है, बल्कि समाज में उत्पन्न खाईयों को समाप्त करना, साझे समाज की जिम्मेदारी भी है। जैसा कि अमेरिका के राष्ट्रपति बी० जॉनसन का मानना है कि सकारात्मक कार्यवाही या समतामूलक समाज के लिए अवसरों का दरवाजा खोल देना काफी नहीं है। बल्कि अवसर के तर्क को ज्यादा मजबूती से कायम करने की आवश्यकता है। (आचार्य : 2010)

इस समस्त चर्चा का सैद्धांतिक मापांक पर विश्लेषण करने की आवश्यकता है। जिसमें इस तथ्य का विश्लेषण आवश्यक रूप से शामिल होगा कि समानता और न्याय का संबंध साध्य और साधन को जोड़ने वाली कड़ी स्वतंत्रता होती है। क्योंकि ड्वोर्किन का मानना है कि स्वतंत्रता एक प्रकार से समानता का ही पक्ष है। (Farrelly : 2004) लेकिन इसके दूसरे पक्ष में अमर्त्य सेन अपनी पुस्तक द आइडिया ऑफ जस्टिस में एक मूल सवाल उठाते हैं—"किस बात की समानता हो?" लेकिन आज भारतीय राजनीति में आरक्षण के माध्यम से स्थापित सामाजिक न्याय को एक राजनीतिक दबाव के रूप में पेश किया जा रहा है। वहाँ यह प्रश्न मूल

रूप से पूछा जाना चाहिए, जैसा कि सेन इस प्रश्न पर कहते हैं कि यह बात भी महत्त्वपूर्ण नहीं है कि हम किस बात की समानता का आग्रह कर रहे हैं, बल्कि इसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि किसी परिवेश में समानता देखने की माँग का संबंध आदर्शमूलक समदर्शिता के तकाजे और उससे जुड़ी वस्तुनिष्ठता के दावों से है। लेकिन यही इस प्रश्न का उत्तर हो, यह भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि समदर्शिता और वस्तुनिष्ठता के औचित्य को लेकर समीक्षा भी होनी चाहिए। मूलरूप से यही समीक्षा इस बात को तय कर देगी कि न्याय के सभी प्रमुख सिद्धांत किसी न किसी स्तर पर सभी मनुष्यों को 'समान' मानने का आग्रह क्यों करते हैं। (Sen : 2010)

यहाँ रॉल्स द्वारा प्रस्तुत निष्पक्षता (fairness) की अवधारणा की चर्चा आवश्यक हो जाती है। जहाँ रॉल्स न्याय के विचार को सामाजिक वस्तुओं के विचार से जोड़ते हैं। (किमलिका : 2000) इसी क्रम में रॉल्स के न्याय के सिद्धान्त में चयन एक प्रमुख सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। (रॉल्स : 2000) किलमिला ने निष्पक्ष अवसर की समानता को लेकर एक महत्त्वपूर्ण सवाल भी उठाया है, जिसमें वह मानते हैं कि निष्पक्ष रूप से अवसर की समानता सुनिश्चित करने के लिए किस चीज की जरूरत है। कुछ लोगों का यह विश्वास है कि शिक्षा और नौकरियों में कानूनी रूप से भेदभाव न होना पर्याप्त है। दूसरे लोग तर्क देते हैं कि आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से वंचित समूहों के सदस्यों को समान अवसर देने के लिए कुछ खास उपायों की जरूरत है। ये मानते हैं कि इन समूहों के सदस्यों को आर्थिक रूप से सफल होने के लिए जरूरी योग्यताओं का विकास करने का अवसर देना चाहिए। इसके लिए सकारात्मक कार्यवाही कार्यक्रम पर जोर देते हैं। भारत में संविधान सभा में इसी प्रकार की बहसें महत्त्वपूर्ण थी। जहाँ कुछ खास समूहों के लोगों को समान वितरण से ज्यादा तरजीह दी गई। (किलमिका : 2000)।

यह समान अवसर का विचार दो लक्ष्यों को पाने का प्रयास करता है। एक ओर, यह सभी व्यक्तियों की भेदभाव से सुरक्षा करता है, हर किसी को अपना लक्ष्य हासिल करने का मौका देता है। दूसरी ओर, यह सुनिश्चित करता है कि मनुष्यों की क्षमताओं के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक स्थितियाँ औपचारिक रूप से हर किसी को मिलें। (आचार्य : 2010) हालाँकि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का आशय है कि सभी लोगों की स्थिति को बराबर किया जाए। सिर्फ सामाजिक वस्तुओं और अवसरों तक हर व्यक्ति की औपचारिक पहुँच को सुनिश्चित करने से यह लक्ष्य प्राप्त नहीं होगा, बल्कि इसके लिए वंचित लोगों की दक्षता को बढ़ाना भी होगा।

इस आधार पर रॉल्स के न्याय के सिद्धान्त का प्रयोग भी दो नियमों पर चलता है। जिसमें प्रथम, प्रत्येक व्यक्ति का समान मौलिक स्वतंत्रता की एक पर्याप्त रूप से सुस्पष्ट व्यवस्था पर समान अधिकार है और यह व्यवस्था सभी व्यक्तियों के लिए सुलभ हो, दूसरी सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ दो शर्तों के पूरा होने पर ही स्वीकार्य हो सकती हैं। एक तो इन विषमताओं का नाता सभी को समान अवसरों की व्यवस्था के अंतर्गत सुलभ किसी पद/पदाधिकारियों से हो, समाज में पीड़ित व्यक्तियों का अधिकतम हित साधन हो। (रॉल्स : 2000) यदि रॉल्स के इस सैद्धांतिक विमर्श के लैंस से भारत में हाल ही में हुए आरक्षण के दो आंदोलन-पाटीदार और जाट मामलों को देखा जाए तो यह बात स्पष्ट होगी कि आज सकारात्मक कार्यवाही एक नकारात्मक पहल में विद्यमान है। इन आधारों पर एक बार पुन: यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि समानता को प्राप्त करने के लिए सकारात्मक कार्यवाही की भूमिका किस स्रोत तथा किस लक्ष्य तक तय की जानी चाहिए। इस सवाल पर मारी टाइजेन (Mari Teigen) का यह विश्लेषण आवश्यक माना जा सकता है कि समानता के व्यवहार के साथ-साथ समान व्यवहार का अधिकार भी हो क्योंकि सकारात्मक कार्यवाही के माध्यम से शक्ति और संसाधन के वितरण को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। (Teigen : 200)

उपयोगितावादियों में व्यक्तिगत हितों और इच्छाओं को इकट्ठा करने का एक मानक है। व्यक्तियों की अलग-अलग ऐसी वरीयता होती है, जिनमें आपस में टकराव की संभावना होती है। इसलिए हमें एक ऐसे मानक की जरूरत होती है जो वरीयताओं के बीच संतुलन के बारे में बता सके। अर्थात् यह मानक यह बता सके कि उनके लिए किस प्रकार की वरीयता ज्यादा आवयक होगी, जिनके कल्याण दांव पर लगे हुए हैं। यद्यपि उपयोगितावाद समतावादी (egalitarian) सिद्धांत को मानता है। सभी लोगों को समान महत्त्व देता है। सभी को समान मानकर चलना अपने आप में विवादास्पद अवधारणा की तरफ बढ़ता है। भारत में इस प्रकार के विचार को न तो सामाजिक न्याय के संदर्भ में स्वीकार किया गया न ही उसके व्यावहारिक पक्ष आरक्षण की अवधारणा में स्वीकार किया गया। इसका दूसरा कारण यह भी है कि उपयोगितावाद कई ऐसे भी तर्क वरीयता के नाम पर प्रस्तुत करता है कि असमानता को सही ठहराने लगते हैं जिसमें अप्रिय लोगों को स्वतंत्रता से वंचित रखा जाता है। (किलमिका : 2000)

इन समस्त चर्चाओं से एक प्रश्न और महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जिसमें यह पूछा जा सकता है कि किन चीजों की समानता होनी चाहिए? हालाँकि इस सवाल का भी कोई अंतिम उत्तर नहीं दिया जा सकता। लेकिन यह भी प्रथम सवाल "किस बात की समानता" के समकक्ष ही भारतीय राजनीति में प्रासंगिक है। इस प्रश्न पर अशोक आचार्य ने तीन दृष्टिकोण रखे हैं। जो कल्याण,

संसाधन तथा सामर्थ्य के रूप में अंकित किए जाते हैं। इनके समानता के संदर्भ में अलग-अलग दावे भी हैं। कल्याण की समानता का दावा मूलरूप से उपयोगितावादियों का है, जो वितरण की परियोजना का मुख्य लक्षण है और समाज कल्याण के समान रूप से वितरण में विश्वास करता है। वह इस बात की ज्यादा चिंता नहीं करता है कि व्यक्ति को कितने संसाधन मिलते हैं। बल्कि ये संसाधन प्रत्येक व्यक्ति के लिए दूसरे व्यक्तियों जितनी संतुष्टि या खुशी देते हैं या नहीं। इनके गुण यह है कि संसाधनों के वितरण में भले ही असमानता हो, लेकिन हर व्यक्ति का समान रूप से कल्याण होना चाहिए। दूसरी तरफ, संसाधनों की समानता का मूल कारक बीमा योजना तथा महत्वाकांक्षी-संवेदनशील नीलामी (amibition sensitive auction) के विचारों से जुड़े हुए हैं। ड्वोर्किन के विश्लेषण पर आधारित है जो इस बात पर जोर देती है कि असमान परिस्थितियों को ठीक करने की जिम्मेदारी राज्य पर है, जो अमीरों पर टैक्स लगाकर राज्य के वंचित लोगों का कल्याण करती है। भारतीय राज्य में इस योजना का लक्षण पूर्णत: दिखता है। (आचार्य : 2011)

अन्तिम सामर्थ्य (capability) की समानता, यह मूलत: अमर्त्य सेन द्वारा प्रस्तुत की गई है। जो उस वास्तविक आजादी पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, जो लोग भोग करते हैं। उदाहरण के लिए पढ़ने में समर्थ होना, आत्मसम्मान रखना, राजनीतिक रूप से सक्रिय रहना आदि मूल रूप से शामिल हैं। (आचार्य : 2011) समानता या सकारात्मक कार्यवाही को वितरित करने में यह ध्यान रखना होगा कि हर जगह की स्थिति समान नहीं होती जैसे दिल्ली की दलित महिलाओं और पूर्वांचल की दलित महिला या राजस्थान की विधवाओं की, इनके रोजमर्रा के जीवन में अन्तर भी शामिल होता है। इसलिए आवश्यक यह है कि जब नीतियों का निर्माण हो तो वह ज्यादा-से-ज्यादा जानकारियों के माध्यम से ही पूर्ण हो।

सकारात्मक कार्यवाही और भारतीय संविधान (Affirmative Action and Indian Constitution)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना तथा चौथे भाग में सकारात्मक कार्यवाही का विवरण है। संविधान निर्माताओं ने समाज के निर्बल लोगों को एक साथ लेकर भारतीय लोकतंत्र का निर्माण किया है। संविधान के अनुच्छेद 15(4) जो प्रथम संविधान संशोधन द्वारा अपनाया गया और सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के वर्गों के लिए और अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए विशेष उपबंध बनाया गया। अनुच्छेद 16(4) जो पिछड़े वर्गों के पक्ष में आरक्षण करने की अनुमति देता है। अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि, अनुच्छेद 330 राजनीतिक प्रतिनिधित्व का समर्थन करता है; जो लोक सभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण को शामिल करता है। इन समस्त संवैधानिक प्रावधानों में यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान सकारात्मक कार्यवाही को सामाजिक, राजनीतिक आधारों पर परिभाषित करता है। (शर्मा : 2010)

अशोक आचार्य इसे तीन आधारों पर परिभाषित करते हैं, जो क्रमश: आरक्षण की नीति, विशेष सहयोग तथा सुरक्षा की नीति को शामिल करता है। आरक्षण की नीति का अभिप्राय राजनीतिक तथा सरकारी नौकरी तथा शिक्षण संस्थानों के रूप में शामिल है। इसके दो पक्ष हैं—पहला, विधायिका में सीटों के आरक्षण के द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व अधिकार और दूसरा सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थानों में कोटा या सीटों का आरक्षण। यह पक्ष इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि समाज के निम्न वर्ग को आगे आने का मौका भी मिला है। (आचार्य : 2011)

दूसरा पक्ष, विशेष सहयोग जिसमें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं जैसे समूहों के लिए विशेष प्रावधान किया जाता है। इसमें स्कॉलरशिप, जमीन, घर का आवंटन, स्वास्थ्य सेवा, कानूनी मदद आदि शामिल हैं। इसी पक्ष में गरीबी दूर करने तथा ग्रामीण विकास के कार्यक्रम आदि में भी इन्हीं तबकों को शामिल किया गया है। सुरक्षा की दृष्टि से बंधुआ मजदूरी आदि सामाजिक कुरीतियों पर रोक भी लगाई जाए तथा दमन करने से सुरक्षा भी प्रदान की जाए। इन तीनों कारकों में राज्य की नैतिक वचनबद्धता भी शामिल है। (आचार्य : 2010)

भारत के संविधान निर्माण के दौरान होने वाली बातचीत में यह बात साफ तौर पर उभरकर सामने आई है कि निजी जातियों के लोगों के लिए समान नागरिकता सुनिश्चित की जानी चाहिए, जिससे इनकी ऐतिहासिक वंचना को दूर किया जा सके। सकारात्मक कार्यवाही के भारत के अनुभव की मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ समूहों की पिछड़ी पहचानों को मान्यता देने पर ज्यादा बल दिया जाता है। संविधान लिखे जाने के बाद से ही भरपाई न्याय (compensatory justice) की अवधारणा ने भारत में सकारात्मक कार्यवाही के सिद्धांत और व्यवहार को समझने के लिए नैतिक आधार उपलब्ध कराया है। हालाँकि न्याय की व्याख्या तथा मानकीय विमर्श द्वारा समय के साथ धीरे-धीरे न्याय की अवधारणा का विकास हुआ है। यहाँ तक कि इसके पक्ष में दिए जाने वाले

तर्कों का भी विकास हुआ है। पहले गैर-भेदभाव का तर्क फिर समान मौके का तर्क, उसके बाद समान परिणाम के तर्क दिए जाने लगे। (आचार्य : 2010)

इन आधारों का राज्य की भूमिका पर भी असर पड़ता है। जिसमें राज्य एक अभिभावक की भूमिका से होते हुए जिम्मेदारी का निर्वहन तक करने लगता है। जैसा कि गोपाल गुरु का मानना है। राज्य एक हस्तक्षेपी भूमिका में आता है जो न्याय के मापांक को निर्धारित करता है। दूसरा न्याय की अवधारणा की रक्षा करता है। हालांकि सकारात्मक कार्यवाही राज्य उन्मुखी नीति है। इस आधार पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण भी रहता है। दायित्व और उत्तरदायित्व दोनों की भूमिका में भारतीय राज्य नजर आने लगता है। (गुरु : 2010) जिसमें दो तरह के संतुलन को भी ज्यादा सुविधा के साथ समझा गया है। एक तरफ कानून में समानता तथा तथ्य में समानता। (Deshpande : 2013)

सकारात्मक कार्यवाही और उसकी राजनीति
(Affirmative Action and its Politics)

स्वतंत्रता संघर्ष तथा संघर्ष से उत्पन्न स्वतंत्र भारत का संविधान और वर्तमान में वैश्वीकरण का दौर एक लम्बे समय की गवाही अपने आप ही देते हैं। इस बीच कई प्रकार के सामाजिक परिवर्तन का दौर भी चला है। जो समाज पदसोपानीयता का बड़ा उदाहरण था, जिस पदसोपानीयता का स्रोत जाति-व्यवस्था तथा पितृसत्तात्मक समाज से आता है। उस देश के स्वतंत्र संविधान ने अधीनस्थ समूहों तथा महिलाओं की असमानता को समानता में परिवर्तित करने का दावा सामाजिक न्याय के माध्यम से पेश किया है। यह सामाजिक न्याय की परिभाषा में जाति, भूभागीय अलगाव (आदिवासी), लिंग तथा अब धर्म के नाम पर अन्याय की मीमांसा करता है। इसी आधार पर विभेदीकरण को खारिज करता है। (Guru : 2010) साथ ही राजनीतिक रूप से संगठित होने का भी कार्य किया गया। यह प्रक्रिया आजादी के तीस साल बाद ज्यादा प्रभावित हो पाई है। धीरूभाई शेठ आरक्षण की इसी राजनीति के प्रभाव तथा परिणामों पर विचार करते हैं, जिसमें वह यह मानते हैं कि 70 के दशक के मध्य राष्ट्रीय राजनीति पर द्विज दबदबे को चुनौती मिलना प्रारंभ हुआ। इसका श्रेय राज्य की उन सामाजिक नीतियों को जाता है जिसे आरक्षण के नाम से जानते हैं। यहाँ यह भी बात महत्त्वपूर्ण है कि 70 के दशक में राज्यों में आरक्षण जैसी कोई चीज न होने के बावजूद प्रत्येक निचली जातियों में एक प्रभावी तबका उभर रहा था। जिसने राज्य की संरचनाओं में प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया था। यही वह कारक भी बना जिससे निचली जातियों में बेहद मुखर राजनीति का नेतृत्व पैदा हो गया। (शेठ : 2002)

हालाँकि जातियों का राजनीतिकरण अस्सी के दशक से ही प्रारम्भ हो गया था। दूसरी तरफ, मंडल कमीशन ने सभी राज्यों, केंद्रशासित प्रदेशों और केन्द्र सरकारों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए नौकरियों और शिक्षा संस्थानों में आरक्षण की सिफारिश की। (शेठ : 2002) मध्यवर्ग ने इसका विरोध भी किया। लेकिन जातिगत गोलबंदी अपने आकार के माध्यम से इस विरोध से ऊपर उठ चुकी थी। ये अलग मामला है कि इस प्रकार की पहल में जो राजनीतिक प्रतिनिधित्व निकलकर आया उसमें कई प्रकार के अंतर्विरोध भी शामिल हैं, जिसे योगेंद्र यादव मिथ्याभास की संकल्पना देते हैं। जहाँ वह इस बात को स्वीकार करते हैं कि अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) में यादव व कुर्मी का ही प्रतिनिधित्व बढ़ रहा है, लेकिन अन्य जातियों को आगे आने का मौका नहीं मिल रहा है। (यादव : 2010)

यद्यपि राष्ट्रीय राजनीति में "राजनीतिक मंडलीकरण" ने एक बड़ा परिवर्तन तो किया ही—जिसका पहला असर तो कांग्रेसी प्रभुत्व के अंत में दिखाई देता है। इसने सवर्णों और अंग्रेजी-शिक्षित प्रभु वर्ग की चौधराहट को भी खारिज किया। जिसमें सवर्णों को इस तथ्य का अहसास भी हो गया कि इन जातियों पर ऊपर से जोर नहीं डाल सकते हैं, बल्कि जातियाँ अपनी संख्या को शक्ति में परिवर्तित कर राजनीतिक सत्ता के लिए संघर्ष करने लगीं। (कोठारी : 2004) जहाँ यह भी स्पष्टत: शामिल हो गया कि राजनीतिक दलों को राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए अन्य पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों या जनजातियों के सामाजिक-राजनीतिक संगठनों या इनके द्वारा गठित क्षेत्रीय जाति दलों के साथ सीधी बातचीत करना अनिवार्य हो गया।

❑

YOUTH PASS

UNIT-VII

राष्ट्र निर्माण की चुनौतियाँ
Challenges of Nation Building

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राष्ट्र निर्माण की चुनौतियाँ क्या हैं?
What are the challenges of nation building?

उत्तर भारत अपने आकार और विविधता में किसी महादेश के बराबर था। यहाँ विभिन्न भाषा, संस्कृति और धर्मों के अनुयायी रहते थे, इन सभी को एकजुट करने की चुनौती थी।

प्र.2. राष्ट्र निर्माण का क्या अर्थ है?
What is the meaning of nation building?

उत्तर राष्ट्र-निर्माण राज्य की शक्ति का उपयोग करके राष्ट्रीय पहचान का निर्माण या संरचना करना है। राष्ट्र निर्माता एक राज्य के वे सदस्य होते हैं जो सरकारी कार्यक्रमों के माध्यम से राष्ट्रीय समुदाय को विकसित करने की पहल करते हैं, जिसमें सैन्य भर्ती और राष्ट्रीय सामग्री सामूहिक स्कूली शिक्षा शामिल हैं।

प्र.3. राष्ट्र निर्माण के तत्त्वों को लिखिए।
Write the elements of nation building.

उत्तर राष्ट्र निर्माण के लिए एक नस्ल, जाति, समान भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज, धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तत्त्वों की भी आवश्कता होती है।

प्र.4. राइट विंग अतिवाद क्या है?
What is right wing extremism?

उत्तर यह कट्टरता का वह रूप है, जिसे प्राय: हिंसक माध्यमों से नस्लीय, जातीय या छद्म राष्ट्रीय पहचान की रक्षा करने की विशेषता के रूप में परिभाषित किया जाता है और यह राज्य के अल्पसंख्यकों, प्रवासियों और वामपंथी राजनीतिक समूहों के प्रति कट्टर शत्रुता से भी जुड़ा है।

प्र.5. लेफ्ट विंग अतिवाद को परिभाषित कीजिए।
Define left wing extremism.

उत्तर 'कट्टरता' का यह स्वरूप मुख्य रूप से पूँजीवादी विरोधी माँगों पर ध्यान केंद्रित करता है और सामाजिक विषमताओं के लिये उत्तरदायी राजनीतिक प्रणाली में परिवर्तन की बात करता है, और यह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हिंसक साधनों का भी समर्थन करता है। इसमें अराजकतावादी, माओवादी और मार्क्सवादी-लेनिनवादी समूह शामिल हैं जो अपने उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिये हिंसा का उपयोग करते हैं।

प्र.6. राजनीतिक धार्मिक अतिवाद को समझाइए।
Explain political religious extremism.

उत्तर 'कट्टरता' का यह स्वरूप धर्म की राजनीतिक व्याख्या और हिंसक माध्यमों से धार्मिक पहचान से जुड़ा हुआ है, क्योंकि इससे प्रभावित लोग यह मानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष, विदेश नीति और सामाजिक बहस आदि के कारण उनकी धार्मिक पहचान खतरे में है।

प्र.7. जातीयता से क्या अभिप्राय है?
What is meant by ethnicity?

उत्तर एक जातीय समूह या जातीयता, उन लोगों की एक श्रेणी है जो समान वंश, भाषा, इतिहास, समाज, संस्कृति या राष्ट्र जैसे समानताओं के आधार पर एक दूसरे के साथ पहचान करते हैं। नस्ल आमतौर पर एक विरासत की स्थिति है जिस पर समाज रहता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. जातीयता की विशेषताएँ क्या हैं?
What are the features of ethnicity?

उत्तर जातीयता अक्सर, साझा सांस्कृतिक, भाषाई, व्यवहार-जन्य, या धार्मिक लक्षणों का संकेत देती है। उदाहरण के लिए, खुद को यहूदी या अरब कहलाने के लिए तुरंत भाषाई, धार्मिक, सांस्कृतिक और नस्लीय गुणों के पुट को उत्पन्न करना होगा जिसे प्रत्येक जातीय श्रेणी में समान माना जाता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राष्ट्रीयता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the characteristics of nationalism.

उत्तर

राष्ट्रीयता की विशेषताएँ
(Characteristics of Nationalism)

राष्ट्रीयता की परिभाषा तथा उपरोक्त विवरण में इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। राष्ट्रीयता की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैं—

1. राष्ट्रीयता में ज्ञानात्मक की अपेक्षा भावात्मक एवं आचरण का प्रत्यय अधिक है।
2. किसी राष्ट्र के नागरिकों की भावनायें राष्ट्र पर केन्द्रित होनी चाहिएं, इसे भावात्मक एकीकरण भी कहते हैं।
3. राष्ट्रीय भावनात्मक एकीकरण से तात्पर्य यह है कि हम सभी अपने को पहले भारतीय समझें, अन्य कुछ बाद में।
4. अपनी समस्याओं की अपेक्षा राष्ट्रीय समस्याओं को प्राथमिकता दी जाए।
5. राष्ट्रीयता की भावना में प्रजाति (Race), भाषा, धर्म, प्रान्तीयता संस्कृति तथा परम्पराओं का स्थान गौण (Secondary) होता है। राष्ट्रीयता की भावना इन सबसे ऊपर होती है।
6. राष्ट्रीयता देश भक्ति का व्यापक स्वरूप है और देश प्रेम से भिन्न है। देश-प्रेम की भावना मातृभूमि तक ही सीमित रहती है।
7. राष्ट्रीयता में राष्ट्र की नीतियों तथा मानकों का अनुपालन करना होता है और उनका प्रचार एवं प्रसार भी करना है।
8. राष्ट्रीयता में नागरिक अपने को राष्ट्र का एक अभिन्न अंग मानता है और राष्ट्र की गतिविधियों के प्रति सजग तथा जागरूक रहता है।
9. राष्ट्र की छोटी बड़ी सामाजिक संस्थायें अपने संकुचित विचारों से ऊपर उठकर राष्ट्र के हित एवं विकास में सहयोग करती है।
10. राष्ट्रीयता की भावनाओं के विकास में शिक्षा संस्थाओं की अहम् भूमिका है। सामाजिक विषयों के अध्यापन का प्रमुख लक्ष्य राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना है।
11. राष्ट्रीयता की भावना में व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों के प्रति निष्ठावान होता है और उन्हें तल्लीनता से पूरा करने का प्रयास करता है राष्ट्रीयता से कर्त्तव्य परायणता का भाव जाग्रत होता है।
12. राष्ट्र की समस्याओं में सक्रिय भागेदारी का निर्वाह करता है।

प्र.2. राष्ट्रीयता के क्या आधार हैं?
What are the bases of nationalism?

उत्तर

राष्ट्रीयता के आधार
(Bases of Nationalism)

लगभग सभी विद्वानों के विचारानुकूल भारत में विभिन्नताएँ होते हुए भी यहाँ एक आधारभूत एकता है। **हरबार्ट रिजले** के कथानुसार 'भारत में भौगोलिक सामाजिक, भाषा, धर्म आदि की विभिन्नताएँ होते हुए भी यहाँ जीवन की एकता है।' इस एकता के कई तत्व हैं, जो राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायक होते हैं।

1. **प्रजातीय एकता** (Racial Unity)—राष्ट्रीय भावना के विकास में प्रजातीय एकता विशेष रूप से सहायक होती है। एक प्रजाति के व्यक्तियों में परस्पर प्रेम और एकता की भावना होती है। उनमें रुधिर का सम्बन्ध होता है। ये विशेषताएँ उन्हें एकता के सूत्र में बाँधती हैं।

TOUCH 'n' PASS

2. **भाषा की एकता** (Linguistic Unity)—राष्ट्रीय भावना के विकास की दृष्टि से भाषा की एकता भी एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। एक ही भाषा के बोलने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के अत्यन्त निकट होते हैं। यहाँ भाषा की एकता न होने पर भी राष्ट्रीय भावना पर्याप्त मात्रा में हैं।
3. **भौगोलिक एकता** (Geographical Situation)—राष्ट्रीयता की भावना के विकास में भौगोलिक स्थिति का भी विशेष महत्त्व है। जब किसी देश के निवासी एक ऐसे देश में रहते हैं, जो प्राकृतिक सीमाओं के कारण दूसरे देशों से पृथक होते हैं तो उनमें परस्पर प्रेम की भावना रहती है और यही प्रेम की भावना उन्हें राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधे रहती है।
4. **धार्मिक एकता** (Religious Unity)—राष्ट्रीय भावना के विकास में अन्य तत्वों के समान धार्मिक एकता भी एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। धार्मिक विश्वास एवं एकता निवासियों को एकता के सूत्र में बाँधती है। मुस्लिम देश इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि धार्मिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय एकता पनप ही नहीं सकती। भारत विभिन्न धर्मों के अनुयायियों का देश है। फिर भी यहाँ के नागरिकों में राष्ट्रीय भावना प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं।
5. **सांस्कृतिक एकता** (Cultural Unity)—देश के सांस्कृतिक तत्व जैसे आचार-विचार, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, परम्परा, खान-पान, विश्वास, आदर्श भी राष्ट्रीय एकता की स्थापना में सहायक होते हैं। ये तत्व नागरिकों की परस्पर मत-भेद, लड़ाई-झगड़ा, द्वेष, धार्मिक कट्टरता, आदि से रक्षा करते है और उनके अन्दर अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय भावना का विकास करते हैं।

प्र.3. भारत में कट्टरता को समझाइए एवं इससे निपटने के उपायों का उल्लेख कीजिए।
Explain bigotry in India and mention the measures to deal with it.

उत्तर

भारत में कट्टरता
(Bigotry in India)

- संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी एक हालिया रिपोर्ट में केरल और कर्नाटक में इस्लामिक स्टेट (IS) और अलकायदा जैसे आतंकी संगठनों के सदस्यों की उपस्थिति को लेकर चिंता जाहिर की गई थी।
- रिपोर्ट में कहा गया था कि इस्लामिक स्टेट (IS) के भारतीय सहयोगी (हिंद विलायाह) में 180 से 200 के बीच सदस्य हैं। हालाँकि सितंबर माह में गृह राज्य मंत्री जी, किशन रेड्डी ने संसद को सूचित किया था कि संयुक्त राष्ट्र जारी आँकड़े तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है।
- जी. किशन रेड्डी ने लोकसभा को सूचित किया था कि राष्ट्रीय जाँच एजेंसी (NIA) ने तेलंगाना, केरल, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में इस्लामिक स्टेट (IS) की उपस्थिति से संबंधित 17 मामले दर्ज किये गए हैं और इन मामलों से संबंधित 122 आरोपी व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया है।
- साथ ही सरकार के निरंतर हस्तक्षेप के बावजूद भारत के कई राज्यों में लेफ्ट विंग अतिवाद की समस्या को अब तक समाप्त नहीं किया जा सका है। वामपंथी अतिवाद से प्रभावित जिलों में लगातार पुलिस प्रशासन द्वारा गिरफ्तारियाँ की जा रही है, इसके बावजूद भारत में नक्सलवाद की समस्या प्रशासन के लिये बड़ी चुनौती बनी हुई है।
- वहीं दूसरी ओर लगातार बढ़ती मॉब लिंचिंग की घटनाएँ, लोगों के मन में धर्म विशेष के प्रति पैदा होती घृणा और नरेंद्र दाभोलकर, गोविंद पानसरे और गौरी लंकेश जैसे मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की हत्या के मामले राइट विंग अतिवाद की ओर इशारा करते हैं।

कट्टरता से निपटने के उपाय (Ways to Deal with Bigotry)

- भारत में 'कट्टरता' के अलग-अलग स्वरूपों की मौजूदगी सदैव ही एक ऐसा विषय रहा है, जिस पर नीति निर्माताओं ने अधिक ध्यान नहीं दिया और न ही इस विषय पर सही ढंग से कोई अध्ययन किया गया है।
- कट्टरता और उससे निपटने को लेकर किसी भी प्रकार की आधिकारिक नीति की अनुपस्थिति में यह समस्या और भी गंभीर हो गई है।
- यद्यपि भारत के कई राज्यों द्वारा अलग-अलग पहलों के माध्यम से कट्टरपंथ की समस्या से निपटने का प्रयास किया गया है, किंतु ये पहले सफल होती नहीं दिख रही हैं।
- ऐसे में इन चुनौतियों से निपटने के लिये भारत को एक व्यापक नीति की आवश्यकता है, जिससे न केवल उन लोगों को बचाया जा सके जो कट्टरता के किसी रूप से प्रभावित हैं, बल्कि अन्य लोगों को भी इस रास्ते पर जाने से रोका जा सके।

TOUCH 'n' PASS

- इस नीति के तहत व्यक्ति, परिवार, धर्म और मनोविज्ञान जैसे पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिये और इसके माध्यम से कट्टरता से प्रभावित किसी व्यक्ति के विश्वास में स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास होना चाहिये।

प्र.4. जातीयता एवं राष्ट्रीयता में अन्तर बताइए।
Differentiate between ethnicity and nationality.

उत्तर

जातीयता एवं राष्ट्रीयता में अन्तर
(Difference between Ethnicity and Nationality)

1. जातीयता किसी व्यक्ति की जातीय पहचान को दर्शाती है। दूसरी ओर, राष्ट्रीयता विशिष्ट राष्ट्र के साथ नागरिकता या व्यक्ति का संबंध है।
2. जातीयता का आधार वंश के लक्षणों और सांस्कृतिक विरासत पर है; इसके विपरीत, राष्ट्रीयता के बाईसी में जन्म और विरासत शामिल है।
3. किसी व्यक्ति की जातीयता को भोजन की आदतों, भाषा, ड्रेसिंग शैली, दौड़, शारीरिक उपस्थिति, संस्कृति, कई चीजों से जोड़ा जा सकता है, दूसरी तरफ, किसी व्यक्ति की राष्ट्रीयता को एक ऐसे देश की उत्पत्ति से जोड़ा जा सकता है जिसमें व्यक्ति रह रहा है।
4. वह राज्य जो किसी व्यक्ति की विरासत और वंश का वर्णन करता है, वह जातीयता है, जबकि राष्ट्रीयता केवल एक विशिष्ट व्यक्ति के लिए विचार-विमर्श की जाती है जो उस विशिष्ट देश में पैदा हुआ है, और यह कानूनी पहचान है।
5. जातीयता आमतौर पर एक व्यक्ति की जातीय पृष्ठभूमि से उत्पन्न होती है। दूसरी ओर, किसी व्यक्ति की राष्ट्रीयता को नियंत्रित करना भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करता है।
6. आनुवांशिक परीक्षणों से, जातीयता पाई जा सकती है क्योंकि यह आमतौर पर एक पारस्परिक आनुवंशिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि साझा करती है। दूसरी ओर, राष्ट्रीयता में शून्य सांस्कृतिक और आनुवंशिक लिंक हैं, और यह सिर्फ एक देश की नागरिकता है जो किसी व्यक्ति के पास है।
7. लोग अपने रक्त और आनुवंशिक कोड द्वारा जातीयता में निकटता से जुड़े हुए हैं और आमतौर पर एक ही हैप्लोग्रुप साझा करते हैं। इसके विपरीत, कोई भी कनेक्शन राष्ट्रीयता से संबंधित नहीं है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राष्ट्रीय एकता पर विस्तृत लेख लिखिए।
Write a long note on national integration.

उत्तर

राष्ट्रीय एकता
(National Integration)

भारत एक विशाल देश है, जिसमें एक अरब से अधिक मानव समुदाय रहता है। इस विशाल देश में विविध मत-मतान्तर, वर्ग, जातियाँ, समाज, सम्प्रदाय, भाषायें, राजनैतिक दल, राज्य एवं क्षेत्र हैं, जिनको देखकर एकता में विविधता के दर्शन होते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत के सम्मुख स्वतन्त्रता की उपलब्धि ही प्रमुख लक्ष्य था, जिसे लेकर सम्पूर्ण राष्ट्र एक सूत्र में आबद्ध था। इसलिए उस समय राष्ट्रीय समंजन अथवा एकता की कोई समस्या ही उत्पन्न नहीं हुई थी, परन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति से ही सम्प्रदायिक तत्व राष्ट्र को विघटन की ओर ले जाने का प्रयास करते रहे हैं। भाषाओं के सम्बन्ध में, प्रादेशिकता की भावना के सम्बन्ध में, जातीयता एवं धर्मों के सम्बन्ध में, राजनैतिक दलबन्दियों के सम्बन्ध में, निर्धन-अमीर के सम्बन्ध में समय-समय पर विवाद खड़े होते रहे हैं। भाषाओं के आधार पर प्रदेशों तथा राज्यों के बँटवारे की माँग होती रही है। जातियों के आधार पर प्रदेशों का गठन होने की जोरदार माँग की जाती रही है। साम्प्रदायिकता के आधार पर मार-काट होती रही है। सदैव यह भय बना रहा है कि राष्ट्र की एकता समाप्त न हो जाए, इस प्रकार राष्ट्रीय समजन की माँग को महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है। पंजाबी सूबा, महाराष्ट्र का प्रदेश, नागालैण्ड तथा तमिलनाडु जैसे प्रदेशों की स्थापना भाषा, जाति या वर्ग के आधार पर की गई। साम्यवादी, समाजवादी, सम्प्रदाय सम्बन्धी राजनैतिक दलबन्दियाँ राष्ट्र भर में अशान्त वातावरण तैयार करती रहीं हैं। इन सब अशांत वातावरणों से सदैव यह भय बना रहता है कि कहीं देश की एकता संकट में न पड़ जाए।

TOUCH 'n PASS

चीनी आक्रमण तथा पाकिस्तानी आक्रमण से राष्ट्रीय एकता अवश्य उत्पन्न हुई, परन्तु शान्ति काल में राष्ट्रीय एकता बनी रहे यह संदिग्ध ही कहा जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी विविधताएँ एकता के सूत्र में बँधकर सुख-शान्ति का वातावरण तैयार कर सकें, ऐसा प्रयास किया जाए। इस प्रयास में शिक्षा बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

राष्ट्रीय एकता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of National Integration)

राष्ट्रीय एकता का अर्थ है एकत्व की भावना और राष्ट्र के प्रति प्रेम, जिसमें जाति, सम्प्रदाय, धर्म, भाषा, संस्कृति आदि के अन्तर को भूलकर अपने को एक समझा जाए। राष्ट्रीय एकता राष्ट्र के निवासियों को एकता के सूत्र में आबद्ध करती है। उनमें एकता की भावना (feeling of oneness) पैदा करती है। इस भावना के विकसित होने से व्यक्ति केवल अपने हितों को ही ध्यान नहीं रखता, वरन् अपने समाज और राष्ट्र के हितों का भी ध्यान रखता है। वह राष्ट्र के हितों के आगे अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, जातीय और धार्मिक हितों को बलिदान करने को तत्पर रहता है।

राष्ट्रीय एकता सम्मेलन (1961) के अनुसार, 'राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सभी व्यक्तियों के हृदयों में एकत्व, संगठन और संशक्ति (Cohesion) की भावना को विकसित किया जाता है।'

व्यक्तियों में राष्ट्रीय एकता के भाव को उत्पन्न करने के लिए उनके विचारों में भावात्मक एकता का होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति भावात्मक रूप से राष्ट्र के विकास हेतु जुड़े होते हैं, तब राष्ट्रीय एकता का विकास सम्भव है।

राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता (Need of National Integration)

डॉ० नित्यानन्द कानूनगो ने राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में लिखा है, 'भारत की जनसंख्या में असाधारण विविधता है, उसके विभिन्न भागों को एक-दूसरे से पृथक करने वाली दूरियाँ बहुत लम्बी है, उसके निवासियों के दैनिक जीवन एवं व्यवसायों को प्रभावित करने वाली जलवायु एक भौतिक दशाओं में अत्यधिक विभिन्नता है और सर्वोपरि, वह अति तीव्र गति से होने वाले आर्थिक, सामाजिक, प्राविधिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के युग से गुजर रहा है। ऐसे संक्रमण-काल में भारतीयों को अत्यधिक सतर्कता से कार्य करना चाहिए। वे ऐसा तभी कर सकते हैं, जब वे अपनी आन्तरिक भेदभावों को निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत रखें आवश्यकता पड़ने पर शान्तिपूर्ण विधि से उनकी दाहक्रिया करें, और साथ ही सामान्य राष्ट्रीयता की भावना का विकास करें एवं अपने देश के उत्थान के लिए कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य करें।' डॉ० कानूनगो ने अन्त में लिखा है, **''राष्ट्रीय एकता की देश को हर समय आवश्यकता है किन्तु भारत के लिए इसकी कहीं अधिक आवश्यकता है।''**

वस्तुत: आज हमारे देश को न केवल बाह्य आक्रमणों के प्रति सावधान और सतर्क रहना है, वरन् उसे आन्तरिक संकटों और विघटनकारी दृष्प्रवृत्तियों से भी अपना बचाव करना है। आज हमारे देश में कहीं भाषा के नाम पर, कहीं क्षेत्र के नाम पर, कहीं जल-विवाद के नाम पर, तो कहीं धर्म के नाम पर आये दिन संघर्ष होते रहते हैं। इन संघर्षों अथवा आन्तरिक कलह से देश कमजोर होता है, उसी प्रगति अवरुद्ध होती है, उसकी योजनायें निरर्थक सिद्ध होती हैं तथा उसका स्वर्णिम भविष्य धूमिल पड़ता जाता है। अत: आत पहली आवश्यकता इस बात की है कि देश की जनता अपने क्षुद्र स्वार्थों को त्यागे तथा समस्त देश के कल्याण के लिए अपने हृदय में राष्ट्रीय एकता की भावना संचरित करें।

हमारे देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय एकता के हित में अपनी आवाज बुलन्द करते हुए एक बार कहा था, "अब निश्चित रूप से वह समय आ गया है, जब प्रत्येक भारतीय को अपने अन्तर में देखना चाहिए और अपने आज से पूछना चाहिए कि वह राष्ट्र के साथ है या किसी विशिष्ट समूह के। यह हमारे समय की चुनौती है, जिसका प्रत्येक नर, नारी और बच्चे को सामना करना है।"

स्पष्ट है कि देश को सुदृढ़ बनाने के लिए हमें अपने सभी मतभेद भुलाने होंगे, पृथकतावाद की भावनायें समाप्त करनी होंगी तथा सभी समस्यायें परस्पर मिल-जुलकर हल करनी होंगी। इसके लिये सभी लोगों में राष्ट्रीय एकता का भाव होना आवश्यक है। सभी नागरिक राष्ट्रहित के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हों. आज हम तभी अपने अस्तित्व की रक्षा करने में समर्थ सिद्ध हो सकते हैं। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में, **'राष्ट्रीय एकता एक ऐसी समस्या है, जिससे सभ्य राष्ट्र के स्वरूप में हमारे अस्तित्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है।'**

निश्चित रूप से आज देश के सभी नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे परस्पर मनोमालिन्य दूर करें, निर्माण के कार्य में जुट जाए, विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति सहनशीलता एवं सहृदयता अपनायें तथा राष्ट्र की प्रगति में सभी एक-दूसरे की सहायता करते हुए आगे बढ़े। यही राष्ट्रीय एकता का भाव है। पं० नेहरू के शब्दों में, **'राष्ट्रीय एकता एवं सामंजस्य आज एक महत्त्वपूर्ण विषय है। यह उन सभी क्रियाकलापों का आधार है, जिन्हें हम भविष्य में करना चाहते हैं।'**

राष्ट्रीय एकता की समस्या (Problem of National Integration)

भारत विशाल देश है। यहाँ अनेक धर्मों, जाति एवं सम्प्रदायों के लोग रहते हुए भी संस्कृति एकता पाई जाती है। ध्यान देने की बात है कि भारत में विभिन्नता तो अवश्य पाई जाती है, पर संस्कृति की एकता के विषय में मतभेद है। इसका कारण यह है कि प्राचीन युग में भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों को अपने में सरलता से मिला लेती थी, परन्तु अब उसका यह गुण समाप्त हो गया है। परिणामस्वरूप अब एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य के निवासियों की भाषाओं तथा रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं को भी सहन नहीं कर रहे हैं। संस्कृति की संकीर्णता के साथ-साथ अब देश में और भी ऐसी विघटनकारी प्रवृत्तियाँ विकसित हो गई हैं, जिनके कारण राष्ट्रीय एकता की एक जटिल समस्या बन गई है। इस समस्या को सुलझाने के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) के अनुसार, 'हमारी शिक्षा को ऐसी आदतों तथा दृष्टिकोणों एवं गुणों का विकास करना चाहिए, जो नागरिकों को इस योग्य बना दे कि वे जनतन्त्रीय नागरिकता के उत्तरदायित्वों को वहन करके उन विघटनकारी प्रवृत्तियों का विरोध कर सकें, जो व्यापक, राष्ट्रीय तथा धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण के विकास में बाधा डालती हैं।'

"Educational system must make its contribution to the development of havits, attitudes and qualities of character which will enable its citizens to bear worthily the responsibilities of democratic citizenship and to contract all those fissiparous tendencies which hinder the emergence of a broad national and secular outlook."

—Secondary Education Commission (1952-53)

राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधाएँ (Obstacles in the Development of National Integration)

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारत को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं में सबसे गम्भीर समस्या राष्ट्रीय की समस्या है। इस समस्या को सुलझाने के लिए हमें इन सभी बाधाओं को दूर करना आवश्यक है, जो इसके मार्ग में वज्र के समान खड़ी हुई हैं। मुख्य बाधाएँ इस प्रकार हैं—

1. **जातिवाद** (Casteism)—भारत की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में जातिवाद प्रमुख आधार है। यहाँ के निवासी विभिन्न धर्मों तथा जातियों में विश्वास करते हैं, जिसके कारण इन सब में आपसी मतभेद पाए जाते हैं। प्रत्येक जाति अथवा धर्म का व्यक्ति दूसरे धर्म अथवा जाति के व्यक्ति से अपने आप को ऊँचा समझता है। इससे प्रत्येक व्यक्ति में एक दूसरे के प्रति पृथकता की भावना इतना उग्र रूप धारण कर चुकी है कि इस संकुचित भावना को त्याग कर वह राष्ट्रीय हित के व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने में असमर्थ है। हम देखते हैं कि चुनाव के समय भी प्रत्येक व्यक्ति अपना मत प्रत्याशी की योग्यता को दृष्टि में रखकर नहीं, अपितु धर्म तथा जाति के आधार पर देता है। यही नहीं चुनाव के पश्चात् भी जब राजनीतिक सत्ता किसी अमुक वर्ग के हाथ में आ जाती है तो वह वर्ग अपने ही धर्म अथवा जाति के लोगों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का प्रयास करता है। जिस राष्ट्र में धर्म तथा जाति का इतना पक्षपात पाया जाता हो, वहाँ राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।
2. **साम्प्रदायिकता** (Communalism)—साम्प्रदायिकता भी राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा है। हमारे देश में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि अनेक सम्प्रदाय पाये जाते हैं। यही नहीं, इन सम्प्रदायों में भी अनेक उपसम्प्रदाय हैं। उदाहरणार्थ, अकेला वैदिक धर्म ही अनेक सम्प्रदायों में बँटा हुआ है। इन सभी सम्प्रदायों में आपसी विरोध तथा घृणा की भावना इस सीमा तक पहुंच गई है कि एक सम्प्रदाय के व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय को एक आँख से नहीं देख सकते। प्राय: सभी सम्प्रदाय राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा केवल अपने-अपने साम्प्रदायिक हितों को पूरा करने में ही जुटे हुए हैं। इससे राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ गई है।
3. **प्रान्तीयता** (Provincialism)—भारत की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में प्रान्तीयता भी एक बहुत बड़ी बाधा है। ध्यान देने की बात है कि हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 'राज्य पुनर्गठन आयोग' ने प्रशासन तथा जनता की विभिन्न सुविधाओं को दृष्टि में रखते हुए देश को चौदह राज्यों में विभाजित किया था। इस विभाजन के आज विघटनकारी परिणाम निकल रहे हैं। हम देखते हैं कि अब भी जहाँ एक ओर भाषा के आधार पर नये-नये राज्यों की माँग की जा रही है, वहाँ

TOUCH 'n PASS

दूसरी ओर प्रत्येक राज्य यह चाहता है कि उसका केन्द्रीय सरकार पर सिक्का जम जाए। इस संकुचित प्रान्तीयता की वंदना के कारण देश के विभिन्न राज्यों में परस्पर वैमनस्य बढ़ता जा रहा है। इससे राष्ट्रीय एकता एक जटिल समस्या बन गई है।

4. **भाषावाद** (Linguism)—यद्यपि हमारे संविधान में हिन्दी को राष्ट्र भाषा एवं राज्य-भाषा घोषित किया गया है, परन्तु इसके साथ अनेक क्षेत्रीय भाषाओं को भी मान्यता दी गई है। इस कारण हमारे देश के नागरिक क्षेत्रीय भाषाओं की संकीर्णता में फँसे हुए हैं और राष्ट्रभाषा की अवहेला कर रहे हैं। भाषा के नाम पर दिन-प्रतिदिन झगड़े हो रहे हैं। पंजाब, आसाम, आंध्र तथा मद्रास में अनेक घृणित घटनायें हुई हैं। दुख की बात है कि कुछ स्वार्थी पुरुषों ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए भाषा के प्रश्न को अत्यन्त जटिल बना दिया है। अत: इस सम्बन्ध में कुछ भी निर्णय लेना कठिन हो गया है। इस प्रकार भाषा का प्रश्न अथवा भाषावाद हमारी राष्ट्रीय एकता को निर्बल बना रहा है। यदि हम ऐसी स्थिति से बचना चाहते हैं और राष्ट्रीय एकता प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें भाषा सम्बन्धी विरोध को समाप्त करना होगा और राष्ट्र-भाषा की शिक्षा समस्त नागरिकों को अनिवार्य रूप से देनी होगी। यदि ऐसा नहीं किया गया तो राष्ट्रीयता की भावना का विकास यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता की भावना का विकास एक राष्ट्रभाषा द्वारा ही हो सकता है।
5. **राजनीतिक दल** (Political Parties)—जनतन्त्र में राजनीतिक चेतना तथा जनमत के निर्माण हेतु राजनीतिक दलों का होना परम आवश्यक है। इसीलिए हमारे देश में भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ है। खेद का विषय है कि इन राजनीतिक दलों में से कुछ ही ऐसे दल हैं जो सच्चे अर्थ में राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होते हुए अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न कर रहे हैं। अधिकांश दल तो केवल जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय एवं क्षेत्र के आधार पर ही जनता से वोट माँग कर चुनाव लड़ते हैं तथा राष्ट्र हित की अपेक्षा राष्ट्रीय विघटन के कार्यों में जुटे रहते हैं। जब तक देश में ऐसी विघटनकारी राजनीतिक दलों का अस्तित्व बना रहेगा तब तक जनता राजनीतिक दलदल में फंसी रहेगी। इससे राष्ट्रीय एकता की समस्या बनी ही रहेगी।
6. **सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति** (Social and Economic Conditions)—राष्ट्र का उत्थान सामाजिक एवं आर्थिक दशा पर निर्भर करता है, परन्तु हमारे देश की सामाजिक एवं आर्थिक दशा खराब है। समाज में अनेकों कुरीतियों एवं अन्धविश्वास फैले हुए हैं, जो सामाजिक उन्नति में बाधक हैं और राष्ट्र को पतन के गर्त में ढकेल रहे हैं। यही दशा हमारी आर्थिक स्थिति की है। देश में चारों और गरीबी फैली हुई है। नागरिकों के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या जीविकोपार्जन की है। और इसके लिए वे अनैतिक कार्य करने से नहीं चूकते। इन बातों में उलझे रहने के कारण व्यक्ति के पास राष्ट्र के सम्बन्ध में सोचने का समय ही नहीं है। अत: देश में राष्ट्रीयता की भावना की कमी का कारण देश की गरीबी तथा सामाजिक दोष हैं। जब तक इन दशाओं में सुधार नहीं होगा तब तक राष्ट्रीयता के विकास का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता।
7. **नेतृत्व का अभाव** (Lack of Leadership)—जनतन्त्र की सफलता के लिए उचित नेतृत्व का होना परम आवश्यक है। हमारे देश में इस समय उच्च स्तरीय नेतृत्व तो कमाल का है, परन्तु स्थानीय स्तर पर इसकी कमी है। प्राय: देखा जाता है कि स्थानीय नेता अपने निजी स्वार्थों को पूरा करने के लिए जनता में जातीयता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता आदि अवांछनीय भावनाओं को भड़काते रहते हैं। इससे राष्ट्रीय एकता हर समय खतरे में पड़ी रहती है।
8. **राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का अभाव** (Want of National System of Education)—हमारे देश में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का अभाव है। शिक्षा को राज्य का विषय माना गया है। इस नियम के अनुसार प्रत्येक राज्य अपनी-अपनी आवश्यकता एवं शक्तियों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करता है। इससे बालकों का विचार तथा भावनाएँ राष्ट्र की ओर प्रेरित न होकर राज्य तक सीमित रह जाती हैं। अत: उनके अन्दर राष्ट्रीय भावनाएँ विकसित नहीं हो पाता, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता की भावना को बल नहीं मिलता है।

प्र.2. भारतीय राजनीति एवं राष्ट्र निर्माण में भाषा की विवेचना कीजिए।
Discuss language in Indian politics and nation building.

उत्तर

भारतीय राजनीति एवं राष्ट्र निर्माण में भाषा
(Language in Indian Politics and Nation Building)

प्रो० मॉरिस जोन्स लिखते हैं, "क्षेत्रवाद और भाषा के सवाल भारतीय राजनीति के इतने ज्वलन्त प्रश्न रहे हैं और भारत के हाल के राजनीतिक इतिहास की घटनाओं के साथ इनका इतना गहरा सम्बन्ध रहा है कि अक्सर ऐसा लगता है कि यह राष्ट्रीय एकता की मम्पूर्ण समस्या है।"

भारत एक बहुभाषी देश है। सन् 1902 की एक गणना के अनुसार भारत में 179 भाषाएँ एवं 544 स्थानीय भाषाएँ (Dialects) थी और सन् 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में 771 भाषाएँ एव स्थानीय भाषाएँ विद्यमान थी। 1961 और 1971 की जनगणनाओं ने मातृभाषाओं के रूप में 1652 भाषाओं की गणना की थी। यदि हम स्थानीय और क्षेत्र विशेष की भाषाओं को छोड़ भी दें तो भारत में प्रमुख रूप से प्रचलित भाषाओं की संख्या 15 है, जिनके अन्तर्गत देश की लगभग 90 प्रतिशत जनता आ जाती है। प्रारम्भ में हमारे संविधान में 14 भाषाओं को स्वीकार किया गया जिनके नाम हैं—असमी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उडिया, पंजाबी, तमिल, तेलूगू, संस्कृत एवं उर्दू। बाद में सिन्धी भाषा को भी संविधान में सम्मिलित कर लिया गया। अत: संख्या 15 हो गयी। भौगोलिक दृष्टि से भारत के पूर्व तट की चार भाषाएँ क्रमश: तमिल, तेलुगू, उडिया और बंगला, पश्चिमी तट की चार भाषाएँ क्रमश: मलयालम, कन्नड, मराठी एवं गुजराती, ठेठ उत्तर में कश्मीरी एवं उत्तर-पश्चिम में पंजाबी और मध्य क्षेत्र की भाषा हिन्दी है। हिन्दी से सम्बन्धित राज्य हैं—हरियाणा, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश एवं केन्द्रशासित दिल्ली, चण्डीगढ़ आदि। उर्दू, संस्कृत तथा सिन्धी भाषा से सम्बन्धित कोई विशेष भाग नहीं है परन्तु थोडी-बहुत मात्रा में इनका सर्वत्र प्रयोग होता है।

भाषागत विविधता (Diversity of Language)—भाषा की विविधता भारतीय समाज की विलक्षणता है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की जनता भिन्न-भिन्न भाषा बोलती है। इन भाषाओं में तथा इनकी लिपियों में बहुत अधिक अन्तर है। उत्तर भारत का निवासी दक्षिण की भाषा नहीं समझ पाता और न ही दक्षिण का निवासी उत्तर की भाषा। एक राजस्थानी के लिए बंगाली भाषा-भाषी भाषा के सन्दर्भ में विदेशी ही है। भाषागत विविधता कोई खराब बात नहीं है। भाषागत विविधता से एकता बढ़ाने में थोड़ी कठिनाई अवश्य होती है। किन्तु यदि एक ऐसी सम्पर्क भाषा हो जो विविध भाषा-भाषी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधे रख सके तो इस कठिनाई का आसानी से निवारण हो सकता है।

संविधानसभा में विचार-विमर्श (Discussions in Constituent Assembly)—संविधानसभा में जब इस प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ कि देश की राजभाषा क्या हो तो वहाँ बहुत ही भाषा सम्बन्धी हठधर्मी देखी गयी और उत्तेजनापूर्ण दृश्य सामने आये। राजभाषा के रूप में किसी एक देशी भाषा को मान्यता देने की संविधान-निर्माताओं की आकांक्षा 'राजभाषा आयोग' के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है—"हम देश के सांस्कृतिक जीवन की अनन्यता को दृढ़ करने वाले तत्त्वों की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम की खोज करते हैं। सदियों के बाद पुन: प्राप्त इस राजनीतिक एकता के साथ-साथ भाषायी एकता भी हम पाना चाहते हैं। इस एकता का प्राप्ति हम अंग्रेजी भाषा का स्थानापन्न किसी देशी भाषा को बनाना चाहते हैं तथा सभी प्रादेशिक भाषाओं में हिन्दी को राष्ट्रभाषा इसलिए चुना गया है कि इसके बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है।"

संघ की भाषा (The Language of the Union)—संविधान के अनुच्छेद 343, 344 में संघ की भाषा के सम्बन्ध में प्रावधान इस प्रकार हैं—(1) देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी संघ की राजभाषा होगी। (2) संविधान के आरम्भ में 15 वर्ष तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग संघ के सरकारी कार्यों में यथापूर्व जारी रहेगा। परन्तु इस अवधि के भीतर ही राष्ट्रपति हिन्दी के साथ-साथ प्रयोग किये जाने का अधिकार प्रदान कर सकते हैं। (3) पन्द्रह वर्षों के उपरान्त भी संसद किन्हीं विशिष्ट प्रायोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग चालू रखने की अनुमति दे सकती है। परन्तु 1963 में ही संविधान के अनुच्छेद 343 (3) के अधीन राजभाषा अधिनियम प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार 1965 के बाद भी अंग्रेजी अनिश्चित काल तक बनी रहेगी। (4) संविधान के चालू हो चुकने के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक भाषा आयोग की स्थापना करेंगे जो हिन्दी भाषा के प्रयोग में क्रमिक वृद्धि, अंग्रेजी के प्रयोग को धीरे-धीरे काम करना तथा तत्सम्बन्धी अन्य प्रश्नों व समस्याओं के सम्बन्ध में सिफारिशे करेगा। संविधान के चालू होने के दस वर्ष बाद राष्ट्रपति इसी प्रयोजन के लिए आयोग की स्थापना करने को बाध्य है। आयोग सिफारिश करते समय भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के निवासियों के सरकारी पदों के लिए न्यायोचित दावों के हितों को भी ध्यान में रखेगा। (5) इस आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए एक संसदीय समिति आनुपातीय प्रतिनिधित्व के आधार पर बनायी जाएगी जिसमें लोकसभा के 20 सदस्य तथा राज्यसभा के 10 सदस्य होंगे। यह संसदीय समिति आयोग की सिफारिशों पर अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करेगी। राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन के आधार पर निर्देश जारी कर सकते हैं।

संसदीय समिति आयोग के प्रतिवेदन की जाँच कर कहा कि संघ तथा राज्यों में अंग्रेजी के स्थान पर धीरे-धीरे हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए।

प्रादेशिक भाषाएँ (Regional Languages)—संविधान के अनुच्छेद 345 के अनुसार प्रत्येक राज्य के विधानमण्डल को यह अधिकार है कि वह राज्य के समस्त अथवा सरकारी कार्यों के लिए एक या अधिक भाषाएँ अंगीकार कर ले। किन्तु राज्यों के

परस्पर सम्बन्धों में तथा संघ और राज्यों के परस्पर सम्बन्धों में संघ की राजभाषा ही प्राधिकृत भाषा मानी जाएगी। कुछ राज्यों में अल्पसंख्यकों के भाषा सम्बन्धी हितों की रक्षा के लिए संविधान में कुछ विशेष उपबन्ध रखे गये हैं।

उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों और विधानमण्डलों की भाषा (Language of the Courts and Legislature)—जब तक संसद कानून द्वारा अन्यथा निर्धारित न करे, तब तक उच्चतम न्यायालय तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय की सब कार्यवाहियाँ तथा केन्द्रीय और राज्य के विधानमण्डलों के विधेयकों, कानूनों, आदेशों, नियमों तथा अध्यादेशों का पाठ अंग्रेजी भाषा में होगा। किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति से उच्च न्यायालय की कार्यवाही राज्य की राजभाषा में होने की अनुमति दे सकता है, लेकिन न्यायालय का फैसला, डिक्री या आदेश अंग्रेजी में ही होगा। यदि किसी राज्य का विधानमण्डल विधेयको, कानूनों, नियमों तथा आदेशों के लिए अंग्रेजी के बदले अन्य कोई भाषा निर्धारित करता है, तो उनका अंग्रेजी भाषा में राज्यपाल द्वारा अधिकृत अनुवाद अधिकृत पाठ समझा जाएगा।

अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण (Safeguards for the Minorities)—प्रत्येक राज्य में स्थानीय अधिकारियों का यह प्रयास होगा कि वह भाषायी अल्पसंख्यकों के बालकों की शिक्षा प्राथमिक चरण में मातृभाषा में देने के लिए आवश्यक व्यवस्था करे। भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रपति एक विशेष पदाधिकारी भी नियुक्त करेगा। इस विशेष पदाधिकारी का कर्त्तव्य होगा कि संविधान के अधीन भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए जो विशेष रक्षण और सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उनसे सम्बद्ध सब विषयों के सम्बन्ध में, जैसे राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे। राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा तथा सम्बन्धित राज्यों की सरकारों को भी भेजेगा। संविधान में यह भी व्यवस्था की गई है कि संघ अथवा किसी भी राज्य में प्रयोग होने वाली भाषा के सम्बन्ध में यदि किसी व्यक्ति को कोई शिकायत करनी है, तो वह संघ तथा राज्य के उपयुक्त अधिकारी से कर सकता है।

राजनीति और भाषा के मध्य अन्त:क्रिया
(Interactions between Politics and Language)

भाषा का प्रश्न राजनीतिक प्रश्न बन गया। भाषा के आधार पर राजनीतिक दलों एवं राजनीतिज्ञों ने जनता को उत्तेजित करने का प्रयास किया। कभी-कभी तो ऐसा लगने लगा कि कहीं भाषा का सवाल हमारी राष्ट्रीय एकता को खण्डित न कर दे। भारत की राजनीति में भाषा से जुडी हुई राजनीतिक समस्याएँ इस प्रकार हैं—

1. **हिन्दी के विरोध की राजनीति**—राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त आयोग के बांग्ला तथा तमिलभाषी सदस्यों—डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ० पी० सुब्बानारायण ने अपने विमति टिप्पण (Minutes of dissent) में समन्वय अथवा मेल-जोल के दृष्टिकोण से अत्यन्त दूर के विचार प्रकट किये। इनका यह दृष्टिकोण था कि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को प्रतिस्थापित करने में जल्दी करने का परिणाम "अहिन्दी भाषा जनता पर हिन्दी थोपना" होगा और उससे सार्वजनिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जायेगा। इन दोनों का यह दृढ़ मत था कि जब तक सरकारी भाषा अर्थात् हिन्दी पूर्णत विकसित नहीं हो जाती, अंग्रेजी भाषा प्रयुक्त होती रहे।
2. **भाषायी आधारों पर राज्यों का पुनर्गठन**—भाषावार राज्यों के पुनर्गठन की समस्या भारत में जितनी गम्भीर रही है उतनी नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों में सम्भवत: अन्यत्र कहीं नहीं रही है। स्वाधीनता के कुछ ही समय बाद इस बात के लिए जोरदार राजनीतिक दबाव दिये जाने लगे कि भारत के राज्यों के बीच की सीमाएँ भाषाओं के आधार पर बनायी जाए। सन् 1952 में विशेषत: तेलुगू भाषी लोगों में आन्दोलन बहुत ही तीव्र हो उठा। एक प्रतिष्ठित तेलुगू नेता पोट्टी श्री रामुलु ने उन क्षेत्रों को लेकर जहाँ तेलुगूभाषियों का बहुमत था, एक अलग राज्य बनाने की माँग मनवाने के लिए आमरण अनशन का तरीका अपनाया। अनशन के परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गयी और इससे इतने जोर का हंगामा उठ खड़ा हुआ कि नेहरूजी को भाषा के आधार पर राज्य का निर्माण करने के लिए झुकना पड़ा। एक बार, तेलुगू भाषा-भाषियों की माँग पर सरकार के झुक जाने के बाद देश के विभिन्न भागों में उसी तरह भाषा के आधार पर राज्य बनाने की माँगे बढ़ने लगी। इन माँगों की जाँच-पड़ताल करने और नये राज्यों की सीमाएँ निर्धारित करने के लिए राज्य पुनर्गठन आयोग नियुक्त किया। राज्य पुनर्गठन आयोग के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करने के बाद भी बम्बई के नये राज्य में भाषा के प्रश्न को लेकर निरन्तर असन्तोष बना रहा, अत: सन् 1960 में इसे दो राज्यों—गुजरात और महाराष्ट्र में बाँटना पड़ा। आगे चलकर 1966 के पंजाब की भाषा के आधार पर ही—हरियाणा और पंजाब में विभाजित करना पड़ा। इस तरह के अलगाव के लिए सिक्खों

द्वारा बहुत जोरदार आन्दोलन चलाया गया। मास्टर तारासिंह ने कहा कि "यह प्रान्त केवल भाषा पर आधारित होगा और इसे पंजाबी सूबा नाम दिया जा सकेगा।"

3. **भाषायी राज्यों के विवाद**—भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करने से राज्यों में राजनीतिक विवाद अत्यन्त उग्र हो गये। ऐसी समस्या चण्डीगढ़ में उत्पन्न हो गयी। इस प्रकार की समस्या महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर बेलगाँव व अन्य क्षेत्रों के विवाद के रूप में चली। महाराष्ट्र सरकार बेलगाँव नगर पर अपना अधिकार जमाना चाहती थी क्योंकि 1961 की जनगणना के अनुसार यहाँ मराठी भाषी लोगों की संख्या 51.2 प्रतिशत थी। इसके विपरीत, कर्नाटक सरकार का दावा था कि इस नगर में सभी भाषाओं और जातियों के लोग रहते हैं और जो कुछ बहुमत मराठी भाषाओं का था वह भी अब समाप्त हो गया है। बेलगाँव चूँकि सम्पूर्ण बेलगाँव तालुके का मुख्य केन्द्र है, इसलिए प्रशासनिक दृष्टि से उसे कर्नाटक में ही रहने दिया जाना चाहिए। असम में बंगाली और असमी भाषा के प्रश्न को लेकर सन् 1972 में उग्र विवाद उत्पन्न हो गया। कुछ अन्य प्रान्तों में भी लोग, भाषा के आधार पर अलग राज्यों के निर्माण का नारा लगाते रहते हैं। इस प्रकार भाषायी आधार पर राज्यों के टुकड़े करने का एक सुनियोजित अभियान देश में चलाया जा रहा है जो निश्चय ही देश की सुरक्षा और आर्थिक प्रगति के लिए घातक है।
4. **भाषा के आधार पर उत्तर और दक्षिण भारत की संकुचित भावनाएँ**—भाषा के आधार पर भारत में उत्तर और दक्षिण भारत की संकुचित मनोवृत्तियाँ पनपने लगी। दक्षिण भारत में हिन्दी का जोरदार विरोध किया। दक्षिण भारत में 'हिन्दी साम्राज्य' के विरुद्ध जोरदार आवाजें उठी। हिन्द के उत्साही समर्थकों के लिए यह मुश्किल था कि वे चुपचाप बैठे रहें। इस प्रकार भाषा के आधार पर भारत दो टुकड़ों में विभाजित-सा प्रतीत होने लगा—उत्तर और दक्षिण।
5. **भाषा के आधार पर राजनीति में नये दबाव गुटों का उदय**—भारतीय राजनीति में भाषागत दबाव गुटों का उदय हुआ। उदाहरणार्थ, भाषा के आधार पर महाराष्ट्रियनों और गुजरातियों ने अपने संगठन संयुक्त महाराष्ट्र समिति और महागुजरात जनता परिषद् बनाये थे उन्होंने लगभग पूरी तरह से राजनीतिक पार्टियों की जगह ले ली। इन संगठनों में शुरू में वामपन्थी लोग थे, लेकिन जल्दी ही इन्हें गैर-राजनीतिक लोगों का समर्थन प्राप्त हो गया।
6. **अन्य भाषाओं की मान्यता का प्रश्न**—भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में देश की 14 प्रमुख भाषाओं की मान्यता प्रदान की गयी है, जिनका उल्लेख किया जा चुका है। बाद में सिन्धी भाषा को भी मान्यता दे दी गयी, परन्तु समय-समय पर देश में कुछ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की मान्यता की आवाज भी लगायी जाती रही है। उदाहरण के लिए, राजस्थान में राजस्थानी भाषा को मान्यता दिलाने की माँग लम्बे समय से की जा रही है। सन् 1961 की गणना के अनुसार राजस्थानी बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ 49 लाख थी। इसी तरह ब्रज, मैथिली, कोंकणी, संथाली, छत्तीसगढ़ी आदि भाषाओं की मान्यता का प्रश्न भी जब-तब उठाया जाता रहा है और इन क्षेत्रीय भाषाओं के आधार पर प्रान्तों के निर्माण की बात भी की जाती रही है यद्यपि भारत सरकार ने इन माँगों को अब तक दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया है।
7. **भाषा के मसले पर राजनीतिक हलचल**—भाषा के प्रश्न को लेकर राजनीतिक हलचले बटने लगी। सी०डी० देशमुख ने जो 1950 में वित्तमन्त्री थे, इसी सवाल को लेकर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। इसी प्रकार एस०सी० छागला ने भी सरकार की भाषा-नीति के विरोध में मन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया।
8. **उर्दू भाषा के सवाल को चुनावी मसला बनाना**—राजनीतिक दल उर्दू भाषा के सवाल को चुनावी मसला बनाने में नहीं हिचकिचाते। अल्पसंख्यक मुस्लिम मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए कांग्रेस (आई) के 1980 के घोषणापत्र में आश्वासन दिया गया था, जो इस प्रकार है—"उर्दू भाषा को उसके ऐतिहासिक, सामाजिक महत्त्व के अनुरूप उचित स्थान दिलाया जायेगा, उर्दू को कुछ राज्यों में खास-खास क्षेत्रों में सरकारी कामकाज में व्यवहार के लिए दूसरी भाषा के रूप में मान्यता दी जाएगी।" जनवरी 1980 के चुनावों से पूर्व उत्तर-प्रदेश की लोकदल सरकार ने तीसरी भाषा के रूप में स्कूलों में उर्दू को पढ़ाया जाना अनिवार्य कर दिया था। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों से पूर्व उत्तर-प्रदेश में उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाये जाने के फैसले को लेकर बदायूँ में दंगें हुए और दो दर्जन लोगों की जानें गयी। हास्यास्पद स्थिति यह है कि एक वोट बैंक को खुश करने के लिए यहाँ तक कहा जा रहा है कि उर्दू हमारे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम की भाषा रही है।
9. **भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्या**—नए भाषायी राज्यों के निर्माण के उपरान्त भी भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्या बनी हुई है, जो शासन से अनेकानेक प्रकार के संरक्षणों की माँग कर रहे हैं। उत्तर-प्रदेश में उर्दू का सवाल, कर्नाटक में मराठी भाषा-भाषियों का सवाल, पंजाब में हिन्दी भाषा-भाषियों की स्थिति भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्याएँ उत्पन्न

TOUCH 'n PASS

करती है। कर्नाटक में बसे मलयालियों और तमिलों में अब असुरक्षा की भावना पैर जमाने लगी है। कन्नडिगाओं का गुस्सा धीरे-धीरे सुलग रहा है और 1982 के हिंसक आन्दोलन में तो जैसे ज्वालामुखी फट ही पड़ा।

10. **सर्वमान्य शिक्षा नीति के निर्माण में कठिनाइयाँ**—भाषा सम्बन्धी समस्याओं का ही परिणाम है कि हम स्वतन्त्रता प्राप्ति के 45 वर्षों के उपरान्त भी किसी ऐसी शिक्षा नीति (Education Policy) का निर्माण नहीं कर सके जिसे हम अपना कह सकें, शिक्षा के क्षेत्र में आज भी प्रयोग हो रहे हैं और इससे जीवन के हर क्षेत्र का दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है। सेकेण्ड्री और उच्च शिक्षा के बारे में शिक्षाशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों के बीच निरन्तर नोक-झोक चलती रही। कई फर्मूले आते और खण्डित हाते रहे और जब कभी ऐसा लगता था कि एक पक्ष की जीत हो गयी तो उसे लागू करने की विधि के सम्बन्ध में मतभेद पैदा हो जाता था। सरकार फूँक-फूँककर कदम रखती हुई 'तीन भाषा फार्मूले'तक पहुँची। इसका मतलब यह था कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में सेकेण्ड्री शिक्षा के किसी स्तर पर क्षेत्रीय भाषा के अलावा कोई अन्य भारतीय भाषा भी पढ़ायी जायेगी। इस प्रकार दो भाषाएँ हो जायेंगी। तीसरी भाषा अंग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा होगी। इस प्रकार सेकेण्ड्री स्तर पूरा होते-होते तीन भाषाएँ आ जाएगी। शुरू में उत्तर भारत के कुछ भागों में इसका पालन नहीं किया गया—यहाँ तमिल या ऐसी कोई भाषा पढ़ाने के बजाय संस्कृत भाषा को लिया गया, लेकिन जब, 1967 से मद्रास में हिन्दी के कट्टर विरोधी—

(i) हिन्दी भाषी लोगों को अहिन्दी भाषी लोगों की कठिनाइयों की ओर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। दोनों ही पक्षों को भाषायी उग्रता से बचना चाहिए।

(ii) प्रान्तीय शासन और सभी स्तरों पर शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाओं का बनाया जाना चाहिए। इस हेतु प्रादेशिक भाषाओं के विकास के लिए पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

(iii) हिन्दी भाषा को सरल और लोकप्रिय बनाने के लिए ठोस रचनात्मक कार्य करना चाहिए। इस हेतु सरल हिन्दी में मूल पुस्तकें लिखी जाए और उपयोगी पुस्तकों का अनुवाद किया जाए और कम से कम मूल्य में उन्हें अहिन्दी भाषियों में वितरित किया जाए।

(iv) अंग्रेजी का प्रयोग सीमित किया जाए, परन्तु उसे समूल नष्ट नहीं किया जाए।

(v) त्रि-भाषा सूत्र को पूर्ण निष्ठा से लागू किया जाए।

(vi) शैक्षणिक भ्रमण, व्याख्यान, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय भाषाओं में निकट सम्पर्क स्थापित किया जाए।

(vii) अन्त में, भाषा को राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का माध्यम बनाने से रोका जाए।

प्र.3. भारत में जाति का विस्तृत स्वरूप बताइए।
Explain the broad nature of caste in India.

उत्तर

जाति का परम्परागत अर्थ एवं रूप
(Traditional Meaning and Nature of Caste)

जाति प्रथा किसी न किसी रूप में संसार के हर कौने में पायी जाती है, पर एक गम्भीर सामाजिक कुरीति के रूप में यह हिन्दू समाज की ही विशेषता है। वैसे इस्लाम और ईसाई समाज भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। यह व्यवस्था एक अतिप्राचीन व्यवस्था रही है। इसका अभिप्राय पेशे के आधार पर समाज को कई भागों में बाँट देना है। सामान्यतया यह माना जाता है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति वैदिक काल में हुई। ब्राह्मण धार्मिक और वैदिक कार्यों का सम्पादन करते थे। क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा करना और शासन प्रबन्ध करना था। वैश्य कृषि और वाणिज्य संभालते थे तथा शुद्रों को अन्य तीन वर्णों की चाकरी करनी पड़ती थी। शुरू-शुरू में जाति प्रथा के बन्धन कठोर न थे और वह जन्म पर नहीं अपितु कर्म पर आधारित थे। बाद में जाति प्रथा में कठोरता आती गयी, वह पूरी तरह जन्म पर आधारित हो गयी तथा एक जाति से दूसरी जाति में अन्त:क्रिया असम्भव हो गयी। अपने मौलिक रूप में जाति प्रथा उपयोगी थी। चूँकि वह श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित थी, अत: उसने आर्थिक क्षेत्र में निपुणता के तत्त्व का समावेश किया। एक जाति का पेशा उसी जाति में होता था। बोटा बाप से अपना पुश्तैनी पेशा सीखता था और प्राय: उसी को अपनी आजीविका के साधन के रूप में अपना लेता था। इस प्रथा से एक जाति और बिरादरी के लोगों में भाई-चारे की भावना को बढाया। एक जाति के लोग एक-दूसरे से भली-भाँति परिचित होते थे तथा एक-दूसरे के सुख-दुख मे काम आते थे।

TOUCH 'n' PASS

प्रो. घुरिये (Ghurye) ने जाति व्यवस्था की छः विशेषताएँ बतायी है, जो इस प्रकार हैं—

1. भारत में जाति ऐसे समुदाय हैं जिसका अपना विकसित जीवन है और इसकी सदस्यता जन्म से निश्चित होती है।
2. भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति जानता है और जातियों के पद-सोपान में ब्राह्मण सबसे ऊपर माना जाता है।
3. जातियों के आधार पर खान-पान और सामाजिक आदान-प्रदान के प्रतिबन्ध लगे रहते हैं।
4. गाँवों तथा शहरों में जाति के आधार पर पृथकता की भावना बनी रहती है।
5. कुछ जातियाँ कतिपय विशेष प्रकार के व्यवसायों को अपना पुश्तैनी अधिकार समझती हैं।
6. जातियों की परिधि में ही वैवाहिक आदान-प्रदान होता है और जातियाँ कई उप-जातियों में विभक्त होती हैं। उप-जातियों में भी वैवाहिक परिसीमाएँ हैं।

जाति का राजनीति से सम्पर्क सूत्र (Politics Attached to Caste)

स्वाधीनता संग्राम के दौरान ऐसा लगता था कि जनता पर जातिवाद का प्रभाव कम हो रहा है किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जातिवाद ने फिर जोर पकड़ा और वयस्क मताधिकार व्यवस्था के देश में लागू कर दिये जाने के परिणामस्वरूप यह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुआ है। वैसे राजनीति पर जातिगत प्रभाव प्रतिनिधि व्यवस्था के लागू होने के समय से ही शुरू हो गया था किन्तु यह प्रभाव नगण्य ही था। इसके लिए उत्तरदायी थे ब्रिटिश प्रशासन, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सीमित मताधिकार। स्वतन्त्रता की प्राप्ति ने प्रथम दो कारणों का निराकरण कर दिया और नये संविधान में अपनायी गयी वयस्क मताधिकार व्यवस्था ने तीसरे का। फलतः जातियों के प्रभाव क्षेत्र में आशातीत वृद्धि हो गयी। आरम्भ में तो सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से उच्च अथवा श्रेष्ठ जातियाँ ही राजनीति से प्रभावित रही और राजनीतिक लाभ उन्हीं तक सीमित रहे। समय के साथ-साथ मध्यम और निम्न समझी जाने वाली जातियाँ आगे आने लगी और अपने राजनीतिक प्रभाव को बढाने में प्रयत्नशील रहने लगी। **प्रो. रूडोल्फ** के शब्दों में, "भारत के राजनीतिक लोकतन्त्र के सन्दर्भ में जाति वह धुरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीको की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है कि इसके जरिये भारतीय जनता को लोकतान्त्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।"

जाति का राजनीतिक रूप : रजनी कोठारी का दृष्टिकोण (Political Dimensions of Caste : Rajni Kothari's Approach)

प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' (Caste in Indian Politics) में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनका मत है कि अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत में जाति प्रथा खत्म हो रही है? इस प्रश्न के पीछे यह धारणा है कि मानो जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्थाएँ है। ज्यादा सही सवाल यह होगा कि जाति-प्रथा पर राजनीति का क्या प्रभाव पड़ रहा है और जाँति-पाँति वाले समाज में राजनीति क्या रूप ले रही हैं? जो लोग राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, वे न तो राजनीति के प्रकृत स्वरूप को ठीक समझ पाये हैं और न जाति के स्वरूप को। भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित है अतः न चाहते हुए भी राजनीति को जाति संस्था का उपयोग करना ही पडेगा। अतः राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है। जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है। राजनीतिक नेता सत्ता प्राप्त करने के लिए जातीय संगठन का उपयोग करते हैं और जातियों के रूप में उनको बना-बनाया संगठन मिल जाता है जिससे राजनीतिक संगठन में आसानी होती है।

जाति व्यवस्था और राजनीति में अन्तः क्रिया के सन्दर्भ में प्रो. रजनी कोठारी ने जाति-प्रथा के तीन रूप प्रस्तुत किये हैं—
(i) लौकिक रूप (The secular aspect), (ii) एकीकरण का रूप (The integration aspect), तथा (iii) चैतन्य रूप (The aspect of consciousness)।

1. **जाति व्यवस्था का लौकिक रूप**—रजनी कोठारी ने जाति व्यवस्था के लौकिक रूप को व्यापक दृष्टि में देखने का प्रयत्न किया। जाति व्यवस्था की कुछ बातों पर सबका ध्यान गया है जैसे जाति के अन्दर विवाह, छुआछुत और रीति-रिवाजो के द्वारा जाति की पृथक् इकाई को कायम रखने का प्रयत्न। लेकिन इस बात की ओर बहुत ही कम लोगों का ध्यान गया है कि जातियों मे आपसी प्रतिद्वन्द्विता एवं गुटबन्दी रहती है, प्रत्येक जाति प्रतिष्ठा और सत्ता की प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहती है। उदाहरण के लिए, आजकल बिहार में ऊँची जातियों और पिछडी जातियों के बीच सत्ता प्राप्ति का अनवरत संघर्ष चल रहा

TOUCH 'n' PASS

है और यही कारण है कि जनता शासन के दौरान दोनों ही मुख्यमन्त्री पिछडी और अनुसूचित जातियों से आये। जाति व्यवस्था के इस लौकिक पक्ष के दो रूप थे—एक शासकीय रूप यानि जाति की ओर गाँव की पंचायत और चौधराहट। दूसरा रूप राजनीतिक था यानि जाति की आन्तरिक गुटबन्दी और अन्य जातियों से गठजोड और प्रतिद्वन्द्विता। इन संगठनों का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता था कि स्थानीय नेताओं के समाज की केन्द्रस्थ सत्ता से किस प्रकार के सम्बन्ध थे। धर्म, व्यवसाय और प्रदेश के आधार पर इन जातियों की स्थिति बनती और बिगड़ती थी। पहले इन जातियों का सम्बन्ध जाति या गाँव की पंचायत और राजा या जमींदार से रहता था। अब जातीय पंचायतों के स्थान पर विधानसभाएँ और संसद हैं तथा राजा के स्थान पर राष्ट्रीय सरकार है।

रजनी कोठारी का यह भी विचार है कि देश की राजनीति पर किसी एक जाति का प्राधान्य नहीं हो सका क्योंकि कुछ स्थानों पर ब्राह्मणों का वर्चस्व था तो कुछ प्रदेशों में जैसे गुजरात और मारवाड़ में जैन, वैष्णव जैसे सम्प्रदायों के हाथ में आर्थिक शक्ति थी।

2. **जाति व्यवस्था का एकीकरण रूप**—जाति का दूसरा रूप एकीकरण का है अर्थात् व्यक्ति को समाज से बाँधने का है। जाति प्रथा जन्म के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का समाज में स्थान नियत कर देती है। जाति के आधार पर ही उस व्यक्ति का व्यवसाय और आर्थिक भूमिका निश्चित हो जाती है। चाहे कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, उसका अपने समाज में लगाव पैदा हो जाता है, जाति के प्रति उसकी निष्ठा बढ़ने लगती है। यही निष्ठा आगे चलकर बड़ी निष्ठाओं अर्थात् लोकतन्त्र और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी विकसित हो सकती है। इस प्रकार जातियाँ जोड़ने वाली कटियाँ बन जाती है। लोकतन्त्र के अन्दर विभिन्न समूहों में शक्ति के लिए प्रतिद्वन्द्विता होती है और विभिन्न जातियों ने आपस मे मिल-जुलकर गठजोड बनाने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ताकि वे सत्ता का लाभ प्राप्त कर सकें।
3. **जाति व्यवस्था का चैतन्य रूप**—जाति प्रथा का तीसरा रूप चेतना बोध है। कुछ जातियाँ अपने को उच्च समझती हैं और इस कारण समाज में उनकी विशेष प्रतिष्ठा होती है। इस कारण कुछ निम्न समझी जाने वाली जातियाँ भी अपने को उनके साथ जोडने की चेष्टा करती है। क्षत्रिय वर्ण के साथ जो प्रतिष्ठा जुडी हुई है, उसके कारण देश के विभिन्न भागों में अनेक जातियों ने इस वर्ग का दावा किया है। कुछ जातियों में इसी प्रकार ब्राह्मण पद का भी दावा किया है। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप जाति विशेष की स्थिति भी बदलती है। सामाजिक व्यवहार में अलग-अलग स्तर पर अलग-अलग रूप धारण करने के कारण जाति व्यवस्था में लोच और परिवर्तनशीलता आ जाती है। इसके लिए चार मार्ग अपनाये जाते हैं। **प्रथम**, संस्कृतिकरण का तरीका है। संस्कृतिकरण में छोटी जातियाँ सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों की नकल करने लगती है। इसे बाह्मणीकरण भी कहा जाता है। **द्वितीय**, लौकिकीकरण या अब्राह्मणीकरण का तरीका है। आर्थिक उन्नति, राजनीतिक एकता और बुद्धिवाद की सार्वजनिक प्रवृत्तियों के प्रभाव से अक्सर अब्राह्मण जातियाँ ब्राह्मणों की नकल करने की प्रवृत्ति को छोड देती है और अन्य अब्राह्मण जातियों से मिलकर राजनीतिक व सामाजिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करती है। **तृतीय**, महापुरुषों से सम्बन्ध जोड़ने का तरीका है। कभी-कभी कतिपय जातियाँ अपनी उच्चता सिद्ध करने के लिए अपना सम्बन्ध पौराणिक पुरुषो से जोड़ने का प्रयत्न करती है। जैसे गुजरात के पाटीदार, बंगाल के महाष्यि और राजस्थान के जाट आदि। **चतुर्थ**, आधुनिक राजनीति में भी भागीदारी का तरीका है। कुछ जातियाँ सीधे ही आधुनिक राजनीति में भाग लेने लगी और इस प्रकार उन्होंने समाज में भी उच्च स्थिति प्राप्त की। आन्ध्र प्रदेश और बिहार इसके उदाहरण हैं।

प्रो. रजनी कोठारी ने जाति के राजनीतिकरण की चर्चा करते हुए कहा है कि 'इससे पुराना समाज नयी राजनीतिक व्यवस्था के करीब आया है।' इस प्रक्रिया को उन्होंने तीन चरणों में बाँटा है—

(i) **शक्ति और प्रभाव की प्रतिस्पर्धा**—ऊँची जातियों तक सीमित रही—भारत का पुराना समाज जब नयी व्यवस्था के सम्पर्क में आने लगा तो सबसे पहले शक्ति और प्रभाव की स्पर्धा समाज की प्रतिष्ठित और जमी हुई जातियों तक सीमित रही। जिन जातियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके आधुनिक बनने का प्रयत्न किया, वे प्रतिष्ठित जातियों के समक्ष आने लगी। इन जातियों ने अधिकार और पद प्राप्त करने के लिए अपना राजनीतिक संगठन बनाया जिससे दो ऊँची जातियों में प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वन्द्विता बढने लगी। मद्रास मोर महाराष्ट्र में ब्राह्मण-अब्राह्मण; राजस्थान में राजपूत

TOUCH 'n' PASS

जाट, गुजरात में बनिर्या-ब्राह्मण-पाटीदार, आन्ध्र प्रदेश में कम्मा रेड्डी और केरल में इजवा-नायर द्वन्द्व इसके उदाहरण हैं।

(ii) **जाति के अन्दर की प्रतिस्पर्धी गुटबन्दी**—इस चरण में भिन्न-भिन्न जातियों की प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ जाति के अन्दर भी प्रतिस्पर्धी गुट बन जाते हैं। प्रतिद्वन्द्वी नेताओं के पीछे गुट बन जाते हैं। इन गुटों में विभिन्न जातियों के लोग होते हैं। अपना गुट मजबूत करने के लिए उन जातियों की भी सहायता ली जाती है, जो अब तक दायरे से बाहर थी। चुनाव में समर्थन प्राप्त करने के लिए नीची जातियों के प्रमुख लोगों को छोटे राजनीतिक पद और लाभ में कुछ हिस्सा देकर प्रतिस्पर्धी नेता अपना गुट मजबूत करने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ इस प्रकार मुखियों को इनाम और पद देकर इन जातियों का समर्थन प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ, वहाँ विभिन्न जातियों और उपजातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा पैदा करके उनका संगठन बनाने की और उन संगठनों के मध्यस्थ या विचौलियों द्वारा समझौता करने की कोशिश की गयी। इस चरण में पुराने ब्राह्मण और कायस्थ आदि प्रशासनिक जातियों के नेताओं के बजाय व्यवसायी और कृषक जातियों के नेताओं और कार्यकर्ताओं की संख्या बढी। ये नेता सौदा पटाने में कुशल थे, ज्यादा व्यावहारिक थे और अपने वर्ग और जाति के लोगो का नेतृत्व कर सकते थे।

(iii) **जाति के बन्धन ढीले पडना और राजनीति को व्यापकता मिलना**—रजनी कोठारी के अनुसार तीसरे चरण में एक ओर राजनीतिक मूल्यों की प्रधानता हुई और जाँति-पाँति से लगाव कम हुआ, वहीं दूसरी ओर शिक्षा, नये शिल्प और शहरीकरण के कारण समाज में परिवर्तन आया। भौतिक उन्नति की नयी धारणाओं का जोर बढा। पुराने पारिवारिक बन्धन टूटने लगे और लोग काम-धन्धे के लिए शहरों में जाकर बसने लगे। जाति की भावना ढीली पड़ने लगी और सामाजिक व्यवहार अपनी जाति तक सीमित न रहा। राजनीति में भी व्यापकता आयी। नयी शिक्षा और नये सामाजिक व्यवहार से उत्पन्न होने वाली नयी प्रवृत्तियाँ फैलने लगी। राजनीतिक संस्थाओं का ढाँचा व्यापक होने लगा और जाति की भावना को नया रूप मिलने लगा। राजनीतिक प्रवृत्तियों ने नयी निष्ठाओं को जन्म दिया, जो पुरानी निष्ठाओं को काटती हैं। जाति अब राजनीतिक समर्थन या शक्ति का एकमात्र आधार नहीं रही, यद्यपि राजनीति में इसका अधिकाधिक उपयोग किया जा रहा है।

प्रो. रजनी कोठारी का राजनीति में जाति सम्बन्धी निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

1. आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने के कारण पहले तो जाति प्रथा पर पृथक्ता की प्रवृत्ति का प्रभाव पडा, बाद में जाति भावना का सामजस्य हुआ और इसने राजनीतिक संगठन में सहायता दी।
2. आधुनिक राजनीति में भाग लेने से लोगों की दृष्टि में परिवर्तन हुआ और उनकी यह समझ में आ गया कि आज के युग में केवल जाति और सम्प्रदाय से काम नहीं चल सकता।
3. जहाँ जाति बडी होती है, वहाँ भी उसमें एकता नही रहती, उसमे उप-जातियो के भेद होते हैं और छोटी जातियाँ तो अपने बल पर चुनाव भी नहीं जीत सकती हैं। यदि कोई प्रत्याशी अपनी ही जाति का पक्ष लेता है तो दूसरी जातियाँ उनके खिलाफ हो जाती है इसलिए चुनाव की राजनीति में अनेक जातियों का गुट बनाना पडता है।
4. राजनीति में आने के कारण जाति की भावना ढीली पड़ जाती है और अनेक नयी निष्ठाओं का उदय होता है।
5. आजकल राजनीति में जातिवाद और सम्प्रदायवाद का जोर बढ़ने की शिकायत की जाती है। ऐसा समझा जाता है कि शिक्षा प्रसार, शहरों के विस्तार औद्योगीकरण के कारण सम्प्रदाय और जाति के बन्धन ढीले पड़ रहे थे, वे चुनाव की राजनीति के कारण फिर से जोर पकड़ रहे हैं और इससे देश में फूट बढ़ेगी जिससे धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र का ढाँचा खतरे में पड़ जायेगा। किन्तु प्रो. कोठारी का मानना है कि वास्तव में जाति और राजनीति के मिश्रण से दूसरे ही परिणाम निकलते हैं। बजाय राजनीति पर जाति के हावी होने के, जाति का राजनीतिकरण हो जाता है। (It is not Politics that gets caste ridden, It is caste that gets Politicisation) राजनीति ने जाति को लीक से हटाकर नया सन्दर्भ दे दिया, जिससे उसका पुराना रूप बदल रहा है।
6. आधुनिकतावादी नेता जाँति-पाँति पर भले ही नाक-भौ सिकोड़े, परन्तु इसके द्वारा राजनीतिक शक्ति उन वर्गों या समूहों के हाथ में पहुँच सकी, जो अब तक उससे वंचित थे।
7. जाति के आधार पर संघ और संगठन बनते हैं जैसे कायस्थ सभा, क्षत्रिय संघ आदि सब मिलाकर जातीय संगठनों ने भारत की राजनीति में वही भाग लिया है जो पश्चिमी देशो में विभिन्न हितो व वर्गों के संगठनो ने।

TOUCH 'n PASS

8. जातियों और सम्प्रदायों के राजनीति में भाग लेने के फलस्वरूप सामूहिक या राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ है और उनकी पृथकता कम होकर उनका राजनीतिक एकीकरण हुआ है।

जाति और राजनीति में अन्त:क्रिया : सैद्धान्तिक आधार (Interactions between Caste and Politics : Theoretical Framework)

भारत में जाति और राजनीति में किस प्रकार का सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध में चार प्रकार से विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

सर्वप्रथम, यह कहा जाता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संगठन जाति की संरचना के आधार पर हुआ है और राजनीति केवल सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति मात्र है। सामाजिक संगठन राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करता है।

द्वितीय, राजनीति के प्रभाव के फलस्वरूप जाति नया रूप धारण कर रही है। लोकतान्त्रिक राजनीति के अन्तर्गत राजनीति की प्रक्रिया प्रचलित जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है जिससे सम्बद्ध पक्ष अपने लिए समर्थन जुटा सके तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना सकें। जिस समाज में जाति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संगठन माना जाता है उसमें यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि राजनीति इस संगठन के माध्यम से अपने आपको संगठित करने का प्रयास करे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसे हम राजनीति में जातिवाद के नाम से पुकारते हैं वह वास्तव में जाति का राजनीतिकरण है।

तृतीय, भारत में राजनीति 'जाति' के इर्द-गिर्द घूमती है। जाति प्रमुखतम राजनीतिक दल है। यदि मनुष्य राजनीति की दुनिया में ऊँचा उठना चाहता है तो उसे अपने साथ अपनी जाति को लेकर चलना होगा। भारत में राजनीतिज्ञ जातीय समुदायों को इसलिए संगठित करते हैं ताकि उनके समर्थन में उन्हें सत्ता तक पहुँचने में सहायता मिल सके।

चतुर्थ, जातियाँ संगठित होकर प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग लेती है और इस प्रकार जातिगत भारतीय समाज में जातियाँ ही 'राजनीतिक शक्तियाँ' बन गयी हैं।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Caste Politicisation)

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका की उभरती विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

प्रथम, जाति व्यक्ति को बांधने वाली कड़ी है। जातीय संघो और जातीय पंचायतो ने जातिगत राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओं को बढ़ाया है। जाँति-पाँति को समाप्त करने वाले आन्दोलन अन्ततोगत्वा नयी जातियों के रूप में मुखरित हुए जैसे लिंगायत, कबीरपन्थी और सिक्ख आन्दोलन स्वयं नयी जातियां बन गये।

द्वितीय, शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण से जातियां समाप्त नहीं हुईं अपितु उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिला ओर उनकी राजनीतिक भूमिका में वृद्धि हुई।

तृतीय, राजनीति में प्रधान जाति (Dominant caste) की भूमिका का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रधान जाति न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से ही शक्तिशाली होती है, बल्कि संख्या में भी गाँव या इलाके में ज्यादा होती है। प्रधान जाति अपने संख्या बल के आधार पर गाँव और क्षेत्र की स्थानीय सस्थाओं जैसे पंचायतों की राजनीति में सक्रिय होती है। यदि किसी राज्य विशेष में किसी जाति की प्रधानता होती है तो राज्य राजनीति में जाति एक प्रभावक तत्त्व बन जाती है। हरियाणा की राजनीति के बारे में सुभाष कश्यप ने लिखा है—हरियाणा में जाति और वर्ग की भावना को अपेक्षाकृत अधिक बल मिला है तथा हरियाणा के जन जीवन में सदा ही 'जाति' राजनीतिक दल की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण रही है। गुडगाँव और महेन्द्रगढ़ क्षेत्रों के अहीर, अहीर उम्मीदवार को ही मत देना चाहेगा अन्य किसी को नहीं। यही बात राज्य के अन्य भागों के अन्य जाति के समूहो के बारे में लागू होती है। चुनावो के समय यहाँ अक्सर एक पुरजोर नारा सुनायी पड़ता है—'जाट की बेटी जाट को, जाट का बँटा जाट को।' आश्चर्य की बात यह है कि जाति की यह छूत हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं, मुसलमान भी उनकी गिरफ्त से नहीं बच सके।'

चतुर्थ, उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही जातिगत समुदायों का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था जबकि ब्रिटिश शासन ने भारत में एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नीव डाली थी। सबसे पहले इसका ध्यान जनगणना कार्यालय की ओर गया जहाँ जातीय समुदायों ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के ध्येय से अपने संगठन का नामकरण कराना आवश्यक समझा। बाद में अपनी जाति के लोगों के हितो को संरक्षण के लिए जातीय संघो ने प्रस्ताव पारित किये और शासन को अपनी माँगो के लिए प्रभावित करना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि कुछ जातियों ने शैक्षणिक सुविधा, शिक्षण संस्थाओं में जातिगत आरक्षण और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की माँग की। मद्रास की वेनियर (venniyars) जाति के नेता पदायची (Padayachi) ने सी. राज गोपालचारी के

मन्त्रिमण्डल में शामिल होने से इंकार कर दिया क्योंकि उन्होनें उनकी जातीय माँगी को मानने से इंकार कर दिया था। बाद में वे कामराज मन्त्रिमण्डल में शामिल हो गये क्योंकि उन्होनें वेनियरो की माँगें स्वीकार कर ली थी।

पंचम, निर्वाचनो के दिनो में जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओं और दलो को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितो को मुखरित करते हैं।

षष्ठ, जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर उतनी नहीं है जितनी स्थानीय और राज्य राजनीति पर है।

सप्तम, जाति और राजनीति के सम्बन्ध स्थैतिक न होकर गतिशील है।

प्र.4. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का वर्णन कीजिए।
Describe the role of caste in Indian politics.

उत्तर

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका
(Role of Caste in Indian Politics)

जयप्रकाश नारायण ने एक बार कहा था कि 'जाति भारत में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दल है।' हेरल्ड गोल्ट के शब्दों में, 'राजनीति का आधार होने के बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्त्व है।'

जाति-व्यवस्था भारतीय समाज का परम्परागत पक्ष है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात संविधान और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण से आधुनिक प्रभावो ने भारतीय समाज में धीरे-धीरे प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। आधुनिक प्रभावो के फलस्वरूप वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रारम्भ हुए और जातिगत सस्थाएँ यकायक महत्त्वपूर्ण बन गयी क्योंकि उनके पास भारी संख्या में मत थे और लोकतन्त्र से सत्ता प्राप्ति हेतु इन मतों का मूल्य था। जिन्हें सत्ता की आकांक्षा थी उन्हें सामान्य जनता के पास पहुँचने के लिए सम्पर्क सूत्र की भी आवश्यकता थी। सामान्य जनता को अपने पक्ष में मिलाने के लिए यह भी जरूरी था कि उनसे उस भाषा में बात की जाय जो उनकी समझ में आ सके। जाति-व्यवस्था इस बात को प्रकट करती थी। इस पृष्ठभूमि में जाति की भूमिका राजनीति में अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती गयी। भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है—

1. **निर्णय प्रक्रिया में जाति की प्रभावक भूमिका** (Influential Role of Caste in Decision-making Process)—भारत में जातियाँ संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, संविधान में अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लिए आरक्षण के प्रावधान रखे गये हैं जिनके कारण ये जातियाँ संगठित होकर सरकार पर दबाव डालती है कि इन सुविधाओं को और अधिक वर्षों के लिए अर्थात् जनवरी 2000 तक के लिए बढ़ा दिया जाये। अन्य जातियाँ चाहती हैं कि आरक्षण समाप्त किया जाय अथवा इसका आधार सामाजिक-आर्थिक स्थिति हो अथवा उन्हें आरक्षित सूची में शामिल किया जाय ताकि वे इसके लाभ से वंचित न रह जायें।
2. **राजनीतिक दलो में जातिगत आधार पर निर्णय** (Caste-oriented decisions at the level of Political Parties)—भारत में सभी राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हैं। प्रत्येक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत गणित का अवश्य विश्लेषण करते हैं। 1962 में गुजरात के चुनाव में स्वतन्त्र पार्टी की सफलता का राज उसका क्षत्रिय जाति के समर्थन में छिपा हुआ था। हरिजन-मुसलमान-ब्राह्मण शक्तिपुंज बनाकर ही 1971 का आम चुनाव कांग्रेस ने जीता था। 1977 में जनता पार्टी की विजय का कारण उसे मुसलमानों और हरिजनो के साथ उच्च जातियों का प्राप्त समर्थन था। जनवरी 1980 के सप्तम लोकसभा चुनावो में काग्रेस (इन्दिरा) की विजय का कारण है कि श्रीमती गांधी हरिजनो, ब्राह्मणों और मुसलमानों का जातीय समर्थन जुटाने में सफल हो गयी।' नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावो ने उत्तर प्रदेश और बिहार में जनता दल की अपूर्व विजय का एक कारण जाट-राजपूत समर्थन है। उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी का उदय और आधार कतिपय पिछड़ी जातियों के समर्थन पर निर्भर है। कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दलों में जातीय आधार पर अनेक गुट पाये जाते हैं जिनमें प्रतिस्पर्धा की भावना विद्यमान रहती है।
3. **जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार** (Caste-oriented voting behaviour)—भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड रहा है उस निर्वाचन क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्राय: उकसाया जाता है ताकि सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके।

TOUCH 'n' PASS

जनवरी 1980 के चुनावो में उत्तर प्रदेश और कुछ बिहार के हिस्सों में लोकदल की सफलता पिछड़ी जातियों की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। उत्तर प्रदेश के चुनावों में चरण सिंह की सफलता सदैव ही जाट जाति के मतो की एकजुटता पर निर्भर रही है। केरल के चुनावों में साम्यवादी और मार्क्सवादी दलों ने भी नोट जुटाने के लिए सदैव जाति का सहारा लिया है।

4. **मन्त्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व** (Caste representation in the Ministry making)—राजनीतिक जीवन में जातीयता का सिद्धान्त इतना गहरा धंस गया है कि राज्यों के मन्त्रिमण्डल में प्रत्येक प्रमुख जाति का मन्त्री होना चाहिए। यह सिद्धान्त प्रान्तो की राजधानियों से ग्राम पंचायतों तक स्वीकृत हो गया कि प्रत्येक स्तर पर प्रधान जाति को प्रतिनिधित्व मिलना ही चाहिए। यहाँ तक कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी हरिजनों, जनजातियों, सिक्खो, मुसलमानों, ब्राह्मणों, जाटो, राजपूतो और कायस्थो को किसी न किसी रूप में स्थान अवश्य दिया जाता है।
5. **जातिगत दवाव समूह** (Caste as Pressure Groups)—मेयर के अनुसार, 'जातीय संगठन राजनीतिक महत्त्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्त है।' जातिगत दबाव समूह अपने स्वार्थों एवं हितों की पूर्ति के लिए नीति-निर्माताओं को जिस ढंग से प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं उससे तो उनकी तुलना यूरोप और अमेरिका में पाये जाने वाले ऐच्छिक समुदायों में की जा सकती है।

   अनेक जातीय संगठन और समुदाय जैसे तमिलनाडु में नाडार जाति संघ, गुजरात में क्षत्रिय महासभा, बिहार में कायस्थ सभा आदि राजनीतिक मामलों मे रुचि लेने लगते हैं और अपने-अपने संगठित बल के आधार पर राजनीतिक सौदेबाजी भी करते हैं। यद्यपि देश की सभी प्रमुख जातियों को इस प्रकार पूर्णतया संगठित नहीं किया जा सका है। मगर जो जातियाँ इम प्रकार संगठित नहीं हो सकी, वे राजनीतिक सौदेबाजी में सफल नहीं रही और उनके सदस्यों को अपनी आवाज उठाने के लिए उपद्रव और तोड-फोड का सहारा लेना पड़ा।
6. **जाति एवं प्रशासन** (Caste and Administration)—लोकसभा और विधान सभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नति के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एवं इन्जीनियरिंग कॉलेजो में विद्यार्थी की भर्ती हेतु आरक्षण के प्रावधान मौजूद हैं। चरणसिंह सरकार ने तो अल्पकाल में एक अध्यादेश के माध्यम से पिछड़ी जातियों के लिए केन्द्रीय सरकार की सेवा में आरक्षण व्यवस्था घोषित करने की मंशा प्रकट की और इस सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी ताक में रख दिया। यदि यह अध्यादेश लागू हो जाता तो मध्यम जातियों जैसे अहीर, यादव, कुर्मी आदि को भी आरक्षण के अवसर मिल जाते। ऐसा भी माना जाता है कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय अथवा निर्णयो के क्रियान्वयन में प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते हैं।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VIII

राज्य राजनीति
State Politics

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राज्य के तत्त्व लिखिए।
Write the elements of state.

उत्तर राज्य के चार तत्त्व हैं—1. जनसंख्या, 2. निश्चित भूमि, 3. सरकार, 4. प्रभुसत्ता या राजसत्ता।

प्र.2. राज्य और सरकार में कोई दो अन्तर बताइए।
Give any two differences between state and government.

उत्तर 1. राज्य अमूर्त और सरकार मूर्त हैं—राज्य एक अमूर्त धारणा है जबकि सरकार एक मूर्त, ठोस यन्त्र है जो व्यक्तियों की निश्चित संख्या के योग से बनती है।

2. सरकार राज्य का अंग है—सरकार राज्य के लिए आवश्यक चार तत्त्वों में से एक है जबकि राज्य अपने आप में एक व्यापक अवधारणा है।

प्र.3. प्रभुसत्ता के लक्षण लिखिए।
Write the characteristics of sovereignty.

उत्तर प्रभुसत्ता के निम्नलिखित लक्षण हैं—पूर्णता, सार्वभौमिकता, अदेयता, स्थायित्व, अविभाज्यता, अनन्यता आदि।

प्र.4. प्रभुसत्ता के प्रकार बताइए।
State the types of sovereignty.

उत्तर प्रभुसत्ता के विभिन्न रूप—1. नाम मात्र तथा वास्तविक प्रभुसत्ता, 2. वैधानिक प्रभुसत्ता, 3. राजनीतिक प्रभुसत्ताएँ, 4. लौकिक प्रभुसत्ताएँ, 5. विधित: और वस्तुत: प्रभुसत्ताएँ।

प्र.5. राज्य और शासन को परिभाषित कीजिए।
Define state and governance.

उत्तर हम लोग अपने दिन-प्रतिदिन के वार्तालाप में राज्य एवं शासन को पर्यायवाची मानते हैं। इस संबंध में एक फ्रेंच किसान की यह कथा बड़ी रोचक है कि वह अपने देश की लोकसभा के भवन में प्रवेश करना चाहता था। जब संतरी ने उसे टोका तो उसने कहा, 'मैं राज्य से मिलना चाहता हूँ।' राज्य और शासन को एक मानने की प्रवृत्ति केवल जन-साधारण तक ही सीमित नहीं है, यह बहुत से राजनीतिक विचारकों में भी दिखाई देती है। उदाहरणार्थ, क्रोक (Croce) का कहना है कि, 'राजनीतिक दृष्टि से राज्य एवं शासन एक ही चीज है।' इसी भाँति जी. डी. एच. कोल का विचार है कि, 'राज्य एक समुदाय की शासन व्यवस्था के अतिरिक्त कुछ नहीं है। हैनरी कोईन, डब्लू जी. सुमनर, एच जी केलर तथा लास्की आदि विचारकों का भी यही मानना है। लास्की का कहना है कि, 'राज्य एवं शासन का भेद व्यावहारिक महत्त्व का नहीं है वह सैद्धान्तिक रुचि का भले ही है। हमारे सामने राज्य का जो कार्य आता है। वह वस्तुत: शासन का कार्य होता है। राज्य और शासन को एक मानने की इस प्रवृत्ति के बावजूद, हमें उनके शैक्षणिक भेद को समझ लेना चाहिए।

प्र.6. राज्य कितने प्रकार के होते हैं?
What are the types of states?

उत्तर भारत में दो प्रकार के राज्य हैं—1. पूर्ण राज्य, 2. केन्द्र शासित प्रदेश।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. राज्य के मुख्य तत्व क्या हैं?
What are the key elements of state?

उत्तर डॉ. गार्नर के अनुसार, राज्य के चार आवश्यक तत्व हैं—(1) मनुष्यों का समुदाय, (2) एक प्रदेश, जिसमें वे स्थायी रूप से निवास करते हैं, (3) आन्तरिक सम्प्रभुता तथा बाहरी नियन्त्रण से स्वतन्त्रता, (4) जनता की इच्छा को कार्यरूप में परिणित करने हेतु एक राजनीतिक संगठन।

प्र.8. राज्य का विकास कैसे हुआ?
How the state developed?

उत्तर राज्य के विकास में परिवार की मुख्य भूमिका रही है। अरस्तू के अनुसार राज्य परिवार और ग्रामों का समूह है। सर्वप्रथम व्यक्ति ने संगठित होकर परिवार को जन्म दिया और धीरे-धीरे परिवार से गोत्र,गोत्र से जन तथा जन से राज्य का विकास हुआ। इतिहास में पितृमूलक और मातृमूलक दोनों प्रकार के परिवारों का वर्णन मिलता है।

प्र.9. भारत में राज्यों की राजनीति क्या है?
What is state politics in India?

उत्तर संविधान के अनुसार, भारत एक प्रधान, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक राज्य है, जहाँ पर विधायिका जनता के द्वारा चुनी जाती है। अमेरिका की तरह, भारत में भी संयुक्त सरकार होती है, लेकिन भारत में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों की तुलना में अधिक शक्तिशाली है, जो कि ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली पर आधारित है।

प्र.10. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का प्रमुख आधार क्या है?
What is the main basis of Indian political system?

उत्तर संविधान के अनुसार, भारत एक प्रधान, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक राज्य है, जहाँ पर विधायिका जनता के दवारा चुनी जाती है। अमेरिका की तरह, भारत में भी संयुक्त सरकार होती है, लेकिन भारत में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों की तुलना में अधिक शक्तिशाली है, जो कि ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली पर आधारित है।

प्र.11. राज्य की प्रकृति क्या है?
What is the nature of state?

उत्तर कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित राज्य के सप्तागों में से अधिकांश आधुनिक परिभाषा में भी राज्य के अस्तित्व के लिये अपरिहार्य माने जाते हैं। राज्य के आधुनिक अनिवार्य अंग प्रभुसत्ता, सरकार, भूमि तथा जनसंख्या है। ये सप्तांग सिद्धान्त के अन्तर्गत स्वामी, अमात्य तथा जनपद में व्यक्त किये गये हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राज्य के विभिन्न तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।
Explain the various elements of state.

उत्तर

राज्य के तत्त्व
(Elements of State)

राज्य की परिभाषाओं से पता चलता है कि इसके चार तत्त्व हैं—1. जनसंख्या, 2. निश्चित भूमि, 3. सरकार, 4. प्रभुसत्ता या राजसत्ता। राज्य के ये चारों तत्त्व अनिवार्य है।

1. **जनसंख्या** (Population)—राज्य के बनने के लिए जनसंख्या आवश्यक है। बिना जनसंख्या के राज्य नहीं बन सकता। किसी निर्जन प्रदेश को राज्य नहीं कहा जा सकता। जनसंख्या की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। परन्तु राज्य में आबादी उसके साधनों के अनुपात में हो तो अच्छा है।
2. **निश्चित प्रदेश या भूमि** (Territory)—राज्य का दूसरा आवश्यक अंग निश्चित भूमि है। जनसंख्या की भाँति यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि आदर्श राज्य के लिए कितना क्षेत्रफल आवश्यक है। कुछ समय पहले लेखकों का मत था कि आदर्श राज्य में काफी खाद्य सामग्री उत्पन्न करने वाली भूमि होनी चाहिए जिससे नागरिकों को दूसरे देशों पर निर्भर नहीं रहना पड़े। परन्तु आजकल यह धारणा गलत हो गई है। इंग्लैण्ड में इतनी ही खाद्य सामग्री उत्पन्न होती है जो कि वर्ष भर पूरी न पड़े लेकिन वहाँ के लोग उद्योग धन्धों से इतना धन उत्पन्न कर लेते हैं कि वे खाद्य वस्तुऐं दूसरे देशों से आसानी से खरीद सकें। यदि किसी राज्य के पास अधिक भूमि हो तो वह उसके लिए शक्तिदायक सिद्ध होती है।

TOUCH 'n PASS

अमेरिका का क्षेत्रफल 30,26,789 वर्गमील है, भारत का क्षेत्रफल 12,61,323 वर्गमील है। कई राज्य ऐसे हैं जिनका क्षेत्रफल बहुत थोड़ा है। अत: राज्य के लिए क्षेत्रफल निश्चित नहीं किया जा सकता फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि छोटे राज्यों की अपेक्षा बड़े राज्य अधिक उपयोगी रहते हैं क्योंकि वे अधिक शक्तिशाली होते हैं और उनमें विभिन्न जातियों के मिश्रण के कारण उदार भावना बनी रहती है।

3. **सरकार** (Government)—सरकार राज्य का तीसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। सरकार वह एजेन्सी है जिसके द्वारा राज्य की इच्छा प्रकट होती है और क्रियान्वित होती है। सरकार के द्वारा ही समाज में संगठन उत्पन्न होता है।
4. **प्रभुसत्ता** (Sovereignty)—राजसत्ता राज्य का प्राण है। इसके बिना राज्य नहीं बन सकता। राजसत्ता का अर्थ है राज्य की सर्वोच्च शक्ति। राजसत्ता दो प्रकार की होती है—बाहरी और अंदरूनी। बाहरी सत्ता का अर्थ है कि देश किसी बाहरी शक्ति के अधिन ना हो। उदाहरण के लिए 1947 से पूर्व भारत अंग्रेजों के अधीन था, अत: भारत राज्य नहीं था वरन् ग्रेट ब्रिटेन ही राज्य था जिसका भारत पर स्वामित्त्व था। अन्दरुनी राज्यसत्ता का अर्थ है कि राज्य अपनी सब संस्थाओं और व्यक्तियों के ऊपर सर्वोच्च सत्ता रखता हो। किसी भी राज्य को किसी अन्य राज्य के व्यक्तियों और संस्थाओं पर नियन्त्रण रखने की आज्ञा नहीं दी जा सकती है।

सरकार के बिना मनुष्यों के समूह अव्यवस्थित रहेंगे और उनमें अशांति बनी रहेगी। सरकार के तीन अंग होते हैं—कार्यपालिका, विधानमण्डल और न्यायपालिका। कार्यपालिका देश का शासन चलाती है और कानून को लागू करती है, विधानमण्डल कानून को बनाता है और न्यायपालिका कानूनों की व्याख्या करती है। जो व्यक्ति सरकार के नियम और कानूनों का पालन नहीं करते सरकार उन्हें दण्डित करती है। राज्य में सरकार किस प्रकार की हो उसके कोई निश्चित नियम नहीं हैं। जहाँ भारत, इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैण्ड, फ्रांस, इटली आदि में लोकतन्त्र है वहीं चीन, फिनलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, हंगरी और पौलेण्ड आदि देशों में कम्युनिस्ट पार्टी लम्बे समय से सत्तारुढ़ है। कई देशों में संसदीय सरकार है तो कई देशों में अध्यक्षात्मक सरकार है। इससे सिद्ध होता है कि राज्य बनाने के लिए सरकार का रूप निश्चित नहीं है।

प्र.2. राज्य और सरकार में अन्तर बताइए।
Differentiate between state and government.

उत्तर

राज्य और सरकार में अन्तर
(Difference between State and Government)

1. राज्य अमूर्त और सरकार मूर्त है—राज्य एक अमूर्त धारणा है जबकि सरकार एक मूर्त, ठोस यन्त्र है जो व्यक्तियों की निश्चित संख्या के योग से बनती है।
2. सरकार राज्य की एजेण्ट होती है – सरकार के माध्यम से राज्य अपनी इच्छा को प्रकट करता है। सरकार राज्य के लक्ष्यों को पूरा करती है और अपनी सभी शक्तियाँ राज्य से अर्थात् उसके सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व जनता से ग्रहण करती है।
3. सरकार राज्य का अंग है—सरकार राज्य के लिए आवश्यक चार तत्त्वों में से एक है जबकि राज्य अपने आप में एक व्यापक अवधारणा है।
4. राज्य के पास राजसत्ता है सरकार के पास नहीं – राजसत्ता राज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। सरकार के पास राजसत्ता नहीं रहती, क्योंकि लोकतन्त्र में जनता सरकार की सभी शक्तियों का स्रोत मानी जाती है।
5. सरकार परिवर्तनशील राज्य स्थायी—राज्य का अस्तित्त्व स्थायी होता है तथा सदैव एक जैसा रहता है। राज्य के लिए आवश्यक चारों तत्त्वों का जहाँ संयोग होगा वहाँ राज्य बन जायेगा। परन्तु सरकारों के अनेक रुप होते हैं तथा सरकारें परिवर्तनशील होती हैं। सरकारों में परिवर्तन अनेक कारणों से हो सकते हैं, जैसे निर्वाचन, सैनिक क्रान्ति, विद्रोह, आक्रमण आदि। किन्तु सरकार में परिवर्तन होने के पश्चात भी राज्य का अस्तित्व बना रहता है।
6. राज्य की सदस्यता अनिवार्य, सरकार की नहीं व्यक्ति जन्म होते ही राज्य का अनिवार्य रुप से सदस्य बन जाता है। इस प्रकार राज्य की सदस्यता अनिवार्य होती हैं। जबकि सरकार का सदस्य बनना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है।
7. राज्य के लिए क्षेत्र अनिवार्य, सरकार के लिए नहीं कई बार एक प्रदेश की सरकार दूसरे राज्य में भी स्थापित हो जाती है। उदाहरण के लिए दूसरे विश्व युद्ध में जब नार्वे की जर्मनी से हार हो गयी तो नार्वे की सरकार इंग्लैण्ड में आ गयी और वहीं से कार्य करने लगी। दूसरे विश्व युद्ध के अन्त में जब जर्मनी की पराजय हुई तो नार्वे का सम्राट अपने देश को लौट गया

TOUCH N PASS

और नार्वे की कानूनी सरकार अपने देश में दुबारा काम करने लगी। जबकि राज्य का अपना एक निश्चित क्षेत्र होता है। जिसके बिना राज्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

8. सरकार का विरोध किया जा सकता है राज्य का नहीं—सरकार की अनुचित अथवा जन-विरोधी नीतियों और कार्यों का नागरिक विरोध कर सकते हैं जबकि राज्य एक अमूर्त संस्था है जिसका कि नागरिक विरोध नहीं कर सकते।

प्र.3. अधिकारों और राज्य में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
Explain the relationship between rights and state.

उत्तर

अधिकार और राज्य
(Rights and State)

राज्य और अधिकारों का संबंध-अधिकारों और राज्य में क्या संबंध है इस प्रश्न के हमें दो उत्तर मिलते हैं। एक उत्तर प्राकृतिक अधिकारों (Natural rights) के सिद्धांत के समर्थकों का है। इस सिद्धांत के अनुसार अधिकार राज्य के पूर्ववर्ती होते हैं। प्रकृति उन्हें मनुष्यों को प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में वे जन्मजात होते हैं। अधिकारों और राज्य के संबंध के बारे में दूसरा उत्तर अधिकारों के कानूनी सिद्धांत के समर्थकों का है। इस सिद्धांत के अनुसार अधिकारों की सृष्टि राज्य द्वारा होती हैं। नागरिक केवल उन्हीं अधिकारों का उपभोग कर सकता है जो उसे राज्य द्वारा प्राप्त होते हैं। राज्य के कानून नागरिक को जिस कार्य के करने की अनुमति नहीं देते, वह कार्य अधिकार का रूप धारण नहीं कर सकता।

यद्यपि प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत में एक महत्त्वपूर्ण सत्य निहित है, लेकिन उसे सर्वांश में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह सही है कि राज्य समस्त अधिकारों की सृष्टि नहीं करता। लेकिन यह भी नहीं माना जा सकता कि अधिकारों का अस्तित्व राज्य-संस्था से पृथक होता है या वे राज्य के नियंत्रण से सर्वथा स्वतंत्र होते हैं। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि अधिकारों का उपभोग केवल एक सभ्य समाज में ही किया जा सकता है समाज से पृथक अधिकार नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं हो सकता। आदिम समाज में मनुष्य शक्तियों का उपभोग करते थे, अधिकारों का नहीं। शक्तियों का मूल शारीरिक बल है जबकि अधिकार संपूर्ण समाज की सामान्य सहमति और सामान्य प्रेरणा पर आधारित होते हैं। इसी प्रकार जंगल के पशु शक्तियों का उपभोग करते हैं, अधिकारों का नहीं। सभ्य समाज में विभिन्न व्यक्तियों की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं में आकाश-पाताल का अंतर होता है, लेकिन इस अंतर के होते हुए भी वे सर्वसामान्य अधिकारों का समान रीति से प्रयोग करते हैं उदाहरण के लिए हम जीवन-रक्षा के अधिकार को ले सकते हैं। इस अधिकार का प्रयोग लोग इसीलिए तो कर सकते हैं क्योंकि उनकी पीठ पर राज्य की शक्ति होती है। यदि उनकी पीठ पर राज्य की सत्ता न हो तो इस बात की शंका हो सकती है कि कुछ लोग इस अधिकार का उल्लंघन करें।

सभ्य समाज में यदि कोई व्यक्ति इस अधिकार का उल्लंघन करता है, तो राज्य उसे दंड देता है। इस प्रकार हम यह नहीं कह सकते कि राज्य ही सब अधिकारों का स्पष्टा है। परंतु, हम यह अवश्य कह सकते हैं कि राज्य अधिकारों की रक्षा करता है। इसी बात को **वाइल्ड** (wilde) ने कहा है, "कानून अधिकारों की सृष्टि नहीं करते परंतु उन्हें स्वीकार और उनकी रक्षा करते हैं।" कहने का सार यह है कि अधिकारों का पालन केवल राज्य में कानूनों के अंतर्गत ही संभव है।

प्र.4. राज्य और समाज में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Differentiate between state and society.

उत्तर

राज्य और समाज में अंतर
(Difference between State and Society)

साधारणत: राज्य और समाज को अनेक विद्वानों द्वारा समानार्थी समझा गया है। प्राचीन यूनानी चिंतक प्लेटो तथा अरस्तु राज्य तथा समाज में कोई भेद नहीं करते थे, किंतु यथार्थ में इन दोनों में पर्याप्त अंतर है। समाज और राज्य में मुख्य अंतर निम्न प्रकार हैं—

1. **उत्पत्ति की दृष्टि से अंतर**—उत्पत्ति की दृष्टि से समाज राज्य का प्रवर्ती है अर्थात् पहले समाज की उत्पत्ति हुई और बाद में राज्य का जन्म हुआ। आदिम युग के मनुष्यों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उस समय समाज का प्रादुर्भाव हो चुका था, भले ही वह असंगठित था, लेकिन राज्य नहीं था। कालांतर में धीरे-धीरे राज्य का विकास हुआ।
2. **आकार की दृष्टि से अंतर**—आकार की दृष्टि से समाज राज्य से अधिक विस्तृत तथा व्यापक है। समाज मनुष्यों के राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक आदि विभिन्न पक्षों से संबंधित रहा है, जबकि राज्य का संबंध केवल मनुष्य के राजनीतिक पक्ष से है। इस प्रकार समाज का आकार राज्य से अपेक्षाकृत बड़ा है।

TOUCH 'n' PASS

3. **उद्देश्य की दृष्टि में अंतर**—समाज तथा राज्य में उद्देश्य की दृष्टि से भी पर्याप्त अंतर है। समाज का उद्देश्य मनुष्य का बहुमुखी विकास करना है, जबकि राज्य का एक सीमित उद्देश्य है। राज्य मनुष्य के विकास के लिए अनुशासन बनाए रखने का प्रयास करता है। राज्य का एकमात्र मुख्य उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था को स्थापित करते हुए नागरिकों को संरक्षण और अवसर प्रदान करना है। **वार्कर** के शब्दों में, "उद्देश्य की दृष्टि से दोनों भिन्न हैं। राज्य केवल एक महान किंतु एक ही उद्देश्यों के लिए होता है। समग्र रूप में ये सभी उद्देश्य व्यापक और अत्यंत गंभीर होते हैं।"
4. **संगठन की दृष्टि से अंतर**—समाज तथा राज्य में संगठनात्मक दृष्टि से भी अंतर है। समाज अनेक समुदायों से मिलकर बनता है। अर्थात् समाज के अंतर्गत विभिन्न समुदायों का अस्तित्व होता है। ये समुदाय संगठित तथा असंगठित दोनों प्रकार के हो सकते हैं। राज्य भी राज्य के कई समुदायों में एक समुदाय है। किंतु राज्य एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में संगठित होता है। इस प्रकार समाज संगठित तथा असंगठित दोनों प्रकार का हो सकता है, लेकिन राज्य हमेशा संगठित होता है। क्योंकि राज्य की एक निश्चित प्रकार की संगठित राजनीतिक व्यवस्था होती है।

प्र.5. राज्य के कार्यक्षेत्र की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
State the limits of the scope of the state.

उत्तर

राज्य के कार्यक्षेत्र की सीमाएँ
(Limits of the Scope of the State)

राज्य को उसके कार्यक्षेत्र की दृष्टि से अनेक भागों में वर्गीकृत किया गया है। राज्य के कार्य उसकी प्रकृति के अनुसार निर्धारित होते हैं। पूर्व में राज्य की प्रकृति के अनुसार राज्य के कार्यों का विवेचन किया गया है। प्रत्येक राज्य को अपने वास्तविक उददेश्य की प्राप्ति के लिए कार्यों को सम्पन्न करना चाहिए किन्तु कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिन्हें राज्य को नहीं करना चाहिए।
राज्य की सीमाओं को निम्नलिखित रूप में इंगित किया जा सकता है—

लोकमत—राज्य को किसी भी स्थिति में लोकमत के विरूद्ध कार्य नहीं करने चाहिए। व्यक्तियों की सुरक्षा एवं कल्याण हेतु राज्य का निर्माण किया गया है। व्यक्ति राज्य का आधारभूत अंग है। व्यक्ति की इच्छाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए कानूनों का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है। अत: राज्य को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि राज्य सत्ता का प्रयोग करते समय जनता की स्वतंत्रताओं विशेषत: विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अनावश्यक रूप से प्रतिबन्धित न करे। यदि राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रताओं का उल्लंघन करेगा तो उसका यह आक्रोश विद्रोह का रूप धारण कर सकता है जिससे राज्य अपनी गतिविधियों का सुचारू रूप से निर्वहन नहीं कर सकेगा।

धर्म—धर्म व्यक्ति की वैयक्तिक धारणा है और उसके प्रति वह अत्यधिक संवेदनशील होता है राज्य द्वारा किसी व्यक्ति पर यह दबाव डालना कि वह धर्म विशेष को माने अथवा न माने, अनुचित है। राज्य द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए, साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति एवं संस्था द्वारा व्यक्ति को धर्म विशेष मानने के लिए बाध्य न किया जाए।

नैतिकता—धर्म के समान नैतिकता भी व्यक्ति का वैयक्तिक विषय है। राज्य द्वारा इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह अपनी कोई नैतिक संहिता व्यक्तियों पर बलपूर्वक न थोपे। राज्य को ऐसा वातावरण अवश्य विकसित करना चाहिए जिसमें व्यक्तियों का नैतिक विकास सम्भव हो। ग्रीन के शब्दों में "राज्य को केवल ऐसे कार्य करने के लिए बाध्य करना चाहिए जिसके करने या न करने से समाज के नैतिक स्तर में गिरावट का भय हो।" नैतिकता एक भावात्मक विषय है जिस पर राज्य नियंत्रण नहीं लगा सकता। यदि राज्य नैतिकता पर अंकुश लगाता है तो नागरिक चरित्र का ह्रास होगा, परिणामस्वरूप समाज में भ्रष्टाचार व अपराधों में वृद्धि होगी।

व्यक्ति का व्यक्तिगत दैनन्दिन व्यवहार—व्यक्ति को अपनी दैनिक गतिविधियों को सम्पन्न करने में स्वतंत्र रहने देना चाहिए। यदि व्यक्ति के दैनंदिन व्यवहार में राज्य हस्तक्षेप करता है तो लोगों की भावनाएँ आहत होती हैं व उनके मन में राज्य के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है।

फैशन—फैशन द्वारा बातचीत के ढंग, विश्वास, वेशभूषा, संगीत कला और साहित्य को निर्धारित किया जाता है। फैशन का सम्बन्ध व्यक्तिगत रूचियों और अरूचियों से होता है। अत: राज्य को उस पर नियंत्रण लगाने में कठिनाई का सामना करना पड़

TOUCH 'n PASS

सकता है। यदि फैशन समाज में अश्लीलता को बढावा दे, समाज की मान्यताओं के विरूद्ध हो, शिष्टता और नैतिकता के विरूद्ध हो तो राज्य इन पर प्रतिबंध लगा सकता है। ये प्रतिबन्ध विवेकसम्मत होने चाहिए। अनावश्यक प्रतिबन्ध राज्य के लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बन सकते हैं।

प्र.6. राज्य के अनिवार्य और ऐच्छिक कार्यों का उल्लेख कीजिए।
Mention the compulsory and optional functions of the state.

उत्तर

राज्य के कार्य
(Functions of the State)

राज्य के कार्यों के लिए कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते। राज्य के कार्यों का स्वरूप समय, परिस्थिति, विचारधारा एवं आवश्यकता के अनुसार बदलता रहता है। राज्य के कार्य आर्थिक स्त्रोतों, प्राकृतिक साधनों, लोगों की जागरूकता एवं राजनीतिक चेतना के विकास पर निर्भर हैं। आधुनिक राज्यों के कार्यों को मुख्यत: निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है—
(1) अनिवार्य कार्य, (2) ऐच्छिक कार्य।

1. **अनिवार्य कार्य**—अनिवार्य कार्यों से अभिप्राय उन कार्यों से है जिनको करना प्रत्येक सरकार के लिए अपरिहार्य हो, अर्थात् जिनके न करने से राज्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता हो । राज्य के अनिवार्य कार्य मुख्यत: निम्न हैं—
   (i) बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा
   (ii) आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था की स्थापना
   (iii) राज्य द्वारा अपराध तथा दण्ड संबंधी नियमों का निर्माण और न्याय का समुचित प्रबंध व व्यवस्था करना
   (iv) राजस्व एकत्रित करना
   (v) विधि निर्माण करना क्योंकि विधियों के द्वारा ही राज्य अपनी सम्प्रभुता को यथार्थ रूप प्रदान करता है।
   (vi) अन्य राज्यों के साथ संबंध स्थापित करना भी राज्य का अनिवार्य कार्य है।
2. **ऐच्छिक कार्य**—ऐच्छिक कार्यों से अभिप्राय उन कार्यों से है जो राज्य के अस्तित्व और व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सुरक्षा के लिए अनिवार्य नहीं होते। ये कार्य देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार बदलते हैं। इन कार्यों को राज्य के लोक कल्याणकारी कार्यों के नाम से भी जाना जाता है। सामाजिक कल्याण की भावना से इन कार्यों में स्वत: वृद्धि हो रही है । ये कार्य निम्नलिखित हैं—
   (i) **शिक्षा की व्यवस्था करना**—एक अच्छे राज्य में जनसाधारण में शिक्षा और राजनैतिक चेतना होनी चाहिए। अत: राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह सामान्य जनता की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करे।
   (ii) **सफाई और सार्वजनिक स्वास्थ्य**—राज्य को बीमारी की रोकथाम एवं चिकित्सालयों की व्यवस्था करनी चाहिए। स्वास्थ्य की दृष्टि से उसे खाने पीने की वस्तुओं को शुद्ध रखने का भी प्रयास करना चाहिए।
   (iii) **व्यापार एवं उद्योग पर नियंत्रण**—राज्य को व्यापार एवं उद्योगों पर यथोचित नियंत्रण रखना चाहिए, जिससे व्यापारियों की अधिकतम भलाई हो और देश की प्रगति हो। उद्योगों के संबंध में कानून बनाते समय राज्य को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि श्रमिकों के साथ किसी भी प्रकार का अन्याय न हो।
   (iv) **भारी उद्योगों का संचालन**—बड़े बड़े उद्योगों तथा व्यापार का संचालन सामाजिक हित की दृष्टि से राज्य को करना चाहिए।
   (v) **मनोरंजन की सुविधाएँ**—राज्य को नागरिकों के मनोरंजन के लिए पार्कों, आकाशवाणी, चलचित्र, वाचनालयों आदि की व्यवस्था करनी चाहिए।
   (vi) **समाज सुधार**—सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन कर, मनुष्यों को सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान करना राज्य का कर्त्तव्य है। राज्य का कर्त्तव्य है कि शारीरिक व मानसिक दृष्टि से विशेष योग्यजनों आदि के उपचार तथा सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करे।

TOUCH 'n' PASS

(vii) **यातायात का प्रबन्ध**—यातायात रेल के साधनों की व्यवस्था करना भी राज्य का ही कर्त्तव्य है। सड़क, रेल, वायु, जल आदि सभी साधनों की व्यवस्था राज्य को करनी चाहिए क्योंकि आवागमन के सुलभ साधनों द्वारा सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है।

प्र.7. राज्य के कल्याणकारी कार्यों को लिखिए।
Write the welfare functions of the state.

उत्तर

राज्य के कल्याणकारी कार्य
(Welfare Functions of the State)

1. **कानून और व्यवस्था की स्थापना** (Maintenance of Law and Order)—चोर डाकुओं से लोगों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करना तथा कानून और व्यवस्था की स्थापना करना शुरू से ही भारत तथा संसार के कई अन्य देशों में राज्य का लक्ष्य रहा है। महाभारत तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट लिखा है कि आदिकाल में भारत में अराजकता फैली हुई थी, इसलिए इस परिस्थिति को दूर करने के लिए राज्य की नींव पड़ी। अत: शुरू से ही राज्य का कार्य कानून और व्यवस्था की स्थापना चला आया है। महाभारत में लिखा है कि जिस जगह राजा (या सरकार) न हो, वहाँ पर व्यक्ति को निवास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वहाँ पर उसका जीवन और सम्पत्ति, सदैव खतरे में रहते हैं। व्यक्तिवादी और समाजवादी लेखक सभी इस बात पर बहुत बल देते हैं।
2. **सामाजिक तथा सार्वजनिक कल्याण** (Social and Public Welfare)—राज्य का उद्देश्य केवल कानून और व्यवस्था की स्थापना तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका लक्ष्य सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण भी है। जब व्यक्ति समाज में साथ-साथ रहते हैं तो उनके बीच कुछ सामान्य हित पैदा होते हैं, जिनकी सिद्धि में सामाजिक भलाई निहित है। इन सामान्य हितों को सिद्ध करने का प्रयत्न करना राज्य का कार्य है। रोटी, कपड़ा और मकान- वे प्राथमिक और सामान्य हित है, जिनकी उपलब्धि करवाना राज्य का दायित्व है। तदुपरांत राज्य सभी सामाजिक बुराईयों को दूर करता है और अच्छी शिक्षा पद्धति द्वारा उसकी उन्नति करता है ताकि समाज के व्यक्ति अच्छे नागरिक बन जाए और समाज के अधिक से अधिक उपयोगी अंग बन सकें। आदर्श नागरिकों का निर्माण अच्छी शिक्षा पद्धति द्वारा ही हो सकता है और सभी राज्य इस दिशा में विशेष प्रयत्न कर रहे हैं। भारत में बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, छुआछूत इत्यादि सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए राज्य ने विशेष रूप से कानून बनाये हैं। अशिक्षा को भी दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। राज्य के सार्वजनिक हित से जुड़े होने का यह विचार नया नहीं है। यूनानी नगर राज्यों में प्लेटो और अरस्तू, मध्यकाल के राजनीतिक धर्म तत्वज्ञ, बेंथम और मिल जैसे उपयोगितावादी दार्शनिक, कार्ल मार्क्स जैसे समाजवादी, ग्रीन तथा लॉस्की जैसे सकारात्मक तथा उदारवादी तथा भारत में गाँधी-दर्शन आदि सभी इससे जुड़े रहे है।
3. **न्याय की स्थापना** (Establishment of Justice)—न्याय को स्थापित करना भी अत्यन्त आवश्यक है, वरना बलवान व्यक्ति निर्बलों को अकारण तंग करेंगे और उनके जीवन, सम्पत्ति को खतरे में डाल देंगे। राज्य लोगों के जीवन, सम्पत्ति और स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए कानून बनाते हैं। कानून तोड़ने वालों को न्यायाधीश दण्ड देते हैं और जिनकी सम्पत्ति, जीवन तथा स्वतंत्रता को हानि हुई हो, उनकी रक्षा करते हैं।
4. **आर्थिक कल्याण** (Economic Welfare)—आधुनिक राज्य निर्धनता को दूर करने के लिए योजनाएँ बनाते हैं। भारत में इस हेतु पंचवर्षीय योजनाएँ तथा सामुदायिक विकास योजनाएँ चलाई गई हैं। इससे राष्ट्रीय आय (आमदनी) बढ़ी है और आर्थिक स्तर ऊँचा हुआ है।
5. **राजनीतिक कल्याण** (Political Welfare)—राजनीतिक कल्याण के लिए लोगों को कुछ मौलिक अधिकार दिए जाते हैं और लोकतंत्र की स्थापना की जाती है। भारत में ऐसा ही किया गया है। भारत में सभी वयस्कों को वोट का अधिकार दिया गया है और 25 वर्ष का प्रत्येक भारतवासी चुनाव में विधान सभा और लोकसभा सदस्य के लिए खड़ा हो सकता है।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राज्य की उत्पत्ति तथा विकास में सहायक तत्त्वों की व्याख्या कीजिए।

Explain the factors that contributed to the origin and development of the state.

उत्तर

राज्य की उत्पत्ति तथा विकास में सहायक तत्त्व
(Factors that Contributed to the Origin and Development of the State)

मनुष्य की सामाजिकता व समूह बनाकर रहने की प्रवृत्ति के कारण वे आदि मनुष्य भी, जो शिकार द्वारा अपना निर्वाह करते थे, टोली बनाकर रहते थे। उनमें भी एक प्रकार का संगठन विद्यमान था। मनुष्य ज्यादा दिनों तक शिकारी व असभ्य दशा में नहीं रहा। धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ वह सभ्यता की ओर बढ़ने लगा। उसकी यह उन्नति दो ढंग से हुई, कृषक रुप में और पशुपालक रूप में।

कृषक और पशुपालक जातियाँ—कुछ प्रदेश ऐसे थे, जो खेती के लिए अधिक अनुकूल थे। नदियों की घाटियाँ और जलाशयों के किनारे की जमीनें खेती के लिए अधिक उपयुक्त थीं। वहाँ अनाज सुगमता के साथ उत्पन्न हो सकता था। खेती का ज्ञान हो जाने पर जो लोग इन प्रदेशों में आए, स्वाभाविक रूप से उन्होंने खेती की ओर अधिक ध्यान दिया। खेती के लिए आवश्यक था कि वे स्थिर रुप से वहाँ बस जाएँ। वहाँ उन्होंने अपने मकान बना लिए। एक जगह बहुत से मकान बन जाने पर एक बस्ती या ग्राम का विकास हो गया। इन बस्तियों में जो लोग बसे, वे निरन्तर एक दूसरे के सम्पर्क में आते थे। उनमें सामूहिक भावना पहले भी विद्यमान थी। अब उनके लिए यह और अधिक आवश्यक हो गया, कि वे एक - दूसरे के प्रति उचित बर्ताव करें, किसी की सम्पत्ति का अपहरण न करें, किसी को नुकसान न पहुँचाएँ। जो कोई किसी के प्रति अनुचित बर्ताव करे, उसे दण्ड मिले। इसी कारण इन बस्तियों में एक प्रकार की राज्यसंस्था का विकास होने लगा।

नदियों की घाटियों व जलाशयों के समीपवर्ती स्थानों के अतिरिक्त बहुत से प्रदेश ऐसे भी थे, जो खेती के लिए बहुत उपयुक्त नहीं थे। इनमें या तो रेगिस्तान थे, या जंगल । इनमें रहने वाले मनुष्य न खेती की ओर आकृष्ट हुए और न ही वे किसी एक स्थान पर स्थिर रूप से आबाद ही हुए। शिकारी की दशा से ऊपर उठकर वे पशुपालन शुरू कर चुके थे। अब भी वे पशुपालक दशा में ही रहे। अपने पशुओं को साथ लेकर वे जंगलों या रेगिस्तानों में घूमते रहते थे, और जगह-जगह पर अपने डेरे डालकर उनमें निवास करते थे। एक स्थान पर न बसने के कारण सभ्यता के क्षेत्र में वे कृषक लोगों की अपेक्षा पीछे रह गए। पर धीरे-धीरे उनके संगठन भी अधिक सुदृढ़ और व्यवस्थित होते गए और उनमें भी शासक और शासित का भेद विकसित हो जाने के कारण एक प्रकार की सरकार का प्रादुर्भाव हो गया।

प्रारम्भिक राज्य—खेतों के परिज्ञान के कारण जिन प्रदेशों पर स्थिर रूप से बसकर मनुष्यों ने सबसे पहले अपनी बस्तियों का विकास शुरू किया, उनमें सबसे प्रमुख निम्नलिखित थे—(1) पश्चिम एशिया में यूफ्रेटिस और टिग्रिस नदियों की घाटी, (2) उत्तरी अफ्रीका में नील नदी की घाटी, (3) भूमध्यसागर में इंगियन सागर के तटवर्ती प्रदेश और विविध द्वीप, जिनमें क्रीट सर्वप्रथम था, (4) चीन में हाँग-हो और पिआंगतसे-कियांग नदियों की घाटियाँ, (5) भारत में सिन्धु नदी की घाटी।

इन विविध प्रदेशों में मनुष्यों की प्रारम्भिक बस्तियाँ बहुत छोटी-छोटी थीं। परन्तु धीरे-धीरे वे अपेक्षाकृत-विशाल राज्यों के रूप में परिणत होती गईं। इस प्रक्रिया को यूफ्रेटिस और टिग्रिस नदियों की घाटी के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इस घाटी के सबसे प्राचीन निवासी सुमेरियन लोग थे। वे 4500 ई.पू. के लगभग इस प्रदेश में आबाद हुए। वहाँ उन्होंने अपनी बहुत-सी छोटी-छोटी बस्तियाँ या राज्य कायम किये। शुरू में सुमेरिया के ये छोटे-छोटे राज्य पूर्णतया स्वतंत्र थे। पर धीरे-धीरे उनमें संघर्ष का प्रारम्भ हुआ। इनमें एरच का राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था। उसने अन्य सब राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया, और सम्पूर्ण सुमेरिया एरच की अधीनता में आ गया। जो प्रक्रिया सुमेरिया में हुई, वही मिस्त्र (नील नदी की घाटी), ईगियन क्षेत्र, चीन, भारत आदि में भी हुई।

प्रारम्भिक राज्यों का रूप—इन प्राचीनतम राज्यों में शासन का क्या स्वरूप था, इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमारे पास कोई साहित्यिक साधन नहीं है। इन राज्यों की दशा पर प्रकाश डालने वाले कोई ग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। पुरातत्त्व द्वारा जो कुछ ज्ञात हो सका है, उसके आधार पर इतिहासकारों का मत है, कि इन राज्यों में शासन का स्वरूप दैवी था। ये लोग देवी-देवताओं पर विश्वास रखते थे, और उनकी पूजा के लिए विशाल मंदिरों का निर्माण करते थे। शासन का कार्य या तो देवता के पुजारी 'पुरोहित' के अधीन था, और या राजा को ही दैवी रूप में स्वीकृत किया जाता था। सर्वसाधारण जनता का शासन में कोई

हाथ नहीं होता था। जनता का बड़ा भाग दासों की स्थिति में था। इन बस्तियों पर पड़ोस में रहने वाले पशुपालक लोग प्राय: आक्रमण करते रहते थे। जब कोई जाति इन बस्तियों को जीतकर अपने अधीन कर लेती थी, तो वह वहाँ के पूर्व निवासी सभ्य लोगों को अपना दास बना लेती थी। सुमेरिया पर 2750 ई.पू. के लगभग सार्गन नामक नेता के नेतृत्व में अकेडियन लोगों ने आक्रमण किया और उसे जीत लिया। अकेडियन लोग पशुपालक थे और सभ्यता की दृष्टि से सुमेरियन लोगों से बहुत पीछे थे। जब वे सुमेरिया को जीतकर यहाँ बस गये तो उन्होंने सुमेरियन सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया। राजनीतिक दृष्टि से सुमेरियन लोग पराधीन हो गये थे, उन्हें दास बना लिया गया था पर सभ्यता की दृष्टि से वे विजेता रहे। अकेडियन लोगों के बाद इसी क्षेत्र पर क्रमश: अमारोईट (2100 ई.पू. के लगभग), असीरियन (1200 ई.पू.) और केल्डियन (606 ई.पू.) जातियों ने आक्रमण किये। इन विविध जातियों ने बेबीलोनिया के इस प्रदेश में जो भी राज्य कायम किये, उनमें थोड़े से विजेता लोग बहुसंख्यक दास लोगों पर स्वेच्छाचारी रूप से शासन करते थे। पर इन राज्यों की शासन पद्धति के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। जो कुछ भी पुरातत्त्व सम्बंधी खोज द्वारा ज्ञात हुआ है, वह यह है कि इनका शासन एक शक्तिशाली राजा के अधीन था, जो दैवी शक्ति का आश्रय ले जनता पर शासन करता था। प्राचीन मिस्र, चीन, ईगियन सागर आदि के सभी राज्यों में यही दशा थी। धर्म के तत्त्व ने इन प्रदेशों की जनता में नियन्त्रण व व्यवस्था कायम रखने में बहुत सहायता की थी।

यूनानी (ग्रीक) नगर-राज्य—संसार की इन प्राचीनतम् सभ्यताओं को आर्य जाति ने नष्ट किया। इन आर्यों ने ग्रीस में अनेक छोटे-छोटे राज्य कायम किये। ग्रीस में बहुत-सी पहाड़ियाँ हैं, जिनके कारण वह देश बहुत-सी घाटियों में विभक्त है। आर्यों की ग्रीस शाखा के विविध 'जन' इन विविध घाटियों में बस गये और उनके राज्य एक दूसरे से पृथक रहे। इन ग्रीस राज्यों की संख्या सैकड़ों में थी। उनमें प्रमुख एथेन्स, स्पार्टा, कोरिन्थ, थेबस, सेमस और मिलेटस थे। अधिकांश ग्रीस राज्यों की आबादी पचास हजार के लगभग थी। उनमें कोई भी राज्य ऐसा नहीं था, जिसकी आबादी कभी तीन लाख से अधिक रही हो। इस आबादी में भी दासों की संख्या अधिक होती थी। स्वतंत्र ग्रीस नागरिक संख्या में दासों की अपेक्षा बहुत कम थे।

प्राचीन ग्रीक में अनेक ऐसे विचारक उत्पन्न हुए, जिन्होंने राजनीतिशास्त्र-संबंधी बहुत से महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इनमें प्लेटो और अरस्तु के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारत के विचारकों में जो स्थान आचार्य चाणक्य का है, वही पाश्चात्य विचारकों में अरस्तु का है। उसने अपने समय के विविध राज्यों की शासन-पद्धतियों का संग्रह कर उनके तुलनात्मक अध्ययन का प्रयत्न किया और साथ ही राज्य संस्था के स्वरूप का भी निरूपण किया।

ग्रीस नगर राज्यों की स्वतंत्रता और पृथक सत्ता देर तक कायम नहीं रह सकी। स्पार्टा, एथेन्स और कोरिन्थ जैसे शक्तिशाली राज्यों ने धीरे-धीरे पड़ोसी राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया और इस प्रकार अपने-अपने संघो (लीग) का नर्माण किया। कुछ समय बाद मैसीडोन के राजा फिलिप ने सब ग्रीस राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। सिकन्दर ने फिलिप के साम्राज्य विस्तार सम्बन्धी कार्य को जारी रखा और भूमध्यसागर से व्यास नदी तक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण किया।

रोम का सार्वभौम साम्राज्य—यूरोप की आर्य जातियों ने जो बहुत से छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये थे, शीघ्र ही वे एक साम्राज्य के अधीन हो गए। इस साम्राज्य का निर्माण रोम द्वारा किया गया था। ग्रीस नगर राज्यों की स्वतंत्रता का मैसीडोन के राजा फिलिप ने अन्त किया था। पर फिलिप और सिकन्दर द्वारा स्थापित मैसीडोनियन साम्राज्य भी देर तक स्थिर नहीं रहा। ग्रीस के पश्चिम में इटली में एक नगर राज्य था, जिसका नाम रोम था। यह इटली के मध्य में टाइबर नदी के तट पर स्थित था। इसकी स्थापना 723 ई.पू. में हुई थी। शुरू में यह उसी प्रकार का एक नगर-राज्य था, जैसे कि ग्रीस में स्पार्टा व एथेन्स और भारत में विदेह या शाक्य आदि थे। पर धीरे-धीरे रोम ने, न केवल सम्पूर्ण इटालियन नगर राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया, अपितु ग्रीक, ईगियन सागर के विविध द्वीप, मिस्र, एशिया माइनर, फ्रांस, स्पेन और ब्रिटेन आदि सुदूरवर्ती प्रदेशों के विविध राज्यों को भी जीतकर एक विशाल सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना की।

सामन्त पद्धति (फ्यूडल सिस्टम)—तीसरी सदी में रोमन साम्राज्य पर जर्मन जातियों के जो आक्रमण शुरू हुए थे, वे कई सदियों तक जारी रहे। इन आक्रमणों के कारण रोमन साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। विविध जर्मन जातियों के सरदारों ने रोमन साम्राज्य के भग्नावशेष पर अपने बहुत से छोटे-छोटे राज्य कायम किए। इन राज्यों की संख्या सैकड़ों में थी। इनके अतिरिक्त जो प्रदेश जर्मन आक्रमणों से बच गए थे, उन पर पुराने रोमन युग के जागीरदार या राजकर्मचारी स्वतत्रंता के साथ शासन करने लगे थे। कोई कोई प्रदेश ईसाई महन्तों के हाथ में थे, और कहीं बड़े व्यापारिक नगरों में व्यापारियों के समूह (कारपोरेशन या निगम) स्वतंत्रता के साथ राज्य करते थे। अभिप्राय यह है कि यह काल राजनीतिक दृष्टि से सर्वथा अराजकता से पूर्ण था। जिसके पास शक्ति थी, वही अपनी सत्ता कायम किये हुए था। सर्वसाधारण लोगों की जान व माल उस समय तक सुरक्षित नहीं थे, जब तक कि वे किसी शक्तिशाली व्यक्ति के संरक्षण में अपने को न ले आएं। इसी परिस्थिति में सामन्त पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ।

अव्यवस्था तथा अराजकता के इस युग में सामन्त पद्धति द्वारा धीरे-धीरे व्यवस्था का विकास हुआ। जिन प्रदेशों पर कोई विजेता सरदार अपना अधिकार स्थापित करता था, वहाँ वह जीते हुए प्रदेश को अपने साथियों में बाँट देता था। यदि उस विजेता सरदार को हम राजा कहें, तो उसके इन साथियों को हमें सामन्त कहना चाहिए। ये सामन्त यद्यपि अपनी जागीर राजा से प्राप्त करते थे, पर अपने प्रदेश के पूरे स्वामी होते थे। राजा के साथ उनका यह सम्बन्ध था, कि जब राजा को आवश्यकता हो, वे अपने सैनिकों के साथ उसकी सहायता करें। मध्यकालीन यूरोप में इस सामन्त पद्धति के कारण राजनीतिक एकता व व्यवस्था का सर्वथा अभाव रहा। सामन्त पद्धति में राज्यसंस्था का स्वरूप पुराने नगर-राज्यों और सार्वभौम साम्राज्यों की राज्य संस्था से बहुत भिन्न था। जनता की निष्ठा या भक्ति अपने प्रदेश (निवास स्थान या अभिजन) के प्रति न होकर अपने सामन्त राजा के प्रति होती थी। जनता की दृष्टि में उसका शासक सम्राट नहीं होता था। वह उस सामन्त को ही अपना शासक समझती थी, जिसकी जागीर में वह निवास करती थी। साथ ही, राज्य की एक आवश्यक विशेषता जो प्रभुत्व-शक्ति-सम्पन्नता मानी जाती है, उसका सामन्त-पद्धति के राज्यों में सर्वथा अभाव था। प्रभुत्व शक्ति सामन्तों के पास नहीं थी, क्योंकि वे स्वयं किसी अन्य महाराज के अधीन थे और न ही प्रभुत्व शक्ति सम्राट के हाथों में थी क्योंकि वह अपने आदेशों का पालन कराने के लिए सामन्तों पर निर्भर होता था। इसी कारण राजनीतिशास्त्र के अनेक विद्वानों की दृष्टि में मध्यकाल अराजकता का काल था, और उस समय में राज्य संस्था की सत्ता ही नहीं थी।

राष्ट्र राज्य (Nation State)

सामन्त पद्धति के ह्रास और शक्तिशाली केन्द्रीय राजाओं के विकास के कारण फ्रांस, इंग्लैण्ड और स्पेन सदृश राज्यों को उन्नति का बहुत उत्तम अवसर हाथ लगा। आन्तरिक व्यवस्था और शांति किसी भी देश की उन्नति में बहुत सहायक सिद्ध होती है। सामन्त पद्धति के कारण पहले इन देशों में व्यवस्था का सर्वथा अभाव था। शक्तिशाली केन्द्रीय शासन के स्थापित हो जाने से ये देश उन्नति की दौड़ में बहुत आगे निकल गए। इस स्थिति का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि जिन देशों में शक्तिशाली केन्द्रीय शासन स्थापित हुए, उनमें एक प्रकार की एकता की भावना भी उत्पन्न होने लगी। फ्रेंच राजा द्वारा शासित सब प्रदेश एक थे, और अपने राजा के राज्य को एक देश समझते थे। इस दशा का परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे फ्रांस एक राष्ट्र बनने लगा, और उसके निवासियों में राष्ट्रीयता की अनुभूति विकसित होने लगी। यह प्रक्रिया इंग्लैण्ड, स्पेन, रूस आदि देशों में भी हुई।

इतिहास के रंगमंच पर अब एक नये प्रकार के राज्य प्रकट होने लगे, जिन्हें राष्ट्र राज्य (नेशन स्टेट) या राष्ट्र कहते हैं। ये राष्ट्र न केवल मध्यकालीन सामान्त राज्यों से भिन्न थे, अपितु प्राचीन नगर-राज्यों और सार्वभौम राज्यों से भी भिन्नता रखते थे। इनके संगठन में यह विचार कार्य कर रहा था कि भाषा, धर्म, रीति-रिवाज, ऐतिहासिक परम्परा और संस्कृति आदि की एकता के कारण जिस देश के निवासी परस्पर एकानुभूति रखते हैं : उनका अपना एक पृथक राज्य होना चाहिए। यही राष्ट्रीयता का सिद्धान्त कहलाता है। सामन्त पद्धति के ह्रास के बाद जो शक्तिशाली राज्य यूरोप में कायम हुए थे, उनका स्वरूप एक राष्ट्र का था। इन राज्यों का आधार कोई एक 'जन' नहीं था, और न ही इनमें एकता को उत्पन्न करने वाला तत्त्व केवल मात्र शासक के प्रति निष्ठा थी। राष्ट्रीय एकता की अनुभूति के कारण ये राज्य बहुत संगठित और सुव्यवस्थित थे।

राज्य का भावी विकास—विकास की जिस प्रक्रिया द्वारा प्राचीन काल के छोटे-छोटे दैवसत्तात्मक राज्य वर्तमान युग के राष्ट्रीय राज्यों के रुप में परिणत हुए हैं, उसका अभी अन्त नहीं हो गया है। राज्यसंस्था के क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया अभी जारी है। राज्य का यह विकास दो दिशाओं में हो रहा है—(1) शासन पद्धति और राज्य के कार्यक्षेत्र के विषय में, और (2) राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में। अठारहवीं सदी में लोकतन्त्रवाद की जो लहर शुरू हुई थी, उसका स्वरूप अब निरन्तर परिवर्तित हो रहा है। केवल राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्रता और समानता को अब पर्याप्त नहीं समझा जाता। अब यह आवश्यकता भी अनुभव की जाती है, कि आर्थिक क्षेत्र में भी मनुष्य पूर्णतया स्वतंत्र और एक-दूसरे के समान स्थिति रखने वाले हों। इसी कारण समाजवाद के लिए आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ है और समाजवाद के सिद्धान्त को किसी-न-किसी रूप में संसार के बहुसंख्यक राज्यों ने अपना लिया है। समाजवाद की व्यवस्था का अनुसरण कर राज्यसंस्था का जो स्वरूप अब विकसित हो रहा है, वह उन्नीसवीं सदी के लोकतान्त्रिक राष्ट्रीय राज्यों से बहुत भिन्न है।

विगत वर्षों में मनुष्य ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति की है, उसके कारण संसार के विविध राज्य एक-दूसरे के इतने समीप आ गए हैं, कि उनके लिए एक दूसरे से सर्वथा पृथक रह सकना अब सम्भव नहीं रहा है। साथ ही, नित नये प्रलयकारी अस्त्रों के आविष्कृत हो जाने के कारण अब सब राज्यों के लिए यह भी सम्भव नहीं रहा है, कि वे आत्म रक्षा के लिए केवल अपनी शक्ति पर निर्भर कर सकें। जिन अर्थों में आधुनिक युग के विविध राज्य सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न माने जाते हैं, वे भविष्य में भी ऐसे हो सकेंगे, यह बहुत सन्देहास्पद है। जिस प्रकार मध्यकाल में निर्बल सामन्त राजा अपनी रक्षा के लिए अपने को किसी प्रबल

पड़ोसी राज्य के अधीन कर देते थे, वैसे ही अब यदि निर्बल राज्य आत्मरक्षा हेतु अपने को अमेरिका, ब्रिटेन और चीन जैसे शक्तिशाली राज्यों का अनुगामी बना दें, तो यह अस्वाभाविक नहीं है। वर्तमान परिस्थितियों में राज्यों के लिए आवश्यक हो गया है, कि वे अपनी पूर्ण स्वतत्रंता व सर्वोपरिता के विचार का परित्याग कर अन्तर्राष्ट्रीय और अन्योन्याश्रितता के विचार को स्वीकृत करें। इस आवश्यकता से विवश होकर विविध राज्य अनेक प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में संगठित हो रहे हैं।

प्र.2. राज्य राजनीति के महत्त्व एवं निर्धारित तत्त्वों का वर्णन कीजिए।

Describe the importance and prescribed elements of state politics.

उत्तर

राज्य राजनीति का महत्त्व
(Importance of State Politics)

भारतीय संविधान द्वारा अपनायी गयी संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राजनीति के तीन स्तर है राष्ट्रीय राजनीति, राज्य राजनीति और स्थानीय राजनीति। इनमें राष्ट्रीय राजनीति आधुनिकतावादी तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है और स्थानीय राजनीति परम्परावादी तत्त्वों का; लेकिन राज्य राजनीति में आधुनिकतावादी और परम्परागत दोनों ही प्रकार के तत्त्व देखें जा सकते हैं। वस्तुत: यह इन दोनों का समन्वय है । इस प्रकार भारत की संघात्मक व्यवस्था में राज्य वे महत्त्वपूर्ण कडियाँ है जिनके द्वारा गाँव, नगर और शहर की राजनीति को राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था के साथ जोड़ने का कार्य किया जाता है।

भारत की संघात्मक व्यवस्था में राज्य राजनीति का अपना विशेष महत्त्व है। भारतीय लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हम अपने विकास कार्यक्रमों (सामाजिक, आर्थिक न्याय से सम्बद्ध कार्यक्रमों) को किस गति से क्रियान्वित कर पाते हैं और संविधान द्वारा सभी प्रकार के विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित शक्तियाँ राज्यों को ही प्रदान की गयी है । भूमि सुधार कानून हो या शिक्षा में परिवर्तन लाने का कोई कार्यक्रम; परिवार नियोजन हो या मद्य निषेध; कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना हो या व्यापक सिंचाई सुविधाओं की व्यवस्था करना हो; व्यवहार में इन सभी कार्यों को राज्य सरकारों द्वारा ही किया जा सकता है। जनसाधारण की दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान राज्य सरकारों द्वारा ही किया जा सकता है, केन्द्रीय सरकार द्वारा नहीं इसी कारण जनसाधारण की संसद और केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा विधान सभा और मन्त्रिमण्डल में ही अधिक रुचि होती है। वस्तुत: राज्य राष्ट्रीय राजनीति की आधार-शिलाएँ हैं।

राज्य राजनीति राष्ट्रीय राजनीतिज्ञों के लिए प्रशिक्षण स्थल का भी कार्य करती है और सामान्तया राज्य राजनीति में सफल उतरने वाले व्यक्ति ही राष्ट्रीय राजनीति में स्थान पाते हैं। वस्तुत राज्य ही भारतीय राजनीति और लोकतन्त्र के प्रयोग-स्थल हैं और भारतीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए राज्य राजनीति को ही मानक बनाना होगा।

भारत की राजनीतिक व्यवस्था में राज्य राजनीति का विशेष महत्त्व होने पर भी सामान्यतया राज्य राजनीति से सम्बद्ध साहित्य का अभाव ही देखा जाता है। इसका सर्वप्रमुख कारण यह है कि संघीय व्यवस्था में संघ की इकाइयों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्त्व प्राप्त नहीं होता। इससे अतिरिक्त भारत की संघीय व्यवस्था में तो इकाइयों के अपने अलग-अलग संविधान भी नहीं हैं। और इस कारण भारतीय तथा विदेशी विद्वानों द्वारा राज्य राजनीति पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया। **द्वितीय**, माइरन वीनर के अनुसार, इसका एक कारण यह हो सकता है कि भारतीय विद्वान इस बात से डरते रहे कि राज्य राजनीति का अध्ययन करने पर उन्हें संकीर्णतावादी घोषित कर दिया जायेगा। **तृतीय**, लगभग 40 वर्षों के संवैधानिक इतिहास में लगभग 10 वर्ष का समय ही ऐसा रहा है, जिसमें राज्य राजनीति ने अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय दिया। राज्य राजनीति की प्रभावशीलता के ये वर्ष रहे हैं—1964-70 और 1977-79 तथा 1985-90। 1947-64 के नेहरू युग में राजनीति केन्द्रीय राजनीति की अनुगामिनी थी और 1971-77 के वर्षों में तो राज्य राजनीति केन्द्रीय राजनीति और नेतृत्व की दासी मात्र बनकर रह गयी।

वस्तुत: सन् 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में हुई राजनीतिक घटनाओं से इस विषय को और भी अधिक महत्त्व मिलने लगा है। सन् 1967 में जब लगभग 8 राज्यों के चुनाव के दौरान लोगों ने काग्रेस के अतिरिक्त अन्य दलो को अवसर दिया तो लेखको, पत्रकारो एवं विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से राज्यों की राजनीति की ओर गया। राज्यों में उत्पन्न हुई दलीय व्यवस्था के अतिरिक्त वहाँ के सामाजिक आधार तथा सफलताओं और विफलताओं के कारणों का विश्लेषण किया जाने लगा। यह बात स्पष्ट होकर सामने आने लगी कि एक ही संविधानिक ढाँचे और समस्त भारत की राजनीति का भाग होते हुए भी विभिन्न राज्यों की प्रक्रिया एकसमान नहीं हैं, क्योंकि राजनीतिक प्रक्रिया केवल कानूनी तथा संविधानिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं होती। औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही व्यवस्थाएँ ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आधारों के सन्दर्भ में एक-दूसरे को प्रभावित करती है। इसलिए यद्यपि सभी राज्य एक ही संविधान के अनुसार शासित है फिर भी उनकी राजनीति परस्पर सम्बद्ध तथा उनके सामाजिक मूल्यों में भिन्नता है। इसी प्रकार उनके राजनीतिक लक्ष्यों तथा विचारों में भी अन्तर है। कई बार बिल्कुल पडोसी राज्यों की नीतियों, विचारो और घटनाओं में भी बहुत अन्तर स्पष्ट दिखाई देते हैं।

राज्य राजनीति के निर्धारक तत्त्व (Prescribed Elements of State Politics)

भारत की राज्य राजनीति के विभिन्न रूप रहे हैं। कभी यह राष्ट्रीय राजनीति की अनुगामिनी रही तो कभी राष्ट्रीय राजनीति को निर्देशित करने वाली शक्ति। इसके अतिरिक्त अलग-अलग राज्यों की राजनीति में भी भेद रहे हैं। वस्तुत: यह स्थिति राजनीति के निर्धारक तत्त्वों में समय-समय पर परिवर्तन होने के कारण ही देखी गयी। राज्य राजनीति के निर्धारक तत्त्वों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

1. **संवैधानिक तत्त्व**—संविधान द्वारा जिस संघात्मक व्यवस्था की स्थापना की गयी है उसमें केन्द्रीय सरकार को राज्यों की अपेक्षा उच्च और राज्यों पर नियन्त्रण की स्थिति प्राप्त है। इसलिए जब तक कोई विशेष राजनीतिक तत्त्व न हो; राज्य राजनीति का केन्द्रीय शासन और राजनीति से प्रभावित होना नितान्त स्वाभाविक है। केन्द्रीय शासन द्वारा अनेक बातों के आधार पर राज्य राजनीति को प्रभावित किया जा सकता है, यथा, राज्यपाल का पद, राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करना, राज्य को वित्तीय सहायता, मुख्यमन्त्री और अन्य मन्त्रियों के विरुद्ध जाँच आयोग की स्थापना आदि।
2. **राजनीतिक तत्त्व**—राज्य राजनीति को प्रभावित करने वाले सर्वाधिक प्रमुख तत्त्व निश्चित रूप से राजनीतिक ही है। वस्तुत: राजनीतिक तत्त्व के अन्तर्गत अनेक बातें आती हैं—
   (i) **केन्द्रीय नेतृत्व, प्रमुखतया प्रधानमन्त्री का व्यक्तित्व**—केन्द्रीय नेतृत्व और प्रधानमन्त्री का व्यक्तित्व राज्यों की राजनीति को बहुत अधिक सीमा तक प्रभावित करता है। यदि केन्द्रीय नेतृत्व शक्तिशाली और प्रधानमन्त्री का व्यक्तित्व प्रभावशाली है तो राज्यों की राजनीति दबी रहेगी। पं. नेहरू के करिश्मावादी नेतृत्व के कारण ही नेहरू काल में राज्य राजनीति केन्द्रीय राजनीति की अनुगामिनी रही, लेकिन 1964-70 के वर्षों में प्रधानमन्त्री पदधारी व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाया था, अत: राज्य राजनीति केन्द्र से निर्देशित होने के बजाय उसके द्वारा केन्द्रीय राजनीति को दिशा देने की चेष्टा की गयी।
   (ii) **मुख्यमन्त्री का व्यक्तित्व**—एक ही समय में विभिन्न राज्यों की राजनीतिक स्थिति में अन्तर देखा जा सकता है और इसका कारण है मुख्यमन्त्री का व्यक्तित्व जो राज्यों की राजनीति में प्रमुख भूमिका सम्पादित करता है। उदाहरण के लिए, स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त डॉ. बी.सी. रॉय के नेतृत्व में प. बगाल और गोविन्द वल्लभ पन्त के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश की जो महत्त्वपूर्ण स्थिति थी, वह उनके समकालीन मुख्यमन्त्रियों के अधीन अन्य राज्यों की नहीं थी और रॉय तथा पन्त के मुख्यमन्त्री न रहने पर प. बंगाल तथा उत्तर प्रदेश की स्थिति में गिरावट आई। 1980 के बाद में ज्योति बसु, एम.जी. रामचन्द्रन, एन.टी. रामाराव, हेगड़े, डॉ. फारुख अब्दुल्ला आदि की गणना अधिक प्रभावी मुख्यमन्त्रियों के रूप में की जा सकती है। राज्यों में अब तक जो मुख्यमन्त्री रहे, उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है शक्तिशाली मुख्यमन्त्री, अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली मुख्यमन्त्री और दुर्बल तथा केन्द्रीय सरकार के दूत की भूमिका वाले मुख्यमन्त्री।
   (iii) **केन्द्र और राज्यों में दलीय स्थिति**—केन्द्र और राज्यों की दलीय स्थिति द्वारा राज्य राजनीति को कई प्रकार से प्रभावित किया जाता है। **सर्वप्रथम**, यह सोचा जाता है कि यदि राज्य में उसी राजनीतिक दल की सरकार हो, जो केन्द्र में सत्तारूढ है, तो केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के आपसी सम्बन्ध अच्छे रहेंगे। लेकिन ऐसा होना जरूरी नहीं है और अनेक बार इसके विपरीत दलीय स्थिति में भी केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के बीच अच्छे सम्बन्ध देखे गये हैं। वस्तुत केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के सम्बन्ध अपनी दलीय संरचना पर कम और प्रधानमन्त्री और मुख्यमन्त्री के आपसी समीकरण पर अधिक निर्भर करते हैं। **द्वितीय**, यदि केन्द्रीय सरकार को लोकसभा में क्षीण बहुमत ही प्राप्त हो अथवा केन्द्रीय सरकार भी गुटबन्दी से ग्रस्त हो; जैसा कि 1978-79 के वर्षों मे देखा गया है तो केन्द्रीय सरकार की राज्य राजनीति को निर्देशित करने की क्षमता सीमित हो जाती है। यदि राज्य में उसी राजनीतिक दल का शासन हो, जिस राजनीतिक दल का केन्द्र में शासन है और मुख्यमन्त्री को दल के केन्द्रीय संगठन में महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त हो, तो राज्य राजनीति अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय दे सकती है और उसके द्वारा केन्द्रीय राजनीति को प्रभावित करने की चेष्टा की जा सकती है। **तृतीय**, राज्य में मिली-जुली सरकार होने पर सामान्यतया उसकी स्थिति एकदलीय सरकार की तुलना में कमजोर होती है और केन्द्र के लिए मिली-जुली सरकार वाले राज्य की राजनीतिक स्थिति को प्रभावित करना सरल होता है । जिस राज्य सरकार को विधानसभा में बहुत कम बहुमत प्राप्त हो या राज्य के शासक दल में अत्यधिक गुटबन्दी के कारण मुख्यमन्त्री की स्थिति असुरक्षित हो, उसे

TOUCH 'n' PASS

विधान सभा के अन्दर और बाहर निरन्तर चुनौती की स्थिति का सामना करना पड़ रहा हो, उस राज्य सरकार की स्थिति भी मिली-जुली सरकार जैसी ही कमजोर होती है।

3. **सांस्कृतिक-सामाजिक तत्त्व**—भारतीय संघ के कुछ राज्य सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि से विकसित, लेकिन कुछ अन्य बहुत पिछडे हुए हैं। प० बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल और तमिलनाडु प्रथम श्रेणी में, लेकिन बिहार, उडीसा, राजस्थान आदि द्वितीय श्रेणी में आते हैं। स्वाभाविक रूप से केन्द्र द्वारा प्रथम श्रेणी के राज्यों की राजनीति को प्रभावित करने का कार्य सीमित रूप में किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में एक अन्य बात यह है कि भाषा, संस्कृति आदि की दृष्टि में जिन राज्यों की स्थिति भारत की राष्ट्रीय स्थिति में कुछ भिन्न है, उनके माथ व्यवहार करते समय केन्द्र को विशेष सावधानी बरतनी होती है।
4. **आर्थिक तत्त्व**—राज्यों की राजनीति आर्थिक तत्त्वों से भी प्रभावित रहती है। यदि एक राज्य में प्राकृतिक साधनों की बहुलता है, उसका पर्याप्त औद्योगीकरण हो गया है या कृषि सम्पदा के कारण उसके पास पर्याप्त वित्तीय साधन है, तो उस राज्य की राजनीति के स्वतन्त्र और स्वस्थ रूप के विकसित होने की आशा की जा सकती है। महाराष्ट्र, पंजाव और प. बंगाल आदि राज्य अपने पर्याप्त वित्तीय साधनों के कारण केन्द्र के प्रति कम निर्भरता की स्थिति रखते हैं, लेकिन मध्य प्रदेश और राजस्थान में स्थिति विपरीत ही है । इस सम्बन्ध में केरल का भी उदाहरण लिया जा सकता है जिसने अपनी विदेशी विनिमय कमाने की क्षमता का केन्द्र के साथ मोल-तोल करने में सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।
5. **भौगोलिक तत्त्व**—किसी राज्य की भौगोलिक स्थिति भी उसकी राजनीति को प्रभावित करती है। **प्रथम**, भौगोलिक स्थिति उस राज्य के आर्थिक विकास को और परोक्ष रूप में राज्य राजनीति को प्रभावित करती है। **द्वितीय**, सीमान्त पर स्थित राज्यों में यदि कभी पृथकतावादी प्रवृत्तियो का उदय होता है तो इसका प्रमुख कारण उसकी भौगोलिक स्थिति हो सकती है। नागालैण्ड और मिजोरम आदि राज्यों की प्रवृत्ति को इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संघ के कुछ राज्य क्षेत्र तथा जनसंख्या की दृष्टि से विशाल तथा विविधताओं से परिपूर्ण है, लेकिन दूसरी ओर कुछ राज्य क्षेत्र तथा जनसंख्या की दृष्टि से छोटे और अपेक्षाकृत कम विविधताओं वाले हैं। ऐसे राज्यों की राजनीति में एक-दूसरे में भेद होना नितान्त स्वाभाविक है।

प्र.3. राज्य राजनीति के प्रमुख लक्षणों को विस्तार से लिखिए।
Write in detail the main features of state politics.

उत्तर

राज्य राजनीति के प्रमुख लक्षण
(Main Features of State Politics)

स्वतन्त्र भारत के संवैधानिक इतिहास के विभिन्न कालो में राज्य-राजनीति के अलग-अलग और कुछ सीमा तक एक-दूसरे के विपरीत रूप देखे गये हैं और एक ही समय पर विभिन्न राज्यों की राजनीति के भी अलग-अलग रूप देखे जा सकते हैं। लेकिन फिर भी कुछ ऐसी बाते हैं जिन्हें कम अधिक रूप में सभी समयो पर और लगभग सभी राज्यों की राजनीति में देखा जा सकता है। ये ही राज्य राजनीति की प्रमुख प्रवृत्तियाँ या लक्षण है और इनका उल्लेख निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **परम्परागत और आधुनिकता का समन्वय**—सभी राज्यों की राजनीति में धर्म, जाति आदि परम्परागत तत्वों तथा वर्ग चेतना और आर्थिक हितों के दबाव आदि आधुनिक तत्त्वों का समन्वय देखा जा सकता है, यद्यपि कुछ राज्यों की राजनीति में परम्परागत तत्त्वों की प्रबलता है, कुछ अन्य राज्यों में आधुनिकतावादी तत्त्वों की।
2. **धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्रीयता आदि तत्त्वों का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव**—राज्य राजनीति राष्ट्रीय राजनीति की तुलना में अधिक परम्परावादी है और धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्रीयता आदि तत्त्व राष्ट्रीय राजनीति की तुलना में राज्य राजनीति में अधिक प्रभावशाली है। यह तथ्य इस सामान्य प्रवृत्ति के अनुकूल है कि निर्वाचन क्षेत्र जितना छोटा होगा, परम्परावादी तत्त्व उतने ही अधिक प्रभावी होंगे। केरल की राजनीति में धर्म के तत्त्व की बहुत अधिक प्रधानता है, बिहार, हरियाणा आदि राज्यों की राजनीति में जाति अधिक प्रभावशाली है तो तमिलनाडु की राजनीति में क्षेत्रीयता और भाषा के तत्त्वों की प्रबलता है।
3. **केन्द्रीय राजनीति की तुलना में अधिक प्रतियोगी दलीय व्यवस्था**—केन्द्रीय राजनीति की तुलना में राज्यों की राजनीति में दलीय व्यवस्था सदैव ही अधिक प्रतियोगी रही है। नेहरू काल में जबकि केन्द्र में कांग्रेस की सत्ता को चुनौती देने की बात भी नहीं सोची जाती थी, कुछ राज्यों में काग्रेस की स्थिति मजबूत नहीं थी। उदाहरण के लिए, द्वितीय आम चुनाव के बाद

TOUCH 'n PASS

केरल माम्यवादी सरकार का निर्माण हुआ था, मध्य प्रदेश में दो बार कांग्रेस की अल्पमतीय सरकार थी उड़ीसा में मिली-जुली सरकार का निर्माण हुआ था। राजस्थान में तीन में दो आम चुनावों में कांग्रेस को बहुमत से कुछ कम स्थान प्राप्त हुए थे, आन्ध्रा में एक बार कांग्रेस नेतृत्व वाली संयुक्त सरकार थी और एक बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। चतुर्थ आम चुनाव में तो जनता ने लगभग आधे राज्यों में विरोधी दलो को शासन करने का अवसर दिया और दलीय प्रतियोगिता बहुत अधिक तीव्र हो गयी। वर्तमान समय में भी केरल, आन्ध्र, असम, मिजोरम हरियाणा, सिक्किम, कर्नाटक, तमिलनाडु, जम्मू-कम्मीर, प. बंगाल और त्रिपुरा आदि राज्यों में केन्द्र के शासक दल से भिन्न राजनीतिक दलो की सरकारे हैं। **मायरन वीनर** के शब्दो में, "राष्ट्रीय राजनीति से जब हम राज्य राजनीति की ओर बढ़ते हैं तो दलीय प्रतियोगिता तीव्र हो जाती है।"

4. **राज्य राजनीति का खण्डित (Segmented) स्वरूप**—संघ राज्य की एक इकाई और दूसरी इकाई में भेद की स्थिति होना स्वाभाविक है, लेकिन भारतीय संघ के राज्यों का भी खण्डित स्वरूप है। एक ही राज्य के क्षेत्र और दूसरे क्षेत्र में भेद की स्थिति का अनुभव किया जाता है और राज्यों के इस खण्डित स्वरूप तथा संस्कृति ने राज्यों की राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इस प्रकार के खण्डित स्वरूप के कुछ उदाहरण हैं—आन्ध्र प्रदेश तीन क्षेत्रो में बँटा हुआ है—तटवर्ती आन्ध्र, रायलसीमा और तेलंगाना। केरल के तीन क्षेत्र (ट्रावनकोर, कोचीन और मालाबार) मध्य प्रदेश के चार क्षेत्र (विन्ध्य प्रदेश, मध्य भारत, महाकौशल और भोपाल), महाराष्ट्र के तीन क्षेत्र (पश्चिमी महाराष्ट्र, मराठवाड़ा और विदर्भ) तथा कश्मीर के तीन क्षेत्र (कश्मीर लद्दाख और जम्मू) है। उत्तर प्रदेश पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्वी उत्तर प्रदेश मे बँटा हुआ है। राज्यों के इस खण्डित स्वरूप का एक कारण तो उनका विगत इतिहास है, जैसे एक ही राज्य के कुछ क्षेत्र 1947 के पूर्व ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत थे और कुछ देशी रियासतो के रूप में थे। लेकिन इस स्थिति का अधिक प्रमुख कारण तो उनके आर्थिक विकास की अधिक असमान स्थिति और कहीं-कहीं पर तो बहुत अधिक असमान स्थिति है जैसे पूर्वी उत्तर प्रदेश पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में और तेलंगाना आन्ध्र प्रदेश की तुलना में बहुत अधिक पिछड़ा हुआ है। कहीं पर खण्डित स्वरूप को जन्म देने वाले ये दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं। शिक्षा का विकास, यातायात के साधन, नौकरियों की सुविधाएँ तथा व्यापार आदि का विकास भी विभिन्न क्षेत्रों में एक समान नहीं हुआ है। जो क्षेत्र सीधे अग्रेंजी सत्ता के अधीन थे वहाँ एक सुचारु प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण तो हुआ ही, साथ ही सामाजिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक सुधार भी हुआ । इसके विपरीत देशी रियासते राजनीतिक गतिविधियों से दूर थी।
5. **शासक दल में तीन गुटबन्दी**—गुटबन्दी भारत की समस्त राजनीति के रक्त में घुली हुई है लेकिन राष्ट्रीय राजनीति की तुलना में राज्य की राजनीति में गुटबन्दी का विष सदैव ही अधिक तीव्र रूप में देखा गया। नेहरू काल के जिन राज्यों में राज्य स्तर का नेतृत्व भी बहुत प्रभावशाली था वहाँ नेहरू तथा राज्य स्तर दोनों के प्रभावशाली नेतृत्व के कारण गुटबन्दी दबी हुई थी, लेकिन दोनों मे एक भी तत्त्व के न होने पर गुटबन्दी उभरकर सामने आ गयी। 1967 से तो राज्य स्तर पर लगातार तीव्र गुटबन्दी देखी गयी है और वर्तमान स्थिति तो इस दृष्टि से निश्चित रूप से शोचनीय है।
6. **राजनीतिक दल-बदल**—राजनीतिक दल-बदल भी राज्य स्तर की राजनीति की ही प्रमुख विशेषता रही है। दल-बदल स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से ही केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर जारी था लेकिन 1967 से राज्य स्तर पर दल-बदल बहुत ही अधिक बढ़ गया। 1971-72 के चुनाव परिणामों को देखकर यह आशा की गयी थी कि अब राज्यों की विधान-सभा में सत्ता कांग्रेस को पर्याप्त बहुमत प्राप्त हो जाने के कारण दल-बदल स्वत: ही लगभग रूक जायेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सन् 1985 में 52वाँ संविधान संशोधन पारित होने के बाद यह आशा बँधी कि दल-बदल की दूषित प्रवृत्ति पर अंकुश लग सकेगा। लेकिन 1988 में नागालैण्ड में और 1989 में कर्नाटक में दल-बदल की घटनाएँ इतनी दिलचस्प ढंग से हुई कि जिनके परिणामस्वरूप राज्य सरकारें अल्पमत में आ गई और राज्यपालों ने राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर दी।
7. **राजनीतिक अस्थिरता**—राज्य स्तर के शासक दल में तीव्र गुटबन्दी और राजनीतिक दल-बदल ने राज्यों की राजनीति में एक अन्य तत्त्व को जन्म दिया है और वह है राजनीतिक अस्थिरता या राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण। राज्य राजनीति में राजनीतिक अस्थिरता की यह स्थिति 1966 से लगभग निरन्तर रूप में चली आ रही है और कम-अधिक रूप में भारतीय संघ के सभी राज्य इस स्थिति को भुगत चुके हैं और भुगत रहे हैं।
8. **केन्द्र द्वारा राज्य राजनीति को प्रभावित करने के उचित-अनुचित प्रयत्न**—राज्यों में राजनीतिक अस्थिरता का एक कारण यह भी रहा है कि केन्द्र द्वारा राज्य राजनीति को प्रभावित करने के उचित-अनुचित सभी प्रकार के प्रयत्न किये गये। संविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार को राज्यों पर नियन्त्रण की जो शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं, उनका न केवल संवैधानिक वरन् राजनीतिक, दलीय और गुटीय हितों के लिए प्रयोग किया गया। 1959 में केरल, 1967 में राजस्थान 1968 में प०

बंगाल 1970 में उत्तर प्रदेश, 1973 में उड़ीसा, 1975 में उत्तर प्रदेश और 1977 में कर्नाटक में राष्ट्रपति शासन लागू करना केन्द्र द्वारा राज्य राजनीति को प्रभावित करने के अनुचित प्रयत्न ही समझे जाते हैं। 1977 में केन्द्र की जनता सरकार द्वारा 9 राज्यों की विधानसभाओं को भंग करना और 1980 में इन्दिरा कांग्रेस द्वारा 9 राज्यों की विधानसभाओं को भंग किया जाना भी इसी प्रकार के प्रयत्न रहे हैं।

प्र.4. पितृसत्तात्मक एवं मातृसत्तात्मक सिद्धान्त क्या हैं? पितृसत्तात्मक सिद्धान्त की विशेषताएँ लिखिए।
What are the patriarchal and the matriarchal theories? Write the characteristics of the patriarchal theory.

उत्तर

पितृसत्तात्मक सिद्धांत
(The Patriarchal Theory)

इस सिद्धांत के अनुसार राज्य को परिवार का विकसित रूप माना गया है। जिसमें कि पिता की महत्ता होती है। परिवार में एक व्यक्ति, उसकी पत्नी तथा उनके बच्चे होते हैं। परिवार का मुखिया पिता होता है और परिवार के सभी सदस्यों पर उसका अधिकार तथा नियंत्रण होता है। प्रारंभ में परिवार था, परिवार के विकास से जाति अस्तित्व में आयी। बाद में जाति से समुदाय और समुदाय से समाज का बदलाव आया। कालांतर में समाज ने ही राज्य का रूप ले लिया। **लीकॉक** ने राज्य के इसी विकास क्रम को इंगित करते हुए लिखा है, 'पहले एक गृहस्थी, फिर एक पितृ प्रधान परिवार, फिर समान नस्ल के व्यक्तियों की एक जाति और फिर अंत में एक राष्ट्र, सामाजिक क्रम का निर्माण इसी आधार पर हुआ है।

पितृसत्तात्मक सिद्धांत का विकास (Development of the Patriarchal Theory)

पितृसत्तात्मक सिद्धांत एक प्राचीन सिद्धांत है। प्राचीन यूनान, रोम तथा यहूदियों के इतिहास में इसका विस्तार से उल्लेख मिलता है। यूनान में परिवार को महत्त्वपूर्ण माना जाता था और परिवार के प्रधान के रूप में पिता को असीमित अधिकार प्राप्त थे। यूनान के समान रोम में भी कुलपिता का परिवार के सदस्यों पर पूर्ण नियंत्रण होता था। यहूदियों में भी वयोवृद्ध पुरुष प्रणाली का प्रचलन था, जिनमें एक पुरुष को प्रधान माना जाता था। आधुनिक समय में कई लेखक द्वारा इस सिद्धांत का समर्थन किया गया है। ऐसे लेखकों में सर हेनरी मेन, दिग्विट मेन ने, "Ancient law and Early History of Institutions" नामक पुस्तक में इस सिद्धांत का समर्थन करते हुए लिखा है, 'परिवार ऐसा प्रारंभिक समूह होता है, जो सबसे बड़े पुरुष की सामान्य अधीनता से जुड़ा है। परिवार के योग से कुल बनता है। कुलों के योग से जाति का निर्माण होता है। जातियों का योग राज्य का निर्माण करता है।

मातृसत्तात्मक सिद्धांत (The Matriarchal Theory)

पितृसत्तात्मक सिद्धांत की भाँति मातृसत्तात्मक के समर्थकों ने भी राज्य को परिवार का विकसित रूप माना है। लेकिन पितृसत्तात्मक सिद्धांत के विपरीत इस सिद्धांत के समर्थकों का कहना है कि प्रारंभिक परिवार मातृ-प्रधान हुआ करते थे। मातृ-प्रधान परिवारों के परिणामस्वरूप ही राज्य की उत्पत्ति हुई। इस सिद्धांत की मान्यता है कि प्रारंभिक समाज में माता को ही पारिवारिक जीवन का केंद्र माना जाता था और माता के नाम पर ही वंश चलता था। मैक्लेमेन (Mcleman) मार्गन (Moragan), जैंक्स (Jenks) आदि विद्वान इस सिद्धांत के प्रबल समर्थक रहे हैं।

मातृसत्तात्मक सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ—मातृसत्तात्मक सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

1. आदिकाल के निवासियों के वैवाहिक संबंध अस्थाई थे,
2. परिवार में माता का स्थान प्रधान होता था,
3. वंश माता के नाम पर ही चलता था,
4. संपत्ति में केवल स्त्रियों का ही उत्तराधिकार माना जाता था।

मातृसत्तात्मक सिद्धांत की आलोचना—इस सिद्धांत की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती हैं—

1. पितृसत्तात्मक सिद्धांत की भाँति मातृसत्तात्मक सिद्धांत भी अनैतिहासिक है। इतिहास से हमें कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता कि प्रारंभिक, परिवार मातृसत्तात्मक थे।
2. पितृसत्तात्मक सिद्धांत की तरह यह सिद्धांत भी परिवारों की उत्पत्ति को बतलाया है लेकिन राज्य की उत्पत्ति की सही व्याख्या नहीं करता।
3. आलोचकों का कहना है कि राजनीति विज्ञान की दृष्टि से इस सिद्धांत का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है। क्योंकि इसमें मातृसत्तात्मक परिवार को आधार मानकर चिंतन किया गया है और परिवार को सामाजिक जीवन मूल इकाई मानते हुए

TOUCH 'n' PASS

राज्य के विकास क्रम का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह सिद्धांत समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से तो भले ही महत्त्व रखता हो, लेकिन राजनीति विज्ञान की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

मातृसत्तात्मक सिद्धांत का महत्त्व—पितृसत्तात्मक सिद्धांत के समान इस सिद्धांत में यह सत्यता अवश्य विद्यमान है कि परिवारों ने राज्य स्वरूप संगठन की संरचना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। नि:संदेह इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मनुष्यों ने सबसे पहले परिवारों में रहना प्रारंभ किया और बाद में अन्य समुदायों का विकास हुआ और मनुष्य की यही सामुदायिक और परिवार संबंधी प्रवृत्ति राज्य के प्रादुर्भाव और विकास का आधार बनी।

पितृसत्तात्मक परिवार की मुख्य विशेषताएँ
(Main Characteristics of the Patriarchal Family)

पितृसत्तात्मक सिद्धांत की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. राज्य पितृसत्तात्मक परिवारों का विकसित रूप है,
2. प्राचीनकाल में समाज की इकाई व्यक्ति न होकर परिवार था,
3. उस काल में विवाह की प्रथा प्रचलित थी और परिवार का मुखिया पिता होता था,
4. पितृसत्तात्मक परिवार वंशानुगत होते हैं। परिवार के सबसे बड़े पुरुष सदस्य की मृत्यु के पश्चात् उसके सभी अधिकार तथा दायित्व उसके बड़े पुत्र को प्राप्त हो जाते हैं।

पितृसत्तात्मक सिद्धांत की आलोचनाएँ
(Criticisms of the Patriarchal Theory)

पितृसत्तात्मक सिद्धांत की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएँ की जाती हैं—

1. पितृसत्तात्मक सिद्धांत का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह राज्य की अत्यंत सरल व्याख्या प्रस्तुत करता है, जबकि प्रारंभिक सामाजिक समुदाय का योगदान दिया, इतना सरल नहीं था। **गिलक्राइस्ट** के शब्दों में, 'पितृसत्तात्मक सिद्धांत राज्य की उत्पत्ति की सरलतम सिद्धांत विवेचना प्रस्तुत करता है। आदि युग वैसा ही सरल नहीं था। जितने भी प्रारंभिक समाज के संबंध में शोध हुए हैं, यह उसकी जटिल प्रकृति की ओर संकेत करता है।
2. पितृसत्तात्मक सिद्धांत का इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता। **मेक्लनान मार्गन, जैक्स** आदि लेखकों ने अपने अध्ययन से यही निष्कर्ष निकाला है कि अतीत में ऐसा कोई समुदाय नहीं था जो कि पुरुष प्रधान रहा हो। इन लेखकों का कहना है कि समाज की प्रारंभिक इकाई पितृसत्तात्मक परिवार न होकर मातृसत्तात्मक परिवार थी।
3. आलोचकों का कहना है कि पितृसत्तात्मक सिद्धांत में परिवारों की उत्पत्ति बताया गया है। यह राज्य की उत्पत्ति की व्याख्या नहीं करता।
4. पितृसत्तात्मक सिद्धांत के समर्थकों ने परिवार को समाज की सबसे प्रारंभिक इकाई माना है लेकिन आलोचकों का कहना है कि समाज की सबसे प्रारंभिक इकाई एक कबीला है न कि परिवार। कबीला के टूटने से वंशों की उत्पत्ति हुई वंशों के टूट जाने से कुटुंब का और अंत में परिवार की उत्पत्ति हुई।

पितृसत्तात्मक सिद्धांत का महत्त्व (Importance of the Patriarchal Theory)

यद्यपि पितृसत्तात्मक सिद्धांत में उपरोक्त मूलभूत कमियाँ हैं तथापि यह सिद्धांत महत्त्वपूर्ण रहा है और राज्य के विकास क्रम में इसका एक आधारभूत तत्व के रूप में योगदान रहा है। परिवार को सामाजिक व्यवस्था का बुनियादी आधार माना जा सकता है, क्योंकि आज्ञा पालन, अनुशासन और नियंत्रण की प्रवृत्तियाँ व्यक्ति सबसे पहले परिवार में ही सीखता है।

प्र.5. राज्य की उत्पत्ति का मार्क्सवादी सिद्धांत क्या हैं? वर्णन कीजिए।
What is the marxist theory of the origin of the state? Describe.

उत्तर

राज्य की उत्पत्ति का मार्क्सवादी सिद्धांत
(Marxist Theory of Origin of the State)

कार्ल मार्क्स के राज्य संबंधी विचार 'साम्यवादी घोषणा पत्र' नामक पुस्तक में मिलते हैं, जो कि 1848 में प्रकाशित हुई थी। 'साम्यवादी घोषणा पत्र **कार्ल मार्क्स** तथा **एंजेल्स** की संयुक्त रचना है। मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् सन् 1884 में एंजेल्स की एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका नाम 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य' था। यह पुस्तक वस्तुत: कार्ल मार्क्स के अप्रकाशित लेख पर आधारित है। उपरोक्त सभी रचनाओं से हमें राज्य की उत्पत्ति से संबंधित मार्क्सवादी दृष्टिकोण की जानकारी मिलती है।

राज्य की उत्पत्ति के संबंध में **कार्लमार्क्स** दैवी सिद्धांत, सामाजिक समझौता सिद्धांत, मातृक और पैतृक सिद्धांत में विश्वास नहीं करता। मार्क्स का कहना है कि राज्य की उत्पत्ति विकास द्वारा हुई। लेकिन मार्क्स द्वारा प्रतिपादित राज्य के विकास की अवधारणा और राज्य की उत्पत्ति की विकासवादी अवधारणा में मौलिक अंतर है।

राज्य की उत्पत्ति वर्ग संघर्ष से—मार्क्स का कहना है कि मानव इतिहास के प्रारंभिक युग में राज्य नहीं था। प्रारंभ में लोग जंगलों में रहते थे और भरण पोषण के लिए प्रकृति पर निर्भर रहते थे। धीरे-धीरे लोगों ने कृषि करना सीखा। कुछ चतुर लोग भूमि के स्वामी बन गये और उन्होंने अन्य लोगों को अपना दास बना दिया। इस तरह दासत्व युग का प्रारंभ हुआ। समाज, स्वामी और दास के दो वर्गों में विभाजित हुआ। स्वामियों ने अपने हितों की रक्षा करने के लिए हुआ। दासत्व के युग में भी राज्य ने शोषक वर्ग का साथ दिया है। साम्यवादी घोषणा पत्र में मार्क्स ने राज्य को पूँजीपति वर्ग को कार्यकारिणी समिति कहा है। मार्क्स और उसके अनुयायियों के अनुसार राज्य का जन्म संपत्ति के कारण ही हुआ है। संपत्ति के उदय के साथ समाज, शोषक और शोषित के दो विरोधी वर्गों में बँट गए। बदलती हुई परिस्थितियों में संपत्तिधारी लोगों ने अपने हितों की रक्षा के लिए राज्य को जन्म दिया।

मार्क्स के अनुसार मानव जाति का इतिहास शोषित के बीच वर्ग संघर्ष का इतिहास है। स्वामी और दास, सामंत और किसान, पूँजीपति और श्रमिक इन वर्गों के मध्य संघर्ष होता रहा है। मार्क्स के अनुसार राज्य इस संघर्ष में सदा शोषक वर्ग के साथ रहा है। मार्क्स का कहना है, 'राज्य उस संगठन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिसे बुर्जुआ वर्ग इसलिए अपनाता है ताकि आंतरिक और बाह्य खतरों से उसकी संपत्ति और विशेषाधिकारों की रक्षा होती रहे।'

राज्य शोषण का यंत्र—मार्क्सवादियों के अनुसार राज्य शोषण का यंत्र है। यह शोषक वर्ग द्वारा शोषित वर्ग का दमन करने वाला एक उपकरण मात्र है। यह शोषक वर्ग के हितों की रक्षा करने वाला एक अत्याचारी माध्यम है। **एंजेल्स** के शब्दों में, 'राज्य एक ऐसा यंत्र है, जिसके माध्यम से एक वर्ग दूसरे वर्ग का दमन करता है।'

इस प्रकार मार्क्स का कहना है कि राज्य की उत्पत्ति शोषक वर्ग की रक्षा के लिए हुई है। राज्य शोषक वर्ग की रक्षा के लिए बना हुआ है। इसलिए मार्क्स का कहना है कि शोषण के माध्यम से राज्य को समाप्त होना चाहिए।

मार्क्सवाद का लक्ष्य—मार्क्सवाद का उद्देश्य एक राज्यविहीन समाज की स्थापना करना है। उसने एक ऐसे साम्यवादी समाज की कल्पना की है जिसमें न तो वर्गों का अस्तित्व होगा और न ही राज्य का। अपनी पुस्तक 'साम्यवादी घोषणा पत्र में मार्क्स ने श्रमिकों को क्रांति के लिए ललकारा है। इस क्रांति के पश्चात् सर्वहारा वर्ग का शासन स्थापित होगा । पूँजीवाद का पूरी तरह उन्मूलन हो जाएगा। शोषक और शोषित वर्ग के भेदभाव समाप्त होने से राज्य की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी और धीरे-धीरे राज्य लुप्त हो जाएगा।

मार्क्स की राज्य संबंधी मान्यताएँ—संक्षेप में राज्य संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत की मुख्य मान्यताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. राज्य एक स्वाभाविक या प्राकृतिक संस्था नहीं है। संपत्तिशाली लोगों द्वारा अपने हितों व स्वार्थों की रक्षा के लिए राज्य की स्थापना की गई।
2. राज्य एक वर्गीय संस्था है। यह पूँजीपतियों द्वारा श्रमिक वर्ग का हित नहीं कर सकता।
3. राज्य शक्ति पर आधारित होता है। दूसरे शब्दों में, पूँजीपति वर्ग राज्य की सत्ता का प्रयोग अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिये श्रमिकों के विरुद्ध करते हैं।
4. राज्य एक अस्थाई संस्था है। श्रमिक वर्ग अंतत: क्रांति द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था का सफाया कर देगा। और इसके परिणामस्वरूप एक वर्गविहीन तथा राज्यविहीन समाज की स्थापना हो जाएगी।

मार्क्सवादी सिद्धांत की समीक्षा—राज्य की उत्पत्ति से संबंधित मार्क्सवादी सिद्धांत की अनेक विद्वानों द्वारा आलोचना की गई है और मार्क्सवादी दृष्टिकोण को एकांगी तथा एक पक्षीय कहा गया है। आलोचकों का कहना है कि राज्य की स्थापना न तो पूँजीपतियों के हित के लिए हुई है और न ही यह शक्ति तथा हिंसा पर आधारित संगठन है। मार्क्स के राज्य के लुप्त होने के बावजूद राज्य संबंधी मार्क्सवादी धारणा अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है।

प्र.6. राज्य के भारतीय दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन कीजिए।

Discuss in detail the Indian perspective of the state.

उत्तर

राज्य का भारतीय दृष्टिकोण
(Indian Perspective of the State)

राज्य के विषय में प्राचीन भारतीय चिंतन में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारत का शांतिपर्व और कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य की उत्पत्ति, स्वरूप, राज्य का कार्यक्षेत्र आदि का विस्तार से उल्लेख किया है। इस संदर्भ में राज्य के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु निम्नांकित बिन्दुओं का विश्लेषण आवश्यक है।

1. **राज्य की उत्पत्ति**—मनुस्मृति, शुक्रनीति और शांतिपर्व के अंतर्गत राज्य से पूर्व की अवस्था का वर्णन करते हुए यह कहा है कि राज्य विहीन अवस्था में समाज में चारों ओर अन्याय, उत्पीड़न भय तथा असुरक्षा का वातावरण व्याप्त था। बलवान लोग निरंकुश थे और वे निर्बलों पर नाना प्रकार के अत्याचार करते थे। निर्बल लोग असुरक्षित थे और बलवानों के भय से इधर-उधर छिपते फिरते थे। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण संसार की रक्षा के लिए और निर्बलों के मन से असुरक्षा के भाव को दूर करने तथा बलवानों पर अंकुश लगाने के लिए स्वयं ईश्वर ने राजा की सृष्टि की। ईश्वर से निर्मित होने के कारण राजा निरंकुश है किन्तु धर्म एवं नैतिकता के बंधनों से वह मर्यादित है। राजा इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, पृथ्वी और कुबेर जैसे तात्विक गुणों से युक्त होता है।

   कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति के समझौता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और राज्य की उत्पत्ति को एक सामाजिक समझौते का परिणाम माना है। यह समझौता शासक व शासितों के मध्य हुआ है, इसमें शासक के शासितों के प्रति कुछ कर्त्तव्य हैं तो शासितों के शासक के विरूद्ध कुछ अधिकार भी हैं। प्रजा या शासितों द्वारा राजा को अपदस्थ कर किसी अन्य योग्य व्यक्ति को शासक बनाने की शक्ति का प्रयोग यह व्यक्त करता है कि कौटिल्य ने शासकीय शक्ति का अन्तिम स्रोत जनता को माना है और जनता की सहमति को इस शासकीय शक्ति का आधार माना है।

2. **राज्य का स्वरूप**—प्राचीन भारतीय विचारकों ने राज्य के सावयवी स्वरूप का वर्णन किया गया है और राज्य के सात घटक माने हैं जिन्हें 'प्रकृति' नाम दिया गया है। राज्य की सात प्रकृतियाँ निम्नानुसार हैं—

   (i) **स्वामी**—मनु ने राजा को स्वामी की संज्ञा दी है और नैतिक गुणों और प्रशासनिक क्षमता से युक्त एक कर्त्तव्यनिष्ठ राजा को राज्य के लिए आवश्यक माना है। शुक्रनीति और शांतिपर्व में स्वामी के स्थान पर राजा शब्द प्रयुक्त हुआ है।

   (ii) **मंत्री**—प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के अनुसार राज्य की शक्ति राजा की निजी शक्ति नहीं है बल्कि एक संस्थागत शक्ति है। अत: राजा इस शक्ति का प्रयोग संस्थागत रूप में ही कर सकता है। राज्य की शक्ति के संस्थागत रूप का नाम मंत्रिपरिषद् है। अत: राजा को यह चाहिए कि वह राज्य के दायित्वों के निर्वाह संबंधी प्रत्येक कार्य मंत्रियों के परामर्श के अनुसार ही करे और मंत्रीपद पर सुयोग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करें। कौटिल्य ने मंत्री के लिए अमात्य शब्द का प्रयोग किया है।

   (ii) **पुर**—पुर का अर्थ राज्य की राजधानी से है। मनु ने ऐसे क्षेत्र को राज्य की राजधानी बनाने का उल्लेख किया है जो भली-भाँति सुरक्षित हो और जिसमें दुर्ग भी हो। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीति और शांतिपर्व में दुर्ग को राज्य की प्रकृति का तीसरा अंग माना गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में दुर्गों के कई प्रकार बताये गये हैं, जैसे—धन्वन दुर्ग, महिदुर्ग, जल दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, मनुष्य दुर्ग एवं गिरि दुर्ग।

   (iv) **राष्ट्र**—भारतीय विचारकों ने एक निश्चित भौगोलिक सीमाओं के अधीन आने वाली भूमि और उस पर निवास करने वाली जनता को राष्ट्र की संज्ञा दी है। कौटिल्य ने इसके लिए जनपद और शांतिपर्व में देश शब्द प्रयोग किया है। जनपद की भौगोलिक परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिए जिसके कारण इनकी रक्षा करना सुगम हो। जनपद की भूमि उपजाऊ होनी चाहिए तथा जनपद में सरोवर, नदियां, पर्वत तथा वन प्रचुर मात्रा में होने चाहिए।

   (v) **कोष**—राज्य में शासन के पास एकत्रित धन को कोष का नाम दिया है और यह विचार व्यक्त किया है कि राज्य के पास पर्याप्त कोष होने पर ही राजा प्रजा की सुरक्षा और उसके कल्याण के लिए विभिन्न कार्यों को कर सकेगा।

   (vi) **दण्ड**—दण्ड या सेना को भारतीय विचारक राज्य की सुरक्षा के लिए अनिवार्य मानते हैं। सेना पर सुरक्षा का दोहरा दायित्व होता है आन्तरिक तथा बाह्य सुरक्षा । मनु ने राजा से यह अपेक्षा की है कि वह राज्य की रक्षा के लिए सेना के सभी अंगों जैसे हाथी सेना, रथ सेना, अश्व सेना, जल सेना तथा पैदल सेना आदि को सुदृढ़ बनाये रखे।

   (vii) **मित्र**—भारतीय विचारकों ने मित्र को भी राज्य के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार राज्य को अन्य राज्यों के साथ भी अपने संबंधों का निर्वाह करना पड़ता है। अत: इन संबंधों के कुशलतापूर्ण संचालन के लिए यह आवश्यक है कि राजा ऐसे प्रयास करे कि उसके मित्र राज्यों की संख्या अधिकतम हो और शत्रु राज्यों की संख्या न्यूनतम हो।

   राज्य के इन सभी अंगों के तुलनात्मक महत्त्व के संबंध में भारतीय विचारकों ने कहा है कि प्रत्येक प्रकृति का महत्त्व उसके पश्चात् दी गई प्रकृति की तुलना में अधिक है। इस प्रकार स्वामी अर्थात् राजा को राज्य का शीर्षस्थ घटक माना जाना चाहिए। राजा द्वारा सर्वाधिक महत्त्व मंत्री को दिया जाना चाहिए। राजा तथा मंत्री द्वारा राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को

TOUCH 'n PASS

सुचारू रूप से संचालित करने के लिए अन्य प्रकृतियों का समुचित उपयोग किया जाना चाहिए। राज्य की प्रकृतियों की तुलनात्मक वरीयता का निर्धारण करते हुए भी मनु ने यह माना है कि किसी समय विशेष में किसी कार्य विशेष के निष्पादन में जिस प्रकृति विशेष की भूमिका हो उस समय विशेष में वह प्रकृति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानी जानी चाहिए।

3. **राज्य का कार्यक्षेत्र**—प्राचीन भारतीय विचारकों ने राज्य के कार्यक्षेत्र का व्यवस्थित विवेचन किया है। राज्य के कर्त्तव्यों में मनु ने प्रजा रक्षण, प्रजा पालन तथा धर्म के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के निर्वाहकों को महत्त्वपूर्ण माना है। प्राचीन भारतीय विचारकों के अनुसार राज्य के प्रमुख कर्त्तव्य निम्नानुसार हैं—

(i) **प्रजारक्षण**—यह राज्य का प्रमुख दायित्व है। प्राचीन भारतीय विचारकों के अनुसार प्रजारक्षण वास्तविक रूप में राज्य के अस्तित्व का आधार है क्योंकि प्रजा को सुरक्षा प्रदान करने के लिए ही ईश्वर ने राज्य की सृष्टि की। प्रजा की रक्षा के इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए राज्य को आन्तरिक क्षेत्र में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए और बाहरी आक्रमण से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। साथ ही राज्य को अपराधियों और समाज कंटकों से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए और उसे अनाचार, चोरी, डकैती आदि अपराधों को रोकने के लिए अपनी दण्ड शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। मनु के अनुसार प्रजा रक्षण का कार्य करने वाले राजा के सुखों में वृद्धि होती है किन्तु इन कार्यों की उपेक्षा करने से प्रजा दु:खी रहती है एवं राजा का नाश होता है।

(ii) **प्रजापालन**—मनुस्मृति, शांतिपर्व, शुक्रनीति और अर्थशास्त्र में प्रजापालन को भी राज्य का एक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य माना है। राज्य द्वारा प्रजा के लिए चारों पुरूषार्थों-धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की स्थापना को मनु ने राज्य का महत्त्वपूर्ण दायित्व माना है। मनु के अनुसार राज्य का यह कर्त्तव्य है कि अप्राप्त धन एवं भूमि को प्राप्त करे, जो प्राप्त हो उसकी रक्षा करे रक्षित की वृद्धि करे और होने वाली वृद्धि का सुपात्रों में वितरण करे।

प्रजापालन के दायित्व की पूर्ति के लिए मनु ने राज्य के अनेक दायित्वों की पूर्ति को आवश्यक माना है जैसे-कृषि की उन्नति में मदद देना तथा सिंचाई के साधनों का प्रबन्ध करना। व्यापार की उन्नति में मदद देना तथा यातायात के मार्गों का विकास करना और इन्हें लुटेरों से सुरक्षित रखना। नाप-तोल के बाटों का निरीक्षण करना, मूल्यों का नियंत्रण करना एवं मिलावट को रोकना। अनाथ बालकों तथा असहाय व्यक्तियों एवं उनकी सम्पत्ति की रक्षा करना। असहाय एवं रोगी स्त्रियों और उनकी सम्पत्ति की रक्षा करना। पाठशालाओं, देवालयों, औषधालयों एवं धर्मशालाओं का निर्माण करना। ब्राह्मणों का सम्मान करना एवं दान आदि के द्वारा उनकी आर्थिक सहायता करना। समाज कंटकों, धूर्तों, ठगों एवं जुआरियों तथा रिश्वतखोर कर्मचारियों आदि को दण्डित करना आदि।

(iii) **अर्थव्यवस्था का नियमन**—वैदिक परम्परा के अनुसार धर्म के बाद अर्थ को एक महत्त्वपूर्ण पुरूषार्थ माना गया है। उसके अनुसार प्रजा एवं स्वयं राजा को धन का उपार्जन धर्मानुसार ही करना चाहिए। प्रजा की भौतिक और आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित करना राज्य का कर्त्तव्य है। राजा प्रजा से न्यायपूर्वक कर ग्रहण करे तथा प्रजा की सम्पत्ति एवं समृद्धि के अन्य साधनों की रक्षा करे। मनु ने राजा को यह परामर्श दिया है कि वह प्रजा से उसकी सामर्थ्य के अनुसार कर ग्रहण करे तथा प्रजा पर करों का अनावश्यक बोझ न लादे। इसके अतिरिक्त मनु ने राजा से यह अपेक्षा की है कि वह व्यापारियों के हितों की रक्षा करे और साथ ही व्यापारियों द्वारा किये जाने वाले आर्थिक अपराध जैसे मिलावट करना, अधिक मूल्य लेना तथा कम तोलना आदि से प्रजा की रक्षा करे।

(iv) **सामाजिक व्यवस्था का निर्वाह व नियमन**—प्राचीन भारतीय विचारकों ने सामाजिक व्यवस्था का निर्वाह व नियमन राज्य का कर्त्तव्य माना है, राज्य प्रत्येक वर्ण द्वारा उसके निर्धारित कर्त्तव्यों के पालन को सुनिश्चित करे। धर्म को सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार मानते हुए मनुस्मृति में समाज के सभी व्यक्तियों से यह अपेक्षा की गई है कि वे स्वधर्म का पालन करें साथ ही शासक से यह अपेक्षा की गई है कि वह अपनी दण्ड शक्ति के माध्यम से समाज के सभी व्यक्तियों को स्वधर्म पालन हेतु बाध्य करे। उसके अनुसार यदि विभिन्न वर्गों के सदस्य अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन नहीं करेंगे तो समाज में वर्ण संकरता व्याप्त हो जायेगी, इसी प्रकार समस्त आश्रमों की रक्षा को भी राज्य का दायित्व माना है।

(v) **न्याय की व्यवस्था**—मनुस्मृति, शांतिपर्व, शुक्रनीति और अर्थशास्त्र में न्याय की स्थापना को राज्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों के रूप में मान्यता दी गयी है और इसे राज्य के अस्तित्व का आधार भी माना गया है क्योंकि

TOUCH 'n' PASS

समाज में व्याप्त अन्याय का निराकरण करने एवं न्याय की स्थापना करने हेतु ईश्वर ने राजा की सृष्टि की है। मनु के अनुसार संसार में निष्पाप लोगों की संख्या बहुत कम होती है। व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ आदि से वशीभूत होकर अन्य व्यक्तियों के अधिकारों को छीनने लगता है तथा अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना भी करने लगता है। मनु के अनुसार राज्य की दण्ड शक्ति दुष्टों को भयभीत रखती है एवं सभी व्यक्तियों को अपने कर्त्तव्य पालन हेतु बाध्य करती है तथा अपने अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ बनाती है। अपने इस दायित्व के पालन द्वारा ही राज्य समस्त व्यक्तियों में सुरक्षा की भावनाओं का संचार करता है। मनुस्मृति में अपराधों एवं दण्डों का विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है और राजा को यह निर्देश दिया गया है कि वह स्वयं न्याय कार्य करे।

(vi) **प्रशासनिक प्रणाली का निर्वाह**—राज्य के दायित्वों की पूर्ति के लिए प्राचीन भारतीय विचारकों ने एक सक्षम और संगठित प्रशासनिक व्यवस्था को अनिवार्य माना है और राजा को परामर्श दिया है कि वह प्रशासनिक व्यवस्था, कर्मचारियों तथा अधिकारियों पर समुचित नियन्त्रण रखे और यह सुनिश्चित करे कि राज्य के कर्मचारी प्रजा के प्रति दायित्वों का निष्ठापूर्वक पालन करते रहें व शक्तियों के दुरूपयोग द्वारा प्रजा को पीड़ित न करें। प्रशासन के विभिन्न पदों पर राजा, गुणी, चरित्रवान तथा राजभक्त अधिकारियों तथा कर्मचारियों की नियुक्ति करे और गुप्तचरों के माध्यम से उनके आचरण का परीक्षण करता रहे तथा भ्रष्ट एवं प्रजा पीड़क अधिकारियों को राजा द्वारा दण्डित किया जाए।

(vii) **अन्तर्राज्य संबंधों का संचालन**—प्राचीन भारतीय विचारकों ने राज्य के हितों एवं रक्षा में वृद्धि के लिए विदेश नीति के विवेकपूर्ण संचालन पर बल दिया है। मनु के अनुसार अन्तर्राज्य सम्बन्धों के कुशल संचालन द्वारा राजा राज्य को अनावश्यक आक्रमणों से बचाता है। पर-राष्ट्र संबंधों के निर्वाह के सम्बन्ध में मनु ने शासक को यह परामर्श दिया है कि वह इस तरह का प्रयत्न करे कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसके मित्र राज्यों की संख्या अधिकतम हो और शत्रु राज्यों की संख्या न्यूनतम हो। पर राष्ट्रों से संबंधों के संचालन के लिए मनु ने इसके सैद्धान्तिक आयाम के रूप में राज्य द्वारा मण्डल सिद्धान्त, षाडगुण्य नीति तथा उपायों के पालन का सुझाव दिया है तथा पर-राष्ट्र संबंधों के व्यावहारिक पक्ष के रूप में प्रभावी दूत एवं गुप्तचर व्यवस्था के संचालन को आवश्यक माना है।

(viii) **कृषि व व्यापार की व्यवस्था**—महाभारत में राज्य के लिये व्यापार और कृषि का महत्त्व दर्शाया गया है। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह रक्षित राज्य के व्यापार और कृषि की उन्नति के लिये सचेत रहे। राज्य का कोष और सेना कृषि और व्यापार की समृद्धि पर निर्भर है। जो राज्य व्यापार की दृष्टि से सम्पन्न होता है उसे भय नहीं रहता। जिस राज्य में व्यापार पर संकट रहता है वह राज्य निंदा के योग्य है। कृषि कार्यों के लिये जलाशय आदि का निर्माण करना राज्य का कर्त्तव्य है।

(ix) **पर-राष्ट्र संबंधों का निर्वाह**—शुक्र तथा कौटिल्य के अनुसार एक राज्य को अन्य राज्यों के साथ भी संबंधों का निर्वाह करना होता है। अत: राज्य से यह अपेक्षित है कि वह पर-राष्ट्र संबंधों को इस प्रकार संचालित करे कि राष्ट्रीय हित एवं प्रजा के कल्याण व सुरक्षा को अधिक से अधिक सुनिश्चित किया जा सके। राजा से यह अपेक्षित है कि वह अन्तर्राज्य संबंधों का कुशलता पूर्वक संचालन करे एवं राज्य को अनावश्यक युद्धों से बचाए। इस हेतु शुक्र ने राजा द्वारा कुछ नीतियों और उपायों का पालन किया जाना आवश्यक माना है।

(x) **राज्य के शिक्षा सम्बन्धी कार्य**—शुक्र ने राज्य के दायित्वों में शिक्षा के प्रसार को भी सम्मिलित किया है और कहा है कि राज्य योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करे तथा शिक्षा पूर्ण हो जाने पर शिक्षित व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार राजकीय पदों पर नियुक्त करे। विद्या और कला में पारंगत व्यक्तियों को राज्य द्वारा सम्मानित किया जाए तथा राज्य विद्याओं एवं कलाओं की उन्नति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहे। राज्य के प्रतिष्ठित गुणवान व्यक्ति, तपस्वी, विद्वान, ज्योतिषी, मंत्र तंत्र वेत्ता, चिकित्सक आदि के भरण-पोषण की व्यवस्था करे तथा उनके लिए मासिक या वार्षिक वृत्ति की व्यवस्था करे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय विचारकों द्वारा राज्य के विस्तृत कार्यों का उल्लेख करते हुए एक लोक कल्याणकारी राज्य के स्वरूप को स्वीकार किया गया है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. राज्य के उदारवादी दृष्टिकोण का क्या तात्पर्य है? उदारवाद की आलोचना किन बिन्दुओं के आधार पर की जाती है? उदारवाद के योगदान का भी उल्लेख कीजिए।

What is meant by liberal perspective of the state? On the basis of what points is liberalism criticized? Also, mention the contribution of liberalism.

उत्तर

राज्य का उदारवादी दृष्टिकोण
(Liberal Perspective of the State)

एक राजनैतिक सिद्धान्त के रूप में उदारवाद दो पृथक तत्वों का यौगिक है। इनमें से एक लोकतंत्र है और दूसरा व्यक्तिवाद।

—डब्ल्यू.एम, मेकगवर्न

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में उदारवादी विचारधारा का अस्तित्व पिछली चार शताब्दियों से है। यह एक लचीली एवं गतिशील विचारधारा है जिसने समय की आवश्यकतानुसार स्वयं को संशोधित एवं परिवर्तित किया है। किन्तु अपने केन्द्रीय विचार को इसने सदैव ही बनाये रखा है कि व्यक्ति साध्य है तथा राज्य एवं अन्य संस्थायें साधन मात्र हैं।

उदारवाद के ऐतिहासिक विकास के आधार पर दो चरण देखे जा सकते हैं। शास्त्रीय (चिरसम्मत) उदारवाद तथा आधुनिक उदारवाद। उदारवाद की इन दोनों श्रेणियों तथा इनसे सम्बन्धित उदारवादी विचारों की व्याख्या निम्नानुसार की जा सकती है—

1. **शास्त्रीय (चिरसम्मत) उदारवाद** (Classical Liberalism)—प्राचीन उदारवाद को नकारात्मक उदारवाद भी कहते हैं क्योंकि इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए राज्य की नकारात्मक भूमिका पर बल दिया जाता है। इंग्लैण्ड में प्रारम्भिक स्तर पर उदारवाद का जो रूप सामने आया उसे शास्त्रीय उदारवाद कहा जाता है। यह वैयक्तिक अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा की माँग तक सीमित था। कालान्तर में आर्थिक और राजनीतिक संगठन तथा राजनीतिक कार्यक्रम से संबंधित प्रश्न भी उसकी परिधि में आ गये। अपनी इस अवस्था में उदारवाद धार्मिक स्वतंत्रता, सहिष्णुता, संविधानवाद तथा राजनीतिक अधिकारों की माँग के रूप में सामने आया। 1688 की क्रान्ति इतिहास की सबसे पहली उदारवादी क्रान्ति मानी जाती है। उसने उस शताब्दी की उदारवादी उपलब्धियों को समेकित किया और सुनिश्चित सांविधानिक रूप भी दिया। इस उदारवाद के विकास में जर्मी बेंथम, (1748 से 1832) एडमस्मिथ (1723 से 1790) तथा हर्बर्ट स्पेन्सर (1820 से 1903) का विशेष योगदान रहा है। शास्त्रीय उदारवाद, जिसे व्यक्तिवादी उंदारवाद या नकारात्मक उदारवाद भी कहा जाता है, की राज्य के संबंध में निम्नांकित धारणाएं है—

   (i) **राज्य का यांत्रिक रूप**—उदारवादियों के अनुसार राज्य कृत्रिम व मनुष्य कृत हैं इनकी रचना व्यक्तियों ने अपनी इच्छानुसार अपनी सुविधा के लिए की है, अत: वे आवश्यकतानुसार इसमें संशोधन व परिवर्तन भी कर सकते हैं। राज्य का व्यक्ति से पृथक कोई अस्तित्व नहीं है व्यक्ति का जीवन ही राज्य का जीवन होता है तथा व्यक्ति के कल्याण में ही राज्य का कल्याण निहित होता है।

   (ii) **व्यक्ति साध्य, समाज तथा राज्य साधन**—उदारवादी व्यक्ति को साध्य तथा समाज और राज्य को साधन मानते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति का नैतिक और आध्यात्मिक कल्याण तथा उसका विकास सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। अत: किसी भी समुदाय, समाज अथवा राज्य की कोई भी व्यवस्था, परम्परा अथवा कानून ऐसा नहीं हो सकता जिनके नाम पर व्यक्ति का बलिदान किया जा सके क्योंकि ये सब व्यक्ति के लिए होते हैं व्यक्ति इनके लिए नहीं। अत: इन सबकी सार्थकता उसी रूप में हैं जहाँ तक ये व्यक्ति के हितों की पूर्ति में सहायक हों और यदि वे अपना यह उद्देश्य पूरा नहीं करते तो उन्हें नष्ट भी किया जा सकता है अथवा बदला भी जा सकता है।

   (iii) **व्यक्ति के अधिकारों के प्राकृतिक रूप की मान्यता**—उदारवाद के अनुसार व्यक्ति के अधिकार प्राकृतिक हैं जिनका उल्लंघन करने का अधिकार समाज व राज्य को नहीं है। समाज व राज्य व्यक्ति के अधिकारों के सृष्टा नहीं है, बल्कि उनका निर्माण व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए किया गया है। व्यक्ति के ये प्राकृतिक अधिकार ही उसे स्वतंत्रता की गारन्टी देते हैं। लॉक के अनुसार, 'जीवन, सम्पत्ति व स्वतंत्रता व्यक्ति के मुख्य प्राकृतिक अधिकार हैं जो कि राज्य या समाज द्वारा नहीं दिये गये। अत: राज्य या समाज ना तो इसमें कोई कमी कर सकते हैं और ना ही उन्हें समाप्त कर सकते हैं।'

   (iv) **स्वतंत्रता के आदर्श की मान्यता**—उदारवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन निरपेक्ष रूप से करता है। उसकी मान्यता है कि व्यक्ति प्रकृति से ही स्वतंत्र उत्पन्न होता है। अत: स्वतंत्रता उसका जन्म सिद्ध अधिकार है। अत: उसके

ऊपर किसी ऐसी सत्ता का नियंत्रण नहीं होना चाहिए जो मनमाने ढंग से उसकी स्वतंत्रता पर कोई अंकुश लगा सके। उदारवाद जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थन करता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता के महान समर्थक हॉबहाउस ने व्यक्ति की नौ प्रकार की स्वतंत्रताओं की चर्चा की है। जैसे—(i) नागरिक स्वतंत्रता, (ii) वैयक्तिक (iii) आर्थिक (iv) वित्तीय (v) पारिवारिक (vi) सामाजिक (vii) राजनैतिक (viii) जातीय व राष्ट्रीय तथा (ix) अन्तर्राष्ट्रीय स्वतंत्रता।

(v) **समानता के आदर्श की मान्यता**—व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ-साथ उदारवादी व्यक्ति की समानता का भी समर्थन करते हैं। इनके अनुसार व्यक्ति समान प्राकृतिक अधिकार लेकर उत्पन्न होते हैं। अत: इन्हें समान माना जाना चाहिए। हालांकि प्राकृतिक क्षमताओं की दृष्टि से मनुष्यों में भिन्नता होती है, किन्तु राज्य के कानून व शासन की दृष्टि में सभी व्यक्तियों को समान माना जाना चाहिए तथा जाति, धर्म, लिंग अथवा भाषा आदि के आधार पर राज्य की ओर से उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

(vi) **राज्य के न्यूनतम कार्य**—इस दौर में उदारवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता और राज्य के कार्य क्षेत्र को एक दूसरे का विरोधी मानता था। अत: अधिकतम स्वतंत्रता के लिए यह आवश्यक माना गया कि राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम हो। तदनुसार यह प्रस्तावित किया गया कि राज्य बाह्य आक्रमण से रक्षा, आन्तरिक शांति-व्यवस्था तथा इन दोनों कार्यों के निष्पादन के लिए कर प्रणाली का संचालन करे। इसे अहस्तक्षेप का सिद्धांत कहा जाता है जो उन्मुक्त बाजार और स्वतंत्र व्यापार पर आधारित मुक्त बाजार अर्थ व्यवस्था का समर्थन करता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि शास्त्रीय उदारवाद राज्य को एक कृत्रिम संस्था मानता है, जिसे अपनी सर्वोच्च सत्ता के माध्यम से समाज में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना करता है। इससे व्यक्ति की स्वतंत्रता कुछ मर्यादित होती है, लेकिन बदले में व्यक्ति हिंसक संघर्ष और अराजकता से बच जाता है। इस अर्थ में राज्य एक आवश्यक बुराई है।

2. **आधुनिक उदारवाद** (Modern Liberalism)—उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शास्त्रीय उदारवाद और उससे जुड़ी चिन्तन परम्परा में निरन्तर परिवर्तन होता गया। इसमें राज्य की नकारात्मक भूमिका के स्थान पर उसके सकारात्मक पक्ष पर बल दिया गया। अत: इसे 'सकारात्मक उदारवाद ' भी कहते हैं। इस परिवर्तन में उसका मूलभूत आदर्श 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' तो वही रहा किन्तु इसकी प्राप्ति के साधन बदल गये। शास्त्रीय उदारवाद की सफलता के परिणामस्वरूप व्यक्ति को वांछित राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। अत: वह राज्य के अहस्तक्षेपवादी स्वरूप की माँग तक सीमित न रहा बल्कि उसने ऐसे राजनीतिक और आर्थिक संगठन की माँग की जो व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दिला सके। प्रारम्भ में उदारवाद ने मध्यम वर्ग के लिए जिन अधिकारों की माँग की वे उन्हें मिल चुके थे। किन्तु किसान और मजदूर वर्ग अभी भी इससे वंचित थे। इनके लिए आर्थिक स्वतंत्रता तभी संभव थी जब राज्य इस संबंध में कोई ठोस कार्यवाही करता। आधुनिक उदारवाद में व्यक्ति के कल्याण को विशेषत: निर्बल और निर्धन व्यक्ति के कल्याण को उसकी स्वतंत्रता की शर्त माना जाता था। शास्त्रीय उदारवाद के विपरीत आधुनिक उदारवाद यह विश्वास करता है कि व्यक्तियों के परस्पर संबंधो को नियमित और संतुलित करने के लिए राज्य को सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। आगे चलकर यही आधुनिक उदारवाद 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) की अवधारणा के रूप में विकसित हुआ। आधुनिक उदारवादियों में जॉन स्टुअर्ट मिल (1806-1873), टी.एच.ग्रीन (1836-1882), एल. टी. हाबहाउस (1864-1929) एच.जे. लास्की (1893-1950) तथा आर.एम. मैकाईवर (1882-1970) आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक उदारवाद, जिसे सकारात्मक उदारवाद भी कहा जाता है, ने राज्य को एक ऐसी वर्गोपरि संस्था के रूप में प्रस्तुत किया, जो विरोधी वर्ग हितों के बीच आंशिक रूप से सामंजस्य स्थापित करती है। अब व्यक्ति की स्वतंत्रता और राज्य सत्ता एक दूसरे के विरोधी नहीं रहते हैं। बल्कि राज्य अपनी सकारात्मक गतिविधियों द्वारा ऐसी सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ निर्मित करता है, जिसमें सभी व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता और दूसरे अधिकारों का उपयोग कर सके। टी.एच. ग्रीन ने इसे ही 'बाधाओं को बाधित करना' कहा है। तदनुसार राज्य केवल शक्ति संरचना नहीं रह जाता, जिसे सार्वजनिक व्यवस्था की स्थापना मात्र करनी है, बल्कि वह सार्वजनिक कल्याण के जरिए स्वतंत्रता को वास्तविक बनाने वाली संस्था बन जाता है। इस क्रम में वह केवल नकारात्मक कार्य ही नहीं, बल्कि निशुल्क एवं अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, श्रम कल्याण आदि सकारात्मक कार्य भी करता है । अध्याय-6 में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का विस्तृत विवेचन किया गया है।

TOUCH 'n' PASS

उदारवाद की आलोचना (Criticism of Liberalism)

उदारवार के विरुद्ध कही जाने वाली बातों को निम्नानुसार समझा जा सकता है—

1. **राज्य एक आवश्यक बुराई नहीं है**—उदारवादी राज्य को आवश्यक बुराई मानते हैं किन्तु यह धारणा भ्रामक है राज्य का निर्माण मानव जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ है। अत: उसका आदर्श मानव कल्याण में वृद्धि करना है। राज्य के बिना एक सभ्य और सुसंस्कृत समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।
2. **राज्य स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करता**—उदारवादियों की यह धारणा भी अनुचित है कि राज्य के कार्य क्षेत्र में किया गया विस्तार व्यक्ति की स्वतंत्रता को नष्ट करने वाला होगा। जबकि वास्तविकता यह है कि राज्य द्वारा बनाये गये कानूनों से व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा होती है उनका हनन नहीं होता।
3. **खुली प्रतियोगिता दुर्बल वर्ग के लिए हानिप्रद**—कुछ उदारवादी खुली प्रतियोगिता में विश्वास करते हैं तथा 'बलशाली ही जीवित रहें' (Survival of the Fittest) के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। ये स्थिति समाज के निर्बल वर्गों के लिए हानिकारक होगी। साथ ही आर्थिक क्षेत्र में भी खुली प्रतियोगिता सामाजिक दृष्टि से लाभदायक नहीं है।
4. **पूँजीवादी वर्ग का दर्शन**—उदारवाद पूँजीवादी वर्ग का दर्शन है। ये पूँजीवादी व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है। यह राज्य को आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार भी केवल पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए देता है।
5. **सामाजिक परिवर्तन का गलत सिद्धान्त**—उदारवाद की मान्यता है कि क्रमिक विकास द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाना संभव है। जबकि वास्तविकता यह है कि वर्ग विभाजित समाज में परिवर्तन वर्ग संघर्ष तथा क्रान्ति द्वारा ही होता है, साथ ही उदारवाद आर्थिक सुधारों के द्वारा आर्थिक समानता स्थापित किया जाना संभव मानता है जबकि बिना निजी सम्पत्ति को समाप्त किये आर्थिक समानता संभव नहीं।

उदारवाद का योगदान (Contribution of Liberalism)

उदारवाद का प्रभाव जीवन के निम्नलिखित क्षेत्रों में देखा जा सकता है—

1. **सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र**—सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में उदारवाद ने धार्मिक स्वतंत्रता व सहिष्णुता पर बल दिया। जिससे रोम के पोप की राजनीतिक शक्ति समाप्त हुई। चर्च व राज्य का अवांछनीय गठबंधन समाप्त हुआ तथा व्यक्ति धार्मिक रूप से स्वतंत्र हुआ।
2. **आर्थिक क्षेत्र**—आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद ने राजकीय अहस्तक्षेप पर आधारित मुक्त व्यापार नीति पर बल दिया जिसके फलस्वरूप दूर-दूर के देशों में व्यापारिक संबंध स्थापित हुए और विश्व बाजार का निर्माण हुआ।
3. **राजनीतिक क्षेत्र**—राजनीति के क्षेत्र में उदारवाद ने स्वतंत्रता व समानता पर आधारित लोकतंत्रीय शासन प्रणाली का समर्थन किया। जिससे राजतंत्रतात्मक व्यवस्थाओं का अन्त होकर विश्व के अनेक भागों में सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर लोकतंत्रीय व्यवस्थाओं की स्थापना हुई। राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के समर्थन के कारण यूरोप की अनेक जातियों को तथा एशिया व अफ्रीका के अनेक देशों को स्वाधीनता प्राप्त हुई और उनमें राष्ट्रीय सरकारों का निर्माण हुआ।

प्र.8. लोक कल्याणकारी राज्य से आपका क्या तात्पर्य हैं? लोक कल्याणकारी राज्य के उदय के कारण लक्षण तथा कार्यों को स्पष्ट कीजिए। इसकी आलोचना के मुख्य बिन्दुओं का भी उल्लेख कीजिए।

What do you mean by welfare state? Explain the functions, features and causes of the rise of public welfare state. Also, mention the main points of its criticism.

उत्तर

लोक कल्याणकारी राज्य का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Welfare State)

लोक कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जो राज्य द्वारा किये जाने वाले साधारण कार्यों के अतिरिक्त लोक कल्याणकारी गतिविधियाँ—जैसे बेकारी दूर करना, बीमा योजनाएँ, वृद्धावस्था पेंशन व अन्य सुरक्षा प्रदान करना आदि सम्पन्न करता है।

लोक कल्याणकारी राज्य के निम्न उद्देश्य हैं—

1. लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य नागरिकों द्वारा सच्ची स्वतंत्रता के उपभोग को सम्भव बनाना है।
2. राज्य के कार्यक्षेत्र के विस्तार से व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को सुनिश्चित करना।
3. जनता के सभी वर्गों के कल्याण हेतु योजनाएँ बनाना।
4. सभी नागरिकों को मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।

TOUCH 'n PASS

5. सामाजिक कार्यों को सम्पन्न करना भी लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य है।

कल्याणकारी राज्य ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है जिनमें प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके।

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा
(Concept of Public Welfare State)

आजकल लोक कल्याणकारी राज्य का सिद्धान्त अत्यधिक लोकप्रिय है। विश्व के अनेक देश जो ब्रिटिश तथा फ्रेंच साम्राज्यवाद के पंजे से कुछ वर्ष पहले मुक्त हुए थे, अब लोकतंत्र तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाने के लिए उत्सुक हैं। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा अब इतनी लोकप्रिय हो गई है कि अनेक विद्वानों ने इसकी परिभाषा करनी आरम्भ कर दी है।

1. डॉ. अब्राहम (Dr. Abraham) ने कहा है, 'कल्याणकारी राज्य वह है जो अपनी आर्थिक व्यवस्था का संचालन आय के अधिकाधिक समान वितरण के उद्देश्य से करता है।'
2. डॉ. गार्नर के अनुसार—'कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन, राष्ट्रीय धन तथा जीवन के भौतिक, बौद्धिक तथा नैतिक स्तर को विस्तृत करना है।'
3. मैकाईवर ने कहा है कि 'राज्य का सकारात्मक तथा नकारात्मक कार्य शासन व्यवस्था को ठीक स्थिति में रखना तथा मानवीय व्यक्तित्व का विकास करना है।
4. हॉब्सन ने कहा है कि 'आज राज्य एक डॉक्टर, नर्स, शिक्षक, व्यापारी, उत्पादक, बीमा कम्पनी का एजेण्ट, मकान बनाने वाला, नगर योजना तैयार करने वाला तथा रेलवे नियंत्रक इत्यादि हो गया है।'
5. कान्ट ने कहा है कि 'कल्याणकारी राज्य का अर्थ उस राज्य से है जो अपने नागरिकों के लिए अधिकतम सामाजिक सुविधाएँ प्रदान करे।'
6. जवाहर लाल नेहरू ने अपने एक भाषण में कल्याणकारी राज्य को परिभाषित करते हुए कहा था, 'सबके लिए समान अवसर प्रदान करना, अमीरों और गरीबों के बीच अन्तर मिटाना और जीवन स्तर को ऊपर उठाना लोक हितकारी राज्यों का आधारभूत तत्व है।''

जी.डी.एच.कोल ने कल्याणकारी राज्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि, 'कल्याणकारी राज्य वह है जिसमें प्रत्येक नागरिक को रहन-सहन के निम्नतम स्तर तथा अवसर प्राप्त हों।' आर्थर श्लेसिंगर ने कल्याणकारी राज्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि, 'कल्याणकारी राज्य वह व्यवस्था है जिसमें सरकार रोजगार, आय, शिक्षा, डॉक्टरी सुविधा, सामाजिक सुरक्षा तथा आवास के निर्धारित स्तर को सभी नागरिकों को प्रदान करने के लिए सहमत हो।' हरबर्ट एच. लेमेन के शब्दों में 'कल्याणकारी राज्य वह है जिसमें लोगों को अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं का विकास करने का अवसर प्राप्त हो। उन्हें अपनी प्रतिभाओं के लिए समुचित पुरस्कार मिले तथा वे भूख, गृहविहीनता तथा जाति, धर्म अथवा रंग एवं भेदभाव के भय से मुक्त होकर सुखी रह सकें।''

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा राज्य के कार्य क्षेत्र का एक आधुनिक सिद्धान्त है। यह शब्द सामान्यत: उस राज्य के लिए अपनाया जाता है जो अपने नागरिकों के लिए केवल न्याय, सुरक्षा तथा आन्तरिक व्यवस्था करके ही संतोष नहीं कर लेता, अपितु उनके कल्याण की अभिवृद्धि के लिए जीवन के समस्त आयामों के विकास पर बल देता है।

लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा व्यक्तिवाद तथा समाजवाद का मिश्रण है। यह व्यक्तिवाद की भाँति व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करती और समाजवाद की भाँति अधिक से अधिक कार्यों का निष्पादन करती है। लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा के पीछे यही ध्येय है कि व्यक्ति को सुखी एवं समृद्ध बनाया जाए और इस हेतु राज्य द्वारा आवश्यक सेवा कार्यों का निष्पादन किया जाए।

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के विकास में इंग्लैण्ड का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। बेन्थम और जे.एस. मिल के उपयोगितावादी चिन्तन में कल्याणकारी राज्य का दर्शन समाहित है। इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम के समय जिस 'निर्धन कानून' की सृष्टि गरीबों एवं शारीरिक दृष्टि से अयोग्य व्यक्तियों को राहत देने के लिए की गई थी उसमें जनहित की भावना निहित थी। इंग्लैण्ड के फेबियन सामाजिक दार्शनिकों ने कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की प्रगति में परोक्ष रूप से योगदान किया है। इंग्लैण्ड की श्रमिक दलीय सरकार ने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण द्वारा अनेक प्रगतिशील नीतियाँ अपनाई। आधुनिक युग में प्रो. हेराल्ड लास्की को कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को प्रतिपादित करने वाले विचारकों में प्रमुख माना जाता है।

लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा के उदय के कारण (Causes for the Rise of the Concept of Public Welfare State)

कल्याणकारी राज्य की धारणा के उदय के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. **व्यक्तिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया**—कल्याणकारी राज्य आदर्श व्यक्तिवाद के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य के कार्यक्षेत्र को सीमित कर दिया गया था और राज्य ने अहस्तक्षेप की नीति अपना ली थी। इससे औद्योगिक क्रान्ति के युग में मजदूरों की दशा दयनीय हो गई। कारखानों के पूँजीपति श्रम के अनुसार वेतन न देकर श्रमिकों का शोषण करते थे। राज्य पूँजीपतियों और मजदूरों के इन सम्बन्धों में हस्तक्षेप नहीं करता था। अत: शनै: शनै: ऐसी व्यक्तिवादी विचारधारा के विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई। यह अनुभव किया गया कि मजदूरों की दशा सुधारने के लिए अहस्तक्षेप नीति का परित्याग कर राज्य को सक्रिय हस्तक्षेप करना चाहिए। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में मजदूरों के हितों के लिए राज्य ने कानून बनाए और इस प्रकार राज्य की लोक कल्याणकारी धारणा का सूत्रपात हुआ।
2. **मार्क्सवादी साम्यवाद के प्रभाव का भय**—कार्ल मार्क्स और ऐंजिल ने वर्ष 1848 में 'साम्यवादी घोषणा-पत्र' प्रकाशित किया। वर्ष 1917 में लेनिन के नेतृत्व में सोवियत रूस में साम्यवादी क्रान्ति हुई तथा मार्क्स की विचारधारा को ठोस आधार प्राप्त हुआ। साम्यवाद के भय के कारण पाश्चात्य देश पूँजीवादी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने लगे और लोक कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त को अपनाने लगे।
3. **लोकतांत्रिक समाजवाद की धारणा का प्रचलन**—मार्क्सवादी साम्यवाद हिंसा और क्रान्ति के उपायों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन चाहते थे। परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक समाजवाद की धारणा का उदय हुआ। यह धारणा शान्तिपूर्ण और वैध उपायों द्वारा सामाजिक परिवर्तन करना चाहती है। इस विचारधारा के समर्थक राज्य को एक लोक कल्याणकारी संस्था मानते हैं। यह धारणा राज्य की सहायता से समाजवाद की स्थापना करना चाहती है।

लोक कल्याणकारी राज्य के लक्षण (Features of Public Welfare State)

लोक कल्याणकारी राज्य के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. **आर्थिक न्याय को सुनिश्चित करना**—कल्याणकारी राज्य आर्थिक न्याय के आदर्श पर कार्य करता है। समाज में विद्यमान सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को धनी वर्ग की आय पर अधिक कर लगाकर कम करने का प्रयास करता है।
2. **सामाजिक सुरक्षा**—कल्याणकारी राज्य नागरिकों को अधिक से अधिक सुरक्षा प्रदान करता है। बेरोजगारों को रोजगार के अवसर, निर्बलों एवं कमजोर वर्गों को सहायता बीमारी एवं वृद्धावस्था में आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता है।
3. **सामाजिक न्याय**—समाज में विद्यमान सामाजिक विषमताओं, कुरीतियों अन्धविश्वासों को दूर कर समाज के पिछड़े व दलित वर्ग को सामान्य धारा में लाने का प्रयास करता है। वस्तुत: कल्याणकारी राज्य एक समाजसेवी राज्य होता है, ऐसा राज्य निरक्षरता व निर्धनता को दूर करने के साथ-साथ श्रम न्यायालय, वाचनालय, पार्क, सड़क, आवास, प्रसूति गृह, दलितोद्धार के कार्यक्रम आदि की व्यवस्था करता है।
4. **व्यक्तिवाद तथा समाजवाद का मध्य मार्ग**—लोक कल्याणकारी राज्य दो अतिवादी धारणाओं-व्यक्तिवाद एवं समाजवाद के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। इस प्रकार के राज्य में राज्य के कृत्यों में वृद्धि होती है, किन्तु व्यक्ति के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाता है तथा उसकी स्वतंत्रता बनी रहती है।
5. **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना**—कल्याणकारी राज्य का विचार केवल राष्ट्रीय ही न होकर अन्तर्राष्ट्रीय भी है। राष्ट्रीय लोक कल्याण के साधनों को स्थाई बनाने के लिए आवश्यक है कि किसी राज्य विशेष के हित साधन के साथ अन्तर्राष्ट्रीय हित साधन का भी ध्यान रखा जाए।

लोक कल्याणकारी राज्य के कार्य (Functions of Public Welfare State)

लोक कल्याणकारी राज्य के कार्यों को दो वर्गों में बाँटा जाता है—अनिवार्य तथा ऐच्छिक।

अनिवार्य कार्य—अनिवार्य कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो राज्य की सुरक्षा से संबंध रखते हैं, जैसे आन्तरिक शान्ति व्यवस्था बनाए रखना, प्रतिरक्षा और न्याय आदि।

ऐच्छिक कार्य—ऐच्छिक कार्य वे होते हैं जिन्हें नागरिकों की भलाई के लिए राज्य द्वारा निष्पादित किया जाता है। कल्याणकारी राज्य के प्रमुख कार्य अग्रलिखित हैं—

TOUCH 'n' PASS

1. **समाज सुधार**—कल्याणकारी राज्य मद्य निषेध, बाल विवाहों की रोकथाम, छुआछूत, जाति प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन का प्रयास करता है।
2. **श्रम का नियमन**—कल्याणकारी राज्य श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह उचित पारिश्रमिक, पेंशन, स्वास्थ्य, बीमा असहाय अवस्था में मजदूरों की सहायता आदि का प्रबंध करता है।
3. **कृषि, उद्योग तथा व्यापार का नियमन**—राज्य कृषि, उद्योग और व्यापार का इस प्रकार नियमन करता है जिससे किसी का शोषण न हो। कृषि के विकास के लिए अच्छे बीज, सिंचाई आदि की सुविधा राज्य प्रदान करता है।
4. **असहाय एवं पीड़ितों की सहायता**—कल्याणकारी राज्य असहाय एवं पीड़ित व्यक्तियों के लिए आवास, गृह, वृद्धावस्था पेंशन, नि:शुल्क चिकित्सा तथा रैन बसेरों आदि की व्यवस्था करता है।
5. **शिक्षा**—लोक कल्याणकारी राज्य का दायित्व है कि वह नागरिकों की शिक्षा की व्यवस्था करे। इस दृष्टि से उसे प्रारम्भिक शिक्षा, महिला एवं प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। राज्य के द्वारा वाचनालयों तथा पुस्तकालयों की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।
6. **नैतिक उन्नति के साधनों का विकास**—राज्य को भौतिक उन्नति के साथ नैतिक उन्नति हेतु भी व्यवस्थाएँ करनी चाहिए। इसके लिए व्याख्यान मालाऐं, रेडियो, टेलीविजन, पत्र पत्रिकाओं आदि का सहारा लिया जा सकता है।
7. **स्वास्थ्य रक्षा**—स्वच्छता एवं रोगों की रोकथाम के लिए राज्य को पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। जन स्वास्थ्य के लिए चिकित्सालय तथा चिकित्सा अनुसंधान केन्द्र खोलने चाहिए। श्रमिकों, स्त्रियों, बालकों आदि के लिए चिकित्सीय सुविधाएँ उपलब्ध करवानी चाहिए।
8. **आर्थिक सुरक्षा**—राज्य को आर्थिक व्यवस्था में ऐसा सुधार करना चाहिए जिससे कि सभी नागरिकों के लिए गरिमापूर्ण जीवन यापन की दशाएँ एवं सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। सभी व्यक्तियों के लिए रोजगार की व्यवस्था की जाए।
9. **परिवार नियोजन संबंधी कार्य**—राज्य को जनसंख्या सीमित करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे वर्तमान जनसंख्या के जीवन स्तर को उन्नत किया जा सके। परिवार नियोजन कार्यक्रम का विस्तार करने के लिए लोगों की सुविधाएँ बढ़ायी जानी चाहिए।

वास्तव में राज्य के ऐच्छिक कार्यों की सूची निर्धारित नहीं की जा सकती है। राज्य का कर्त्तव्य नागरिकों के लिए उन सब सुविधाओं तथा व्यवस्थाओं को उपलब्ध करवाना है जिनके द्वारा उनकी भलाई व उन्नति सम्भव हो सके।

लोक कल्याणकारी राज्य की आलोचना (Criticism of Public Welfare State)

आलोचना में निम्न तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

1. **व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन**—कल्याणकारी राज्य की प्रणाली द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है। राज्य बहुत से कार्य केवल अपने ही नियंत्रण तथा तत्वावधान में करता है। ऐसी परिस्थितियों में राज्य की शक्ति में वृद्धि हो जाती है और व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। राज्य की बाध्यकारी शक्ति का उपयोग बढ़ जाता है और उसी मात्रा में व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है।
2. **राज्य की बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग**—आलोचकों का मत है कि कल्याणकारी राज्य की आड़ में धनी वर्ग से कर के माध्यम से धन लेकर समाज में समानता स्थापित करने के लिए राज्य की बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग किया जाता है, जो उचित नीति नहीं है।
3. **नौकरशाही की समस्या**—लोक कल्याणकारी राज्य के अन्तर्गत अधिकांश कार्य नौकरशाही द्वारा किये जाते हैं। सरकार के कार्यों एवं दायित्वों में वृद्धि के कारण प्रशासन का ढाँचा बहुत विस्तृत हो जाता है, शासन की शक्ति सरकारी कर्मचारियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है जिससे नौकरशाही की निरंकुशता बढ़ने का भय रहता है। जन कल्याणकारी अनेक महत्त्वपूर्ण योजनाओं को ये नौकरशाह अपने स्वार्थों के कारण असफल बना देते हैं।
4. **प्रेरणा का अभाव**—लोक कल्याणकारी राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ सबको ही प्राप्त होती हैं ऐसे व्यक्तियों को भी जो स्वयं अपने संकट का निवारण करने की क्षमता रखते हैं। बहुत से ऐसे व्यक्ति भी हैं जो आत्मनिर्भरता की आवश्यकता नहीं समझते हैं और राज्य पर आश्रित हो जाते हैं।

TOUCH 'n PASS

5. **समग्रवादी शासन का भय**—कल्याणकारी शासन में वस्तुत: जनतंत्र की आड़ में समग्रवादी प्रवृत्तियों का विकास होने लगता है। ऐसा राज्य 'साम्राज्यवाद' को बढ़ावा देकर निरंकुश राज्य की सत्ता स्थापित करता है।
6. **खर्चीला शासन**—कल्याणकारी राज्य पर्याप्त खर्चीला होता है, समस्त कार्य राज्य द्वारा निष्पादित किये जाते हैं फलत: ज्यों -ज्यों राज्य का नियंत्रण बढ़ता है, त्यों-त्यों महँगाई और लागत भी बढ़ती जाती है।
7. **उत्पादन में कमी**—कल्याणकारी राज्य में सामान्य जन की भलाई के लिए राज्य को बहुत सारे कार्य करने पड़ते हैं। इसके लिए सरकार को धनी व्यक्तियों पर बड़े पैमाने पर कर लगाने होते हैं। इससे धनी व्यक्ति हतोत्साहित होकर उत्पादन एवं विकास के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

निष्कर्ष—कल्याणकारी राज्य के विरोध में किये जाने वाले तर्क समुचित नहीं हैं। इंग्लैण्ड में लोक-कल्याणकारी सेवाओं में वृद्धि के साथ-साथ राष्ट्रीय उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। इसी प्रकार वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा राज्य की भूमिका के मध्य समुचित समन्वय स्थापित किया गया है। लोक-कल्याणकारी राज्य सामाजिक न्याय को अपना लक्ष्य मानता है, जिसकी प्रेरणा इसे समाजवाद से मिली है। अत: समाजवाद को ही कार्यान्वित करने वाली प्रजातांत्रिक व्यवस्था लोक-कल्याणकारी राज्य है।

प्र.9. राज्य की गाँधीवादी धारणा पर प्रकाश डालिए।

Throw light on Gandhian concept of the state.

उत्तर

राज्य की गाँधीवादी धारणा
(Gandhian Concept of the State)

गाँधी राज्य के बेहद शक्तिशाली स्वरुप के आलोचक थे। उनके विचारों पर उनकी गहन तथा सतत अध्ययन की प्रवृति का जबरदस्त प्रभाव दिखाई देता है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अतिवाद के विरुद्ध है। उन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों दर्शनों व एतिहासिक उदाहरणों में राज्य की स्थिति व भूमिका का गहन विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला था कि राज्य मूलत: एक साधन है व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का । भारतीय व पाश्चात्य दोनों दर्शनों में अतिशक्तिशाली राज्यों ने मानव के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के अपने मूल आदर्श को त्यागकर हिंसा व बल के माध्यम से उन्हें शासित करने का प्रयास किया है। वह राज्य के कार्यक्षेत्र को सीमित रखने तथा आत्म अनुशासन द्वारा नागरिकों के बगैर किसी दवाब व भय के अपने कर्त्तव्य पालन की अवधारणा की बात करते हैं। वह राज्य द्वारा लगाये गये उन नियंत्रणों का पक्ष नहीं लेते जो मनुष्य की स्वतंत्र चेतना को प्रतिबंधित करते हो। उनके अनुसार व्यक्ति की अन्तरात्मा पर भौतिक शक्ति के माध्यम से लगाये गये नियंत्रण उनका वास्तविक कल्याण सुनिश्चित नहीं कर सकते।

गाँधी आधुनिक राज्य की बढ़ती दमनकारी शक्ति संरचना के घोर विरोधी हैं। उनकी मान्यता है कि मनुष्य पर उसकी अन्तरात्मा के आदेशों की बजाय राज्य द्वारा निर्मित विधि के नियंत्रण को लागू किया जाना, व्यक्ति के आत्मसाक्षात्कार के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। गाँधी का स्पष्ट मत है कि राज्य की दमनकारी शक्ति का समर्थन, वास्तव में अपनी नियति को स्वयं निर्धारित करने के मनुष्य के नैतिक अधिकार का स्पष्ट निषेध है। उनकी मान्यता है कि राज्य की अनियंत्रित, असीमित और अक्षुण्ण सत्ता का समर्थन करना वास्तव में मानव सभ्यता के नैतिक आधार पर ही खुला आक्रमण है।

गाँधी के राजनीतिक दर्शन का लक्ष्य, मानव की परिपूर्णता को सुनिश्चित करना है। उनके अनुसार हिंसा पर आधारित राजकीय आदेशों को कानून की संज्ञा देना, वास्तव में प्रेम और अहिंसा के बल के शाश्वत महत्त्व का अवमूल्यन करना हैं। गाँधी का आग्रह है कि व्यक्ति पर राज्य के आदेशों के बाह्य नियंत्रणों की अपेक्षा, उसकी स्वयं की जागृत अन्तरात्मा के नियंत्रण अधिक पवित्र हैं। गाँधी के अनुसार अपनी अन्तरात्मा में ईश्वर के राज्य की खोज करके व्यक्ति को उसी के दिव्य आदेशों से शासित होना चाहिए।

गाँधी मूलत: राज्य के विरोधी होते हुए भी यह स्वीकार करते थे कि राज्य का तत्काल उन्मूलन संभव नहीं है। वे वस्तुत: व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था के संबंध में अपनी आदर्शवादी अपेक्षाओं को व्यवहार के धरातल से अलग नहीं किया। उन्होनें अन्तिम साध्य के रूप में एक राज्यहीन समाज की कल्पना की, किन्तु यह भी स्वीकार किया कि राज्यहीन समाज की स्थापना एक ऐसा आदर्श है जिसकी पूर्णत: प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। अत: उन्होंने विकेन्द्रित ग्राम-राज्य के रूप में राजनीतिक व्यवस्था का उप आदर्श प्रतिपादित किया। वे यह समझते थे कि विकेन्द्रित ग्राम-स्वराज्य के आदर्श लक्ष्य को भी क्रमिक सुधारों तथा लोगों के दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन लाकर ही प्राप्त किया जा सकता था। इसकी स्थापना के लिये एक समयबद्ध कार्यक्रम

TOUCH 'n PASS

की आवश्यकता थी। अत: तत्कालिक सुधारवादी आदर्शों के रूप में उन्होंने एक 'अहिंसक लोकतंत्र' की परिकल्पना की। इस प्रकार आदर्श राजनीतिक व्यवस्था के संबंध में गाँधी के प्रतिमान को तीन स्तरों के रूप में समझा जा सकता है।

राजनीतिक व्यवस्था के संबंध में गाँधीजी के प्रतिमान
(Gandhi's Model in Relation to the Political System)

1. **आदर्श व्यवस्था**—राज्यहीन समाज अथवा रामराज्य गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि यह रामराज्य 'हिन्दू राज्य' का पर्यायवाची नहीं है, अपितु एक ऐसी पवित्र व्यवस्था की ओर संकेत करता है जिसमें व्यक्ति की अन्तर्रात्मा पर बाह्य नियंत्रण पूर्णत: समाप्त कर दिया जाए। इस व्यवस्था को गाँधी ने 'प्रबुद्ध अराजकता' का नाम दिया। गाँधीजी की मान्यता है कि जब व्यक्ति, अपने जीवन में अहिंसा के आदर्श को पूर्णत: चरितार्थ कर लेगा और स्वार्थ को परम सत्य के प्रति समर्पित कर लेगा तो उसका उत्कृष्ट विवेक और जाग्रत अन्तरात्मा उसके सारे व्यवहार को ऐसे नैतिक प्रभाव से आच्छादित कर लेंगे कि उसके आचरण पर बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपना शासक स्वयं हो जाएगा। गाँधीजी स्वीकार करते हैं कि इस राजनीतिक आदर्श की प्राप्ति लगभग असम्भव है, क्योंकि व्यक्ति मानव शरीर को धारण करते हुए अपने जीवन में अहिंसा के आदर्श को पूर्णत: नहीं ढाल सकता।
2. **उप आदर्श**—विकेन्द्रीकृत ग्राम स्वराज्य-गाँधी ने राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को हिंसा की संज्ञा दी। उन्होंने प्रतिपादित किया कि एक विकेन्द्रित राजनीतिक प्रणाली ही अहिंसा के आदर्श के अनुरूप मानी जा सकती है। गाँधीजी ने ग्राम को राजनीतिक इकाई बनाने पर बल दिया। इस व्यवस्था का तात्पर्य यह नहीं है कि उस ग्राम का दूसरे ग्रामों से कोई सम्बन्ध ही नहीं होगा। ये स्वायत्त, स्वशासी और आत्मनिर्भर ग्राम, अपनी उन आवश्यकताओं के लिए, जिनकी पूर्ति ग्राम में की ही नहीं जा सकती, उनकी पूर्ति दूसरे ग्रामों के सहयोग से करेंगे और दूसरे ग्रामों को ऐसा सहयोग उपलब्ध कराने के लिए सदैव तत्पर रहेंगे।

   एक राष्ट्रीय राज्य के रूप राष्ट्र में ऐसे स्वतंत्र ग्राम गणराज्यों का एक संघ होगा। गाँधीजी ने कहा, भारत में सात लाख ग्राम हैं। प्रत्येक ग्राम उसके निवासियों की इच्छा अनुसार संगठित किया जायेगा। ग्राम, जिला प्रशासन के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करेंगे। इस चुनाव में प्रत्येक ग्राम का एक वोट होगा। जिलों के प्रतिनिधि प्रान्तीय प्रशासन का निर्वाचन करेंगे और प्रान्तीय प्रतिनिधि राष्ट्रपति का निर्वाचन करेंगे जो कि राष्ट्र का मुख्य कार्यकारी होगा। गाँधीजी ने अनुभव किया कि विकेद्रीकृत ग्राम स्वराज्य की योजना को क्रियान्वित करना एक समय-साध्य प्रक्रिया है। अत: उन्होंने तात्कालिक राजनीतिक आदर्श के रूप में 'अहिंसक लोकतंत्र' की कल्पना की।
3. **अहिंसक लोकतंत्र**—तात्कालिक सुधारवादी प्रतिमान—गाँधी की अहिंसक लोकतंत्र की धारणा एक ऐसी स्थिति पर बल देती है जिसमें राज्य के विद्यमान ढाँचे को स्थापित रखते हुए ही उसके स्वरूप और उद्देश्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये जायेंगे। अहिंसक लोकतंत्र में विकेन्द्रीकरण, गाँधीजी के अहिंसक लोकतंत्र सत्य और अहिंसा, शासन के निर्देशक सूत्र होंगे। अहिंसक लोकतंत्र अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है अपितु अंतिम राजनीतिक लक्ष्य की प्राप्ति का प्रथम चरण है। वे यह स्वीकार करते हैं कि इस व्यवस्था में राज्य के पूर्णत: अहिंसक होने की कल्पना नहीं कर सकते। अहिंसक लोकतंत्र में राज्य अहिंसा के प्रचार-प्रसार द्वारा जनता के जीवन में अहिंसा को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील रहेगा। अहिंसक लोकतंत्र में बल प्रयोग को न्यूनतम करने का प्रयत्य किया जाएगा। इस अवस्था में पुलिस और सेना आवश्यक होंगे किन्तु उनकी भूमिका का रूपान्तरण हो जायेगा । पुलिस और सेना जनता के सेवक के रूप में कार्य करेंगे और वे स्वयं भी अहिंसा के सिद्धान्त में आस्था रखेंगे। सेना और पुलिस को अहिंसक आचरण के लिए प्रशिक्षित किया जायेगा। शांतिकाल में सेना व पुलिस रचनात्मक कार्यों में लगे रहेंगे।

गाँधीजी की आदर्श व्यवस्था रामराज्य व उप आदर्श विकेन्द्रीकृत ग्राम स्वराज की तत्काल प्राप्ति सम्भव न होने के कारण उन्होंने तात्कालिक सुधार के रूप में अहिंसक लोकतंत्र का प्रतिमान रखा जिसमें राज्य के विद्यमान ढाँचे को स्थापित रखते हुए अहिंसक लोकतंत्र का प्रतिमान प्रस्तुत किया।

❑

मॉडल पेपर

भारत में राजनीतिक प्रक्रिया

B.A.-II (SEM-III) [पूर्णांक : 75

नोट—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—सभी पाँच प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।* **[3 × 5 = 15]**

1. दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश कौन-सा है?
2. पंचायती राज का अर्थ बताइए।
3. निर्वाचन प्रणाली को परिभाषित कीजिए।
4. सकारात्मक कार्रवाई क्या है?
5. राजनीतिक धार्मिक अतिवाद को समझाइए।

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **2 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित हैं।* **[7.5 × 2 = 15]**

6. लोकतंत्र के अर्थ एवं परिभाषाओं का वर्णन करते हुए इसे स्पष्ट रूप से समझाइए।
7. अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के गुण व दोषों का उल्लेख कीजिए।
8. राज्य के विभिन्न तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **3 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।* **[15 × 3 = 45]**

9. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मिली-जुली प्रकृति की समीक्षा कीजिए तथा भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों व कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए।
10. पंचायती राज के विकास का वर्णन कीजिए।
11. भारत में राज्य स्वायत्ता की माँग पर संघवादी व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए।
12. राष्ट्रीय एकता पर विस्तृत लेख लिखिए।
13. राज्य राजनीति के प्रमुख लक्षणों को विस्तार से लिखिए।

❑

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।

1022

TOUCH 'n' PASS